# माघ मास माहात्म्यम्

भाषा टीका सहित

प्रकाशक-ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर

राजादरवाजा, वाराणसी।

सन् १९८० ई

मूल्य २.५)

अथ

# माघ मास माहात्म्यम्

भाषाटीकासहितम्

卐

प्रकाशकः—

ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर

राजादरवाजा, वाराणसी।

फोन : ६४६५०

सन् १९८२ ]

[ मूल्य Rs. २.५०

प्रकाशक :—
ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स बुक्सेलर
राजादरवाजा, वाराणसी ।

मुद्रक :—
अंजनी मुद्रणालय
औरंगाबाद, वाराणसी ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥





# ❁ अथ माघ मास माहात्म्यम् ❁

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी सरस्वती और व्यासजी महाराजको नमस्कार करके, जय शब्दका उच्चारण करै, अथवा जयका पठन करै ॥१॥ ऋषि बोले—हे सूतजी महाराज! आप लोकों के हितकर्ता हैं, अतएव आपने

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायणं नमस्कृत्यनरंचैवनरोत्तमम् ॥ देवींसरस्वतींव्यासंततो· जयमुदीरयेत् ॥१॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूतमहाबाहोत्वयालोकहितैषिणा ॥ कथितंकार्तिका· ख्यानंभुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२॥ अधुनामाघमाहात्म्यंवदनोलोमहर्षण ॥ श्रुतेनयेनलोकानां· संशयः क्षीयते महान् ॥३॥ पुराकेनमहाभागलोकेऽस्मिन्संप्रकाशितम् ॥ माघस्नानस्यमाहा·

कार्तिक मासका आख्यान, जो भोग और मोक्षको देनेवाला है, हमारे प्रति वर्णन किया ॥ २ ॥ हे लोम-हर्षण! अब "माघमाहात्म्य" हमारे प्रति वर्णन करिये, जिसका श्रवण करनेसे लोकोंके उत्कट सन्देह का भी विनाश हो जाता है ॥ ३ ॥ हे महाभाग! सबसे प्रथम इस लोकमें माघमाहात्म्यको किसने प्रकाशित किया था, यह सब इतिहास पूर्वक वर्णन करिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले-धन्य! मुनीश्वरो!! धन्य!!! आपलोग श्रीकृष्ण भगवान्की

भक्तिमें तत्पर हैं, इसी हेतु आनन्दपूर्वक भक्तिभावसे बारंबार श्रीकृष्णजीकी कथा पूछते हैं ॥ ५ ॥ अब हम पुण्यों-
की वृद्धि करनेवाले माघमाहात्म्यका कीर्तन करते हैं, यह माहात्म्य अरुणोदयके समय स्नान करनेवाले व्यक्तियों के
पापोंका नाशक हैं ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! किसी समय संसारका मंगल करनेवाले महादेवजीके कमल जैसे चरणोंका

त्म्यंसेतिहासंतदादिश ॥४॥ सूतउवाच ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठायूयंकृष्णपरायणाः ॥ यत्पृच्छ-
थमुदायुक्ताभक्त्याकृष्णकथांमुहुः ॥५॥ कथयिष्यामिमाघस्यमाहात्म्यंपुण्यवर्धनम् ॥ पापघ्नं-
शृण्वतांपुंसांस्नातानांचारुणोदये॥६॥ एकदापार्वतीविप्राः शंकरंलोकशंकरम्॥ पप्रच्छविनयो-
पेतास्पृष्ट्वातच्चरणाम्बुजम् ॥७॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेवमहादेवभक्तानामभयप्रद ॥ प्रसीदनाथ
विश्वेशयत्पृच्छे तद्वदाधुना॥८॥ श्रुतानानाविधाधर्म्मास्त्वत्तः पूर्वं मयाविभो ॥ अधुनाश्रोतु-
मिच्छामिमाहात्म्यंमाघजंवद ॥९॥ तत्तु केनपुराचीर्णं कोंविधिः काचदेवता ॥ तत्सर्वं-

स्पर्शकर पार्वतीजी नम्रतापूर्वक पूछने लगीं ॥ ७ ॥ पार्वतीजी बोलीं—हे देवाधिदेव महादेव ! आप अपने भक्तोंको
अभयप्रदान करते हैं, अतः हे प्राणनाथ विश्वेश्वर ! प्रसन्न होइये, और मैं जो कुछ प्रश्न करती हूँ, सो कहिये ॥८॥
हे सर्वव्यापक ! प्रथम मैं आपसे अनेक प्रकारके धर्म सुन चुकी हूँ, परन्तु अब माघस्नानका माहात्म्य सुननेकी मेरी
इच्छाहै, सो आप वर्णन करिये ॥ ९ ॥ प्रथम इसका किसने आचरण किया, इसकी विधि क्या है ? और इसका

देवता... हे ! यह सब विस्तार पूर्वक वर्णन करिये, क्योंकि—आप भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करनेवाले हैं ॥ १० ॥
महेश्वर बोले—अवभृथ ( यज्ञान्त ) स्नान करनेके अनन्तर ऋषियों द्वारा मंगलाभिषेक करने पर, नगरवासियों से
पूजित हो, नगरसे बाहर निकलकर ॥ ११ ॥ समस्त राजाओं में श्रेष्ठ, आखेटका प्रेमी राजा दिलीप कौतूहलको प्राप्त

विस्तराद्ब्रूहियतस्त्वंभक्तवत्सलः॥ १०॥महादेवउवाच॥अध्वरेऽवभृथस्नातऋषिभिःकृतमंगलः।
पूजितोनागरैः सर्वैःस्वपुरान्निर्गतोबहिः ॥११॥ दिलीपोभूभुजाश्रेष्ठोमृगयारसिको भृशम् ॥
कौतूहलसमाविष्टआखेटव्यूहसंवृतः ॥१२॥ उपानद्गूढपादस्तुनीलोष्णीषउरश्छदी ॥ बद्धगो-
धांगुलित्राणोधनुष्पाणिःसरीसृपः ॥१३॥ बद्धतूणासिधानुष्कैःतथाभूतैश्चपत्तिभिः॥ कांतारे-
षुसुरम्येषुवनेषुविपुलेषुच॥ १०॥ उल्लंघितमहास्रोतायुवापंचास्यविक्रमः। मुदाक्रीडतितैःसार्धंकुं-
जेषुमृगयन्मृगान् ॥ १५ ॥ हन्यतांहन्यतामेषमृगोवैसपलायते ॥ इतिजल्पन्स्वभृत्येषुस्वय-

हो, मृगयाकी सेना आदि ( समस्त सामग्री ) को साथ ले ॥ १२ ॥ चरणों में पादत्राण ( जूते ) धारण कर, नीली
पगड़ी बाँध, बख्तर पहिन, गोधाचर्मके दस्ताने पहिनकरके धनुषबाण ले चले ॥ १३ ॥ जिनकी कटिमें तरकश कस
रहा है, जिन्होंने खड्ग और धनुषबाण धारण कर रक्खा है ऐसे दो-चार योधाओंके साथ मनोहर वनों और सघन
वनोंमें विचरने लगे ॥ १४ ॥ सिंहके समान पराक्रमी युवा राजा बड़े-बड़े स्रोतोंका उल्लंघन कर कुंजोंमें मृगोंका

अन्वेषण करके उनके साथ क्रीडा करते थे ॥१५॥ यह देखो ! मृग भागा जारहा है, इसे मारो-मारो, अपने भृत्यवर्गके यों कहनेपर स्वयं जाके उसे मारते थे ॥ १६ ॥ फिर इधर-उधर जाके क्या देखा कि उस बनस्थलीमें उद्भ्रान्त मयूर उड़-उड़ कर वृक्षों पर बैठते हैं ॥१७॥ कहीं हरिणियोंके समूह घबड़ाये फिरते हैं, कहीं हरिणोंके बच्चे चारों ओर

मुत्पत्यहन्ति च ॥१६॥ इतस्ततःपुनर्यातिक्वचित्पश्यन्वनस्थलीम् । विटपोड्डीनसंत्रस्तलीनके-किकुलाकुलाम् ॥ १७ ॥ हरिणीगणवित्रस्तांधावच्छावपदद्दिङ्मुखाम् ॥ क्वचित्फेरवफेत्कारता-रारावविभीषणाम् ॥ १८ ॥ खड्गयूथैःक्वचिल्लक्ष्मींदधानामिवदंतिनाम् ॥ क्वचित्कोटरसंलीनो-लूकोनादविवादिनीम् ॥ १९ ॥ मृगारिपदमुद्राभिमुद्रितांचक्वचित्क्वचित् ॥ शार्दूलनखनि-र्भिन्नरोहिद्रक्तारुणांक्वचित् ॥२०॥ पावरस्तनभारार्तदुस्निग्धमहिषीगणैः ॥ अवरोधाजिरक्षो-णींसूचयंतींमनःक्वचित् ॥२१॥ क्वचिद्वृक्षघनच्छन्नांवन्यपुष्पसुगंधिनीम् ॥ क्वचिल्लतागृहद्वारां-

भाग रहे हैं, और कहीं सियार अपने भीषण निनादसे बनको व्याप्त कर रहे हैं ॥ १८ ॥ कहीं खड्ग जातिके मृग हाथियोंकीसी शोभाको धारण कर रहे थे, और कहीं कोटरों में बैठे हुए उलूकगण अपना शब्द कर रहे थे ॥ १९ ॥ कहीं सिंहोंके चरणचिन्ह दृष्टिगत होते थे, और कहीं शार्दूलोंके नखसे विदीर्ण हुए मृगोंका रुधिर पड़ा था, और उससे भूमि लाल हो रही थी ॥ २० ॥ और कहीं दूधसे लबालब भरे हुए स्तन एवं ऐनके भार से व्याप्त हुई

भैसें बैठी थीं, जिन्हें देखकर घरके आँगनकी भूमि का स्मरण होता था ॥२१॥ कहीं-कहीं वृक्ष बड़े घने लग रहे थे, कहीं-कहीं बनैले पुष्पों की सुगन्धि आ रही थी, और कहीं-कहीं लतागृहों के ऊपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे जिससे वह स्थान और भी सुशोभित था ॥ २२ ॥ कहीं बिलों में से सर्पों की केंचली आधी निकली पड़ी थी जिससे वे अतीव भयंकर हो रहे थे, अथच कहीं बिलों में अजगर बैठे थे, और केंचली बाहर पड़ी थी ॥ २३ ॥ कहीं वनमें अग्नि

भृंगशब्दसुशोभनाम् ॥ २२ ॥ अर्धनिःसृतनिर्मोकनागभीमबृहद्बिलाम् ॥ बिलेषुलीना-
जगरैर्भीमानिर्मोकसर्पिणीम् ॥ २३ ॥ क्वचिद्दावानलज्वालांशिलाज्योतिः सुशोभनाम् ॥
फूत्कारशब्दसंपूर्णाम्मृगव्याघ्रसमाकुलाम् ॥ २४ ॥ अविमुञ्चञ्छुनांयूथंशशकेषुचवाक्वचित् ॥
पल्वलेषुचविश्रम्यपुनर्यातिवनान्तरम् ॥ २५ ॥ एवंव्रजतिराजेन्द्रेव्याधवर्गेचवल्गति ॥ कुर्व-
न्कोलाहलंतत्र सारंगोनिर्गतोवनात् ॥ २६ ॥ फालवेगक्रमाक्रान्तदुर्गमार्गमहीतलः । कदा-

लगरही है और पाषाण शिलाओंके ऊपर उसकी आभा पड़ रही है और कहीं मृग तथा व्याघ्र फूत्कार शब्द कर रहे हैं ॥२४॥ कहीं खरगोशोंके ऊपर कुत्ते दौड़ रहे हैं और कहीं-कहीं राजा अल्प सरोवरों के ऊपर विश्राम करके फिर आगे को जाते थे ॥२५॥ जब राजा इस प्रकार यात्रा और व्याधा अपनी बक-बक कर रहे थे, तभी एक मृग कोला-हल करता हुआ वनमेंसे निकला ॥२६॥ वह मृग लम्बी-लम्बी चौकड़ी भरके भूमिके ऊपर कूद रहा था, अतएव वह

कभी भूमि और कभी आकाश में दीखता था ॥ २७ ॥ निदान वह मृग अत्यन्त गम्भीर और टेढ़े स्रोतों से व्याप्त एवं कटीले वृक्षोंसे आकीर्ण हुए वनमें प्रविष्ट होगया, तथा राजाभी उसके पीछे-पीछे ही चला गया ॥ २८ ॥ एक स्थानसे दूसरे निर्जन स्थानमें दूर जाकर वह मृग अलक्षित हो गया, तब राजा का गला प्यास से सूख गया ॥ २९ ॥ अतएव उसका तालू लाल होगया, मुखपर पसीना आ गया, साथी प्यादे सब थक गये, घोड़ोंकी गति रुकगई, विशेष क्या

चिद्गगनारूढःकदाचिद्भूमिगोचरः ॥ २७ ॥ वक्रस्रोतोऽतिगंभीरंकण्टकद्रुमसंकुलम् ॥ प्रविष्टोविषमारण्यंराजासौतत्पदानुगः ॥२८॥ दुराद्दूरतरंगत्वादेशाद्देशंचनिर्जनम् ॥ मृगादर्शनसंरम्भसंशुष्कगलकंधरः ॥ २९ ॥ ताम्रतालुमुखःखिन्नः श्रांतपत्तिःस्खलद्ध्वनिः ॥ अतीत्यदीर्घमार्गान्सतृषार्तोमध्यगेरवौ ॥ ३० ॥ ददर्शाग्रेतुकासारंस्पर्धयंतमपांपतिम् ॥ घनपादपतीरस्थंसुतीर्थंविमलंशुभम् ॥ ३१ ॥ विशालंविकचांभोजंमधुमत्तमधुव्रतम् ॥ पद्मिनी-

कहें विस्तृत मार्ग अतिक्रमण करनेके कारण मध्याह्नके समय वह राजा अतिशय तृषार्त ( प्यासा हो गया ) ॥ ३० ॥ इसी समय राजाने आगे एक सरोवर देखा, उसकी प्रभूत जलराशि देखने से जलनिधि सागरभी तुच्छ प्रतीत होता था, उसके तीर पर घने वृक्ष लग रहे थे, उसका घाट सुडौल और जल शुद्ध एवं निर्मल था ॥ ३१ ॥ उस विस्तृत सरोवर में कमल खिले हुए थे उनके ऊपर मधु से उन्मत्त हुए भौंरे गुञ्जार रहे, सुतराम् वह तालाब कमलिनी के पत्तों

सरोवर में कमल खिल रहे थे उनके ऊपर ... मरकत मणियोंसे व्याप्त हुए की ... प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥ उसमें

माघ मा. १

मछलियें स्वच्छन्दता से कूद रही थीं, उसका जल साधुओंके मनके समान निर्मल था, चलायमान जलचर और जलकी लहरोंसे युक्त था ॥ ३३ ॥ भीतर क्रूर ग्रहोंसे आकीर्ण होनेसे दुष्टोंके मनकी तुल्य और शैवाल ( सिवार ) से व्याप्त

भा. टी. अ० १

पत्रपालाशच्छन्नंमरकतैरिव ॥३२॥ स्वच्छंदमुच्छलन्मत्स्यंस्वच्छंसाधुमनोयथा ॥ चलज्जलचरैरश्रंवीचिराजिविराजितम् ॥ ३३ ॥ अन्तर्ग्राहगणक्रूरंखलानामिवमानसम् ॥ क्वचिच्छैवालदुर्गम्यंकृपणस्येवमंदिरम् ॥ ३४ ॥ नानाविहङ्गसर्वार्तिशमयंतंदिवानिशम् ॥ दातारमिवसर्वस्वैरापन्नार्तिप्रणाशकम् ॥ ३५॥ तर्पयंतंनिजांभोभिः श्वापदान्स्वपितॄनिव ॥ हरंतंसर्वसंतापंहिमांशुरिवचाह्निकम् ॥३६॥ तंदृष्ट्वाभूद्गतग्लानिश्चातकोजलदंयथा ॥ तत्रपीतजलोराजाकृतमाध्याह्निकक्रियः ॥ ३७ ॥ भुक्त्वाखेटकमांसानिसहायः सहितोनृपः ॥ उवाससरसस्तीरेसुर-

होनेके कारण कृपण व्यक्तियोंके घरके समान वह दुर्गमसी हो रहा था ॥ ३४ ॥ ताप दूर करनेके कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो शरणमें आये हुएको दाताओंके तुल्य सर्वस्व प्रदान करता हो ॥ ३५ ॥ अपने जलसे हिंसक जन्तुओंको इस प्रकार तृप्त करता था जैसे कोई पितरोंको तृप्त करता है और जैसे चन्द्रमा दिनके सब संतापों को दूर कर देता है ऐसे वह भी सब सन्तापोंको दूर कर देता था ॥ ३६ ॥ उसको देखते ही राजाका श्रम इस प्रकार दूर हो गया जैसे

मेघको देख चातक की ग्लानि मिट जाती है, वहाँ जलपानकर राजाने संध्या आदि मध्याह्नकी सब क्रिया करी ॥ ३७ ॥ और अपने सहायकों सहित आखेटका मांस भोजनकर उस सरोवरहीके तटपर बैठके राजा चित्र विचित्र कथा कहने लगा ॥ ३८ ॥ धनुष पर बाण चढ़ाय रात्रिको तरुके नीचे स्थित होगये और व्याधा लोगोंने संधान कर दिशाओंका मार्ग रोक लिया ॥३९॥ जब वीर लोग इस प्रकार वनमें जाल विस्तारकर स्थित होगये तब अर्धरात्रिके समय शूकरों

म्यांकथयन्कथाम् ॥३८॥ ततः शरासनेबाणंकृत्वारात्रौ स्थितस्तरौ ॥ व्याधाःसंधानमास्थायरुरुधुःककुभांपथः ॥ ३९ ॥ एवंस्थितेषुवीरेषुवनेविस्तार्यवागुराः ॥ निशार्धेनिर्गतंयूथंशूकराणांतटेतटे ॥४०॥ चरित्वासरसीकंदान्पपातव्याधसंकुले ॥ राज्ञाविद्धाश्चतेक्रोडाव्याधैश्चबहवोहताः ॥४१॥ क्षणेनैववराहास्ते विद्धाः पेतुर्महीतले ॥ तान्दृष्ट्वातुमुलंनादंव्याधाश्चक्रुःसुदर्पिताः ॥ ४२ ॥ धावंतः प्रमुदायुक्तामिलितायत्र भूपतिः ॥ तानादाय भटैर्भूयोनिः

का यूथ तटसे निकला ॥ ४० ॥ तब शूकरोंका यूथ कमलकंदका भक्षण कर व्याधजालमें निपतित हो गया, उस समय बहुतोंको राजाने और बहुतोंको व्याधोंने मार डाला ॥ ४१ ॥ क्षणमात्रहीमें वे सब शूकर विद्ध हो पृथ्वी में गिर पड़े, तब तो उनको देख दर्पित हो व्याधा बड़ा शब्द करने लगे ॥ ४२ ॥ प्रमोदसे दौड़कर राजासे मिले, तब

उसी समय मार्गमें उन्हें एक तपस्वी दीखा, वे ब्राह्मण वृद्ध 'हारीत' शंखचक्र से समलंकृत थे ॥४४॥ दुष्कर और उग्र नियमों का आचरण करने से उनका शरीर कृश होरहा था केवल अस्थिमात्रही शेष रह गई थी वे बड़े शान्त थे और





सृतःसरसीतटात् ॥ ४३ ॥ स्वपुरंगंतुकामोसौदृष्ट्वान्पथितापसम् ॥ ब्राह्मणंवृद्धहारीतंशंखचक्रसुशोभितम् ॥ ४४ ॥ नियमैर्दुष्करैरुग्रैः परिक्षीणकलेवरम् ॥ तपसाकृशदेहंतंविस्फुटत्कर्कशत्वचम् ॥ ४५ ॥ दधानंहारिणंचर्मवसानंमृदुवल्कलम् ॥ कुर्वाणंनैगमंजाप्यंनखलामजटाधरम् ॥ ४६ ॥ तं वनाश्रमिणंदृष्ट्वामार्गंदत्वाससंभ्रमः ॥ प्रणम्यशिरसाराजाकृतपद्मांजलिः स्थितः ॥ ४७ ॥ अथराज्ञामलंकारैर्द्विजोनिश्चित्यभूमिपम् ॥ उवाचश्रेयसेहेतोःपरोपकृतिवांछया ॥४८॥ किमर्थंगम्यतेराजन्कालेपुण्यतमेशुभे ॥ माघमासेविहायैवप्रातःस्नानंसरोवरे ॥४९॥ इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये दिलीपमृगयागमोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

उनकी त्वचा में झुर्रियां पड़ रही थीं ॥४५॥ मृगचर्म धारण किये मृदुवल्कलका वस्त्र पहने, एवं नख लोम और जटाधारी उक्त महर्षि निगम का जप करते थे ॥४६॥ वनके उन आश्रमीको देखकर राजाने संभ्रमपूर्वक उनको मार्ग दिया और शिरसे प्रणाम कर हाथ जोड़ स्वयं सम्मुख हो गया ॥ ४७ ॥ तब ब्राह्मणने इसको अलंकारोंसे राजा जानकर परो-

पकारकी वांच्छासे कल्याणके निमित्त कहा ॥४८॥ हे राजन् ! इस पुण्य पवित्र कालमें माघ महीनेमें प्रातःसमय सरोवरका स्नान छोड़कर तुम कहाँ जाते हो ? ॥४९॥ इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

सूतजी बोले, तब राजाने कहा हे द्विजराज ! मैं माघस्नानके फलको नहीं जानता सो विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ राजाके ऐसे वचन सुनकर वैखानस मुनि बोले कि अन्धकार विनाश करनेवाले सूर्यनारायण

सूतउवाच ॥ प्रत्युवाचततोराजानाहंजानेद्विजोत्तम ॥ माघस्नानफलंकीदृक्तन्मे- कथयविस्तरात् ॥ १ ॥ इति भूपवचःश्रुत्वा प्राह वैखानसोमुनिः ॥ भगवान्द्युमणिःशीघ्रमभ्यु- देतितमोपहा ॥२॥ स्नानकालोऽयमस्माकंनकथावसरोनृप ॥ स्नात्वागच्छवसिष्ठंतं पृच्छस्वस्व कुलप्रभुम् ॥३॥ इत्युक्त्वातापसोमौनीप्रातःस्नानार्थनिर्गतः ॥ प्रत्यावृत्यदिलीपोपितत्रस्नात्वा- तथाविधि ॥ ४ ॥ पुनः स्वनगरींवीरागतोसौहर्षपूरितः ॥ अन्तःपुरेनिवेद्याथवानप्रस्थकथां-

अब शीघ्रही उदय होनेवाले हैं ॥ २ ॥ सो हे राजन् ! यह स्नानका समय है कथाका अवसर नहीं है सुतराम् तुम स्नान करके जाओ और अपने कुलगुरु वसिष्ठजीसे सब पूछ लेना ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर वे तपस्वी मौन धारण करके स्नान करनेको चले गये और राजा दिलीप भी पीछेको लौटकर यथाविधि स्नान करके ॥ ४ ॥ फिर प्रसन्न हो अपनी नगरी

को चले गये, और उन वानप्रस्थी ऋषिकी कथा अन्तःपुर (रनिवास) में वर्णन कर ॥ ५ ॥ श्वेत घोड़ोंके रथमें बैठ के श्वेतही छत्रसे शोभायमान हो चँवर अलंकार सुन्दर वस्त्र धारण किये मंत्रियोंसे संयुक्त ॥ ६ ॥ जय शब्दको सुनते ऋषिके वाक्य स्मरण करके वसिष्ठजी के आश्रममें आये, तब यात्राके समय मागध और वन्दीजन राजाकी स्तुति करने

पुनः ॥ ५ ॥ श्वेताश्वरथमारुह्यसुश्वेतच्छत्रचामरः ॥ सालंकारः सुवासाश्चसंवृत्तोमंत्रिभिःसह ॥ ६ ॥ जयशब्दान्पुनःशृण्वस्तुतोमागधबंदिभिः ॥ वसिष्ठस्याश्रमंयातऋषिवाक्यमनुस्मरन् ॥ ७ ॥ तत्रैवनत्वाब्रह्मर्षिं विनयाचारपूर्वकम् ॥ दत्तासनोगृहीतार्घ्यआशीर्भिःसमलंकृतः ॥८॥ सानंदंमुनिनापृष्टःकुशलंभूपतिर्यदा ॥ ततोब्रवीद्वचोराजाहर्षयन्मुनिमानसम् ॥ ९ ॥ सोथ-वैखानसनोक्तंपप्रच्छमधुराकृतिः ॥ दिलीप उवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनश्रुताविस्तरतोमया ॥ १० ॥ आचारोदंडनीतिश्चराजधर्माश्चयेपरे ॥ चतुर्णामपिवर्णानामाश्रमाणां च याः क्रियाः

लगे ॥ ७ ॥ विनय और शिष्टाचारपूर्वक ब्रह्मर्षिको प्रणामकर अर्घ्य तथा आशीर्वादको स्वीकार कर राजा आसनके ऊपर बैठ गये ॥ ८ ॥ तब मुनिने आनन्दपूर्वक राजासे कुशल पूछा, तब राजा बोले, और इनके वाक्य सुन मुनीश्वर का चित्त प्रसन्न हो गया ॥ ९ ॥ तब मधुर मूर्तिवाले राजा वैखानस वचनको पूछने लगे, दिलीप बोले-हे भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने विस्तार सहित ॥१०॥ आचार, धर्मनीति और राजधर्म सुने, चारों वर्णों के आचार तथा आश्रमों

की क्रिया ॥११॥ दान, उनके विधान और यज्ञ, आपके कथन किये व्रत, विष्णुभगवान्‌की आराधना भी मैंने सुनी ॥ १२ ॥ अब वह सुनने की इच्छा है। जो फल माघस्नान करने से होता है, सो किस विधानसे करना चाहिए ? हे मुनिराज ! सो कथन कीजिये ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले—तुमने त्रिलोकीका कल्याण करनेवाला, अतएव सबका

॥ ११ ॥ दानानितद्विधानानियज्ञाश्चविधयस्तथा ॥ व्रतानितत्प्रतिष्ठाश्चविष्णोराराधनंतथा ॥ १२ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामिमाघस्नाने च यत्फलम् ॥ विधेयंयद्विधानेनतन्मेब्रह्मन्मुनेवद ॥ १३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सम्यगुक्तं परंश्रेयोलोकत्रयहितावहम् ॥ निर्मलीकरणंलोकेमुनीनां-वनवासिनाम् ॥ १४ ॥ गोभूमितिलवासांसिस्वर्णधान्यानियानि च ॥ अदत्त्वेच्छन्तियेनाकंते-माघेस्नान्तुसर्वदा ॥१५॥ त्रिरात्रैर्दुव्रतैःकृच्छ्रैःपराकैश्चनिजांतनुम् । अशोष्येच्छंतियेस्वर्गं-

हितकारी एवं वनवासी ऋषिमुनियोंको भी निर्मल करनेवाला यह अच्छा प्रश्न किया ॥१४॥ जो व्यक्ति गौ, भूमि, तिल, वस्त्र और सुवर्ण, धान्य, आदि वस्तुओंका दान किये ही विना स्वर्गमें जानेकी इच्छा करते हों उन्हें चाहिए कि वे माघमासमें अवश्य स्नान करें ॥ १५ ॥ जो मनुष्य यह चाहते हैं कि, तीन रात्रिपर्यन्त कृच्छ्रचान्द्रायण और पराक व्रतसे हमें अपना देह तो शुष्क न करना पड़े किन्तु स्वर्गकी प्राप्ति हो जाय, तो उन्हें माघ में नित्य स्नान करना

चाहिये ॥ १६ ॥ वैशाखमें होम और दान, कार्तिकमें तप और पूजा एवं माघमास में तप, होम और दान ये तीनों विशेष हैं ॥१७॥ अग्निहोत्र और यज्ञ बिना किये, बावली कूप बिना बनवाये जो सद्गति की इच्छा करते हैं उनको माघमें बाहर जलमें स्नान करना कर्तव्य है ॥ १८ ॥ भूमि, सुवर्ण और माणिक्य, धेनु आदि बिना दान किये

तपसिस्नान्तुतेसदा ॥१६॥ होमोदानंचवैशाखेतपःपूजा च कार्तिके ॥ तपोहोमस्तथादानंत्रयं-माघेविशिष्यते ॥१७॥ विनावह्निंविनायज्ञमिष्टापूर्तंविनाप्रिये ॥ वाञ्छन्तिसद्गतिंस्नान्तु-प्रातर्माघेबहिर्जले ॥ १८ ॥ गोभूहिरण्यमाणिक्यस्वर्णधेन्वादिकानिच ॥ अदत्त्वेच्छन्तियेनाकं-माघेस्नान्तुनराधिप ॥ १६ ॥ सानुबन्धोऽतिपर्य्यासोधराधीशोभवेत्ध्रुवम् ॥ कैवल्योत्पत्तिका-बुद्धिर्यथावानभवेत्पुनः ॥ २० ॥ पदध्यावरिवस्यासा विहितादिव्यलोचनैः ॥ तदनन्ततपो-दानंमाघेमासिनृपोत्तम ॥ २१ ॥ सकामोवाप्रजायैवाहरयेतद्विनापिवा ॥ कायशुद्धिर्व्रती

जो इनका फल चाहते हैं हे राजन् ! उन्हें चाहिये कि माघस्नान करें ॥ १६ ॥ निरन्तर ऐसा करनेसे वह पुरुष भूमि-पति होता है, वह मुक्तिको उत्पन्न करनेवाली बुद्धि प्रकट करता है और फिर जन्म नहीं होता ॥ २० ॥ दिव्य दृष्टि महात्माओंने यह कहा है कि, माघमासमें तप या दान करनेसे अनन्त फल होता है ॥ २१ ॥ सकाम हो चाहे

प्रजाकी इच्छावाला हो ? नारायणके निमित्त व अन्य प्रकार शरीर शुद्धकर जो व्रती हो उसको चार प्रकारसे स्नानके फलकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ अदितिने अन्य परित्यागपूर्वक बारह वर्ष पर्यन्त माघस्नान किया उसके फलसे त्रिलोकी के दीप स्वरूप द्वादश आदित्य बारह पुत्रोंकी प्राप्ति हुई ॥२३॥ माघस्नानसेही रोहिणी सुभगा तथा अरुन्धती दानशीला

भूत्वाचतुर्धास्नानजंफलम् ॥ २२ ॥ निरन्नाचादितिः सस्नौमाघेद्वादशवत्सरे ॥ पुत्रांश्चद्वाद-शादित्याँल्लेभेत्रैलोक्यदीपकान् ॥ २३ ॥ सुभगारोहिणीमाघाद्दानशीलात्वरुन्धती ॥ शची-चरूपसम्पन्नाप्रासादेसप्तभूमिके ॥ २४ ॥ विमलीकृतशोभाढचे नर्त्तकीललिताजिरे ॥ द्वीपवर्ण-समुच्छिन्नेरूपवत्स्त्रीजनाकुले ॥ २५ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषेमंगलाचारशोभिते ॥ वेदध्वनि पवित्रेचविद्वद्विप्रैरलंकृते ॥ २६ ॥ सुरार्चनरतेरम्येसदातिथिनिषेविते ॥ मुदितास्तेवसन्ती-

हुई हैं और इसी स्नानसे इन्द्राणी रूपसंसन्न होकर सतमहले स्थानमें सुखसे निवास करती हैं ॥२४॥ जो शोभासे भरपूर निर्मल, जिसके आँगनमें नृत्य करनेवाली अप्सराओंसे शोभा होरही है, जहाँ अनेक दीपक जल रहे हैं और जो स्थान रूपवती स्त्रियोंसे संकुल है ॥ २५ ॥ गीतवाजोंके शब्दसे युक्त, मंगलाचारसे शोभित, वेदध्वनिमें तत्पर ब्राह्मणोंसे युक्त ॥२६॥ देवार्चनमें तत्पर, मनोहर सदा अतिथियोंसे शोभित स्थानमें मकरके रविमें स्नान करनेवाले व्यक्ति प्रसन्न







हो निवास करते हैं ॥ २७ ॥ जिसने माघमासमें बहुत दान दिया, तथा भगवानकी पूजा और स्तुति की है इष्ट

हो निवास करते हैं ॥ २७ ॥ जिसने माघमासमें बहुत दान दिया, तथा भगवान्की पूजा और स्तुति की है, इष्ट वस्तुका त्याग और व्रत नियमका पालन जिन्होंने किया है वे श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ माघमास सदा धर्मका प्रसव करनेवाला और पापका नाशक है, फल देनेसे काममूल और निष्काम होनेसे ज्ञान देनेवाला है ॥ २९ ॥ जो लोक ज्ञानी

हयैस्स्नातंमकरेरवौ ॥ २७ ॥ यैर्दत्तंबहुमाघेचमुरारिश्चार्चितः स्तुतः ॥ इष्टवस्तुपरित्यागान्नियमस्यतुपालनात् ॥ २८ ॥ धर्मसूतिः सदामाघः पापमूलंनिकृन्तति ॥ काममूलःफलद्वारा निष्कामेज्ञानदः सदा ॥ २९ ॥ येलोकाज्ञानशीलानांयेलोकाविपिनौकसाम् ॥ ये लोकाविष्णुभक्तानांतेमाघस्नायिनांसदा ॥ ३० ॥ देवलोकान्निवर्तन्तेपुण्यक्षयेत्यैः परंतप ॥ कदाचिन्ननिवर्त्तन्तेमाघस्नानरतानराः ॥ ३१ ॥ माघेस्नात्वातुगोधेनुंदद्यान्मर्त्यःपयस्विनीम् ॥ तस्यायावन्तिरोमाणिसर्वांगेचनृपोत्तम ॥३२॥ तावद्वर्षसहस्राणिस्वर्गेलोकेमहीयते॥ माघस्नानंप्रकुर्वा

और वनमें रहकर तप करनेवालों को प्राप्त होते हैं, और जो लोक, विष्णुभक्तोंको मिलते हैं वेही लोक सदा माघस्नान करनेवालोंको मिलते हैं ॥ ३० ॥ हे परन्तप! और पुण्योंके क्षीण हो जाने पर देवलोक से यहाँ लौट आना होता है; परन्तु माघस्नान करनेवाले व्यक्ति वैकुण्ठसे फिर नहीं आते ॥ ३१ ॥ माघस्नान कर जो मनुष्य दूध देती हुई गौका

दान करते हैं, हे राजन् उस गौके शरीरमें जितने रोम हैं ॥ ३२ ॥ उतनेही सहस्र वर्षतक वह स्वर्गलोकमें ऐश्वर्य का उपभोग करता है, माघस्नान करके जो व्यक्ति गुड़ तथा तिलदान करता है ॥ ३३ ॥ उसके पाप दूर हो जाते हैं, अतएव वह मनुष्य निर्मल होजाता है, सब दानोंसे तिल विशेषकर पापके नाश करनेवाले हैं ॥ ३४ ॥ इस कारण हे



णोयोदद्यात्सगुडांस्तिलान् ॥ ३३ ॥ पातकंतस्यप्रक्षाल्यनिर्मलोभातिवैनरः ॥ सर्वेषांधान्यराशीनांतिलाःपापप्रणाशनाः ॥३४॥ तस्मात्माघेप्रयत्नेनतिलादेयानृपोत्तम ॥ माघस्नानप्रकुर्वाणोदद्यात्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ३५ ॥ पितृन्संतर्प्यशुद्धात्मायातिविष्णोःपरंपदम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमाघोदानेननीयते ॥३६॥ अदानं न क्षिपेन्माघं सर्वदानृपसत्तम ॥ वित्तानुसारंज्ञात्वावैमाघेदानंसदाददेत् ॥३७॥ माघस्नानंतुयःकुर्यादुपानहकमंडलून् ॥ ददातिब्राह्मणेभ्यश्चसस्वर्गेति-

राजन्! यत्नपूर्वक माघमासमें तिलदान करै, माघस्नान करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ३५ ॥ तो वह अपने पितरोको तृप्त कर शुद्ध हो विष्णुलोकको जाता है, इस कारण सब प्रयत्नसे माघमासमें दान करे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! किसी प्रकारभी दानके बिना माघस्नानको न जाने दे, वित्तके अनुसार जानकर सदाही माघमें दान करना कर्तव्य

॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो माघमासमें स्नानस्वरूप तप करते हैं और उक्त मासको दान के बिना नहीं बिताते उनको इस दानके करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ दानसे स्वर्ग और दानसे ही सुख प्राप्त होता है, दानसे पाप और महापातक दूर होते हैं ॥ ४० ॥ बिना दानके तपकी शोभा नहीं होती, जैसे सूर्यके बिना आकाश अथवा जैसे



ष्ठतिध्रुवम् ॥ ३८ ॥ माघस्नानमयंराजन्कुर्वाणस्तपउत्तमम् ॥ दानंविनाक्षिपेन्नैवदानात्स्वर्गमवाप्यते ॥ ३९ ॥ दानेनप्राप्यतेस्वर्गोदानेनप्राप्यतेसुखम् ॥ दानेनहीयतेपापंमहापातकजंनृप ॥४०॥ अदानं न तपोभातिह्यसूर्यंगगनंयथा ॥ असंततिकुलंयद्वदाचारेणविनागृहम् ॥४१॥ नातःपरतरंकिंचित्पवित्रंपापनाशनम् ॥ विद्याधरायसंगीतंभृगुणामणिपर्वते ॥४२॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये दिलीपवसिष्ठसंवादोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

संतानके बिना कुल और आचारके बिना गृह शोभा नहीं पाता है ॥ ४१ ॥ इससे अधिक कोई पवित्र और पापनाशक नहीं है, यह बात भृगुजीने मणिपर्वतके ऊपर विद्याधरोंसे कही है ॥ ४२ ॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे भाषाटीकायां माघमासमाहात्म्ये दिलीपवसिष्ठसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

राजा बोले—हे ब्रह्मन्! भृगुजीने पर्वतके ऊपर किस समय ज्ञानका उपदेश किया था सो आप कुतूहलपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! बारह वर्षतक एक समय मेघ नहीं वर्षा, उससे उद्विग्न हो सब दशोदिशायें क्षीण हो गईं ॥ २ ॥ हे राजन्! मध्यदेश, हिमालय और विन्ध्याचलके खिन्न होनेसे तथा स्वाहा स्वधा



राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कदाभृगुर्विप्रोनिजगादमहीधरे ॥ तस्मैधर्मोपदेशंचकथ्यतांमेकुतूहलात् ॥१॥ वसिष्ठउवाच ॥ द्वादशाब्दंपुराराजन्नववर्षवलाहकः ॥ तेनोद्विग्नाःप्रजाःसर्वा गता क्षीणादोशोदश ॥२॥ खिलीभूतेतदामध्येहिमवद्विन्ध्योर्नृप ॥ स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययनवर्जिते ॥३॥ सोपप्लवेतथालोकेलुप्तधर्मेचनिष्प्रभे फलमूलान्नपानीयशून्येवैभूमिमंडले ॥४॥ विंध्यपादतरुच्छन्नरम्यरेवातटाश्रमात् ॥ सहशिष्यैश्चनिर्गत्यहिमाद्रिसगतोभृगुः ॥५॥ तत्रातिष्ठतिकैलासगिरेःपश्चिमतोगिरिः ॥ मणिकूटइतिख्यातोहेमरत्नशिलोच्चयः ॥६॥ अधोधःस्फ-

वषट्कार और वेदाध्यान से वर्जित होनेसे ॥ लोकके उपद्रव ग्रस्त होनेपर तथा धर्मके लुप्त और प्रभाहीन हो जानेपर फल मूल एवं जलसे महिमण्डल शून्य हो गया ॥ ३–४ ॥ विन्ध्यपर्वत रेवाके तटके ऊपर होनेके कारण वृक्षोंसे आच्छादित था तब भृगुजी अपने शिष्योंसहित वहाँसे चलकर हिमालय को गये ॥ ५ ॥ कैलासपर्वत के पश्चिम ओर मणिकूट नाम एक सुवर्णका तथा रत्नोंका पर्वत है ॥६॥ नीचे नीचे श्वेत स्फटिक और मध्यमें नील शिलाओंसे युक्त

और मध्यम-नील शिलाओंसे युक्त





था, सुतराम् वह पर्वत विभूतिसे सब ओर से शुक्ल नीलकंठके समान शोभित होता था ॥ ७ ॥ सब ओर नीलशिला-
वाला, कहीं-कहीं सुवर्णकी रेखासे युक्त और कृष्ण मेघमंडलमें चमकती हुई बिजलीकी रेखा के सदृश शोभित हो
रहा था ॥ ८ ॥ शिखरपर नील शिलाका पर्वत नीचे सुवर्णकी मेखलावाला पीतवस्त्र पहने नारायणके समान शोभित
होता था ॥९॥ मेखलाको त्यागकर नीलवर्ण मध्यभाग श्वेत पत्थरोंसे युक्त होनेके कारण तारोंसहित आकाशके समान

टिकश्वेतोमध्येनीलशिरोगिरिः ॥ भूतिभिःसर्वतः शुक्लोनीलकंठइवाबभौ ॥७॥ सर्वत्रासौनील
शिलोहेमरेखांतरांतरः ॥ स्फुरद्विद्युल्लतः कृष्णोजीमूतइवराजते ॥८॥ मूर्ध्निनीलशिलःशैल-
अधः कांचनमेखलः ॥ नारायणइवाभातिपरिवीतइवाम्बरः ॥९॥ सतारकमिवव्योमशुशुभेस-
महीधरः ॥ अमेखलासुनीलाभोमध्येमध्येसितोपलः ॥१०॥ लब्ध्वात्मनस्तनुंशुभ्रांदीप्तदिव्यौ-
षधीधरः ॥ बहुदीप्तिवृतोभातिद्वितीयइवचन्द्रमा ॥११॥ अधित्यकासुसंगीतैःकिन्नराणांस-
कीचकैः ॥ रंभापत्रपताकाभिःशोभतेमसदाऽचलः ॥१२॥ हरितोपलवैडूर्यपद्मरागशिला-

उस पहाड़की शोभा हो रही थी ॥ १० ॥ अपना श्वेत शरीर पाय दिव्य औषधियोंके प्रकाशसे वह ऐसा प्रदीप्त
हो रहा था, जैसे चन्द्रमाकी दूसरी मूर्ति होती है ॥ ११ ॥ उक्त पर्वतकी अधित्यका अर्थात् तराईकी भूमिमें किन्नर
और कीचक गान करते थे, एवं कदलीदलकी शाखाओंसे वह पर्वत नित्यही सुशोभित रहता था ॥ १२ ॥

हरे पाषाण, वैदूर्य्य मणियें, पद्मराग, श्वेत ( संगमरमर ) पत्थर इन सबके मण्डलोंसे वह पर्वत इन्द्र धनुषके समान प्रतीत होता था ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण धातुएँ, सुवर्ण और अनेक प्रकारसे रत्न उक्त पर्वतको सुशोभित बनाए रखते थे, एवं च उक्त गिरिराज अग्निज्वालाओंके समान बड़े-बड़े ऊँचे शिखरोंके द्वारा चारों ओरसे व्याप्त होरहा था ॥ १४ ॥



श्मभिः ॥ उद्ररश्मिमंडलैःसोऽत्र इन्द्रचापैरिवावृतः ॥१३॥ सर्वधातुमयैर्हैमैर्नानारत्नशोभितः ॥ सोऽग्निज्वालैरिवात्युच्चैःशृङ्गैः सर्वत्रवेष्टितः ॥१४॥ तस्यागत्यनितंबेषुसतृणासुशिलासु च ॥ विद्याधर्यः प्रसेवंतेस्वपतीन्कामविक्लवाः ॥१५॥ निरुद्धांतर्मरुन्मार्गाजितक्लेशाविरागिणः ॥ ध्यायंत्यहर्निशंब्रह्मरम्यसानुगुहासुच ॥१६॥ साक्षसूत्रकराः सिद्धाअर्धोन्मीलितलोचनाः ॥ आराधयंतिभूतेशंसुन्दरीषुदरीषु च ॥१७॥ मंदारकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखः ॥ एषनिर्झरि-

उसके नीचेहैं स्थानोंमें आय, जिनके ऊपर घास जम रही थी ऐसी शिलाओंके ऊपर बैठके कामसे पीड़ित हुई विद्याधरियें अपने पतियोंके साथ रमण करती थीं ॥ १४ ॥ अन्तर्वायु अर्थात् श्वासका अवरोध करने वाले और क्लेशोंपर विजय कर वैराग्य धारण करनेवाले महात्मा लोग रमणीक आँगनवाली गुहाओंमें उपस्थित हो-हो कर ब्रह्मका ध्यान

में बैठकर भूतनाथ महादेवजीकी आराधना करते थे ॥ १७ ॥ उसके चारों ओर पारिजातके पुष्पोंकी सुगन्ध महक रही थी, झरनोंसे जल गिरते रहनेके कारण वह स्थान सदैव शब्दसे पूर्ण रहता था ॥ १८ ॥ उपत्यकामें हाथी, उनके बच्चे, कस्तूरी मृग और झुण्डके झुण्ड चित्रमृग क्रीड़ा करते थे ॥१९॥ चँवरी गौ और विचित्र अन्य बहुतसे जंगली





णीवारिझंकारमुखरः सदा ॥१८॥ उपत्यकासुखेलद्भिर्वनस्थैःकलभैर्गजैः ॥ कस्तूरीमृगयूथैश्च-चारुचित्रमृगैस्तथा ॥१९॥ विलसच्चामरैश्चैवविचित्रैःश्वापदैस्तथा ॥ नदत्पारावतैश्चैवचको-रैश्चापिकोकिलैः ॥२०॥ राजहंसैर्मयूरैश्चसदारम्यःसपर्वतः॥ सेव्यमानःसदादेवैर्गुह्यकैरप्सरो-गणैः ॥२१॥ राजोवाच ॥ बह्वाश्चर्यमयःशैलःसर्वसिद्धसमाश्रयः ॥ भगवन्किंयदुच्छ्रायःकिय-दायामविस्तरः ॥२२॥ ऋषिरुवाच ॥ षट्त्रिंशद्योजनोच्छ्रायोमस्तकेदशयोजनः ॥ आयाम-

जीव वहाँ विचरते और विश्राम करते रहते थे, पारावत ( कबूतर अथवा पंडारवता ) चकोर और कोकिल ( कोयल ) ये सब वहाँ शब्द करते रहते थे ॥ २० ॥ राजहंस और मयूरोंसे व्याप्त होनेके कारण वह पर्वत सदैवही रमणीक बना रहता था, सुनराम् देवता गुह्यक और अप्सरागण उसकी सेवा करते थे ॥ २१ ॥ राजा बोला-हे भगवन् ! प्रभूत आश्चर्योंसे व्याप्त हुए इस पर्वतपर सब सिद्ध आश्चर्य करके निवास करते थे, सो यह तो बताइये कि, यह

कितना ऊँचा है ? और लंबा चौड़ा कितना है ? ॥ २२ ॥ ऋषि बोले–यह पर्वत छत्तीस योजन ऊँचा, मस्तकमें दश योजन चौड़ा और लम्बाईके विस्तारसे मूलसे सोलह योजन है ॥ २३ ॥ हरिचन्दन, मन्दार, आम, देवदारु, सरल और अर्जुनके वृक्षोंसे वह पर्वत सुशोभित था ॥ २४ ॥ कालागुरु लवंग और निकुंजों एवं लतागृहोंसे वह गिरिराज

विस्तराभ्यांसमूलेषोडशयोजनः ॥२३॥ हरिचन्दनमंदारचूतराजिविराजितः ॥ देवदारुद्रुमाकीर्णःसरलार्जुनशोभितः ॥२४॥ कालागुरुलवंगैश्चनिकुञ्जैश्चलतागृहैः ॥ विराजतेगिरिश्रेष्ठः सदापुष्पफलप्रदः ॥२५॥ तं दृष्ट्वापर्वतंरम्यंतदादुर्भिक्षपीडितः ॥ भृगुश्चकारतत्रैववसतिंहृष्टमानसः ॥२६॥ तस्मिन्मनोहरेशैलेकंदरेषुवनेषुच ॥ चिरकालं तपस्तेपे तपःसुनिरतोमुनिः ॥२७॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये मणिशैलवर्णनोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

निरन्तर विराजमान रहता था, अथच वहाँ सदाही फल और पुण्य प्राप्त होते थे ॥ २५ ॥ उस सुन्दर पर्वतका अवलोकन कर दुर्भिक्षसे पीडित हुए भृगुजी महाराजने अपने मनमें प्रसन्न हो वहाँही निवास किया ॥२६॥ तपश्चर्यामें निरत होकर भृगुजी महाराजने उक्त मनोहर शैलके ऊपर कन्दराओं और वनमें चिरकाल पर्य्यन्त तप किया ॥ २७ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां पर्वत वर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऋषि बोले—हे राजन् ! जब आश्रमवासी ब्राह्मण इस प्रकार स्थित हो रहे थे, उसी समय दो विद्याधर दम्पति ( पतिपत्नी ) पर्वतसे उतर आये ॥ १ ॥ वह दोनों अत्यन्तही दुःखित हो रहे थे, सुतराम् आकर ऋषिको प्रणाम करके उपस्थित होगये, उन दोनों की ऐसी गति देख कोमल वाक्यसे ब्रह्मर्षि बोले ॥ २ ॥ हे विद्याधर ! प्रीति-

ऋषिरुवाच ॥ एवंतिष्ठतिराजेन्द्रद्विजेस्वाश्रमवासिनि ॥ अवतीर्यागतौशैलाद्द्वौविद्याधरदम्पती ॥१॥ समागम्यमुनिंनत्वा स्थितौतावतिदुःखितौ ॥ तथाविधौचतौदृष्ट्वामंजुवाक्यंद्विजोब्रवीत् ॥२॥ वद विद्याधरप्रीत्यायुवांकिमतिदुःखितौ ॥ श्रुत्वातस्यमुनेर्वाक्यंप्राहविद्याधरोद्विजम् ॥३॥ श्रूयतांतापसश्रेष्ठममदुःखस्यकारणम् ॥ सुकृतस्यफलंप्राप्यप्राप्तोऽस्मित्रिदशालयम् ॥४॥ लब्धोऽपिदेवतादेहंमुखंव्याघ्रस्य मेऽभवत् ॥ न जाने कर्मणःकस्यविपाकोऽयमुपस्थितः ॥५॥ इतिसंस्मृत्यसंस्मृत्यनलेभेशर्म मे मनः ॥ अन्यच्चश्रूयतांविप्रयेनमेहृयाकुलंमनः ॥६॥

पूर्वक बताओ ! तुम दोनों अतिशय दुःखित क्यों हो रहे हो ? उनके ऐसे वाक्य सुन वह विद्याधर द्विजराज से कहने लगा ॥ ३ ॥ हे परमतपस्विन् ! हमारे दुःखका कारण सुनिये, पुण्यकर्मोंके करने से तो मुझे स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई है ॥४॥ पर देवशरीर प्राप्त होने पर भी मुझे व्याघ्र का मुख प्राप्त हुआ है, मैं नहीं जानता कि किस बुरे कर्मका यह बुरा फल उपलब्ध हुआ है ॥ ५ ॥ एक तो इसी बातका स्मरण करनेसे मेरे मनको विश्राम नहीं मिलता, तिसपरभी हमारे चित्त

के व्याकुल रहनेका दूसरा कारण सुनिये ॥ ६ ॥ कल्याणमूर्ति हमारी इस पत्नी की वाणी मधुर और रूप सुन्दर है, यह समस्त सद्गुणशालिनी नृत्य और गानकी सम्पूर्ण कलाओंको जाननेवाली है ॥ ७ ॥ जब यह कुमारी थी उस समय इस निर्मलने मनोहर सातों स्वरों का उत्थान करके वीणा बजाया ॥ ८ ॥ तब वीणा बजानेके रसको जाननेवाले देवर्षि



याइयंममकल्याणामधुरवाणीसुरूपिणी ॥ नृत्यगीतकलाभिज्ञासर्वसद्गुणशालिनी ॥ ७ ॥
यस्मिन्कालेकुमारीयंतदाचाऽमलयानया ॥ विपंचींपरिवादिन्यातंत्रीभिःसप्तभिर्भृशम् ॥ ८ ॥
वीणावादरसाभिज्ञस्तोषितोनारदोमुनिः ॥ मुग्धभावेऽपिगायंत्यात्वनयारक्तकंठया ॥ ९ ॥
विचित्रस्वरनादज्ञोदेवराजोऽपितोषितः ॥ अस्याःकौतुकभिन्नांग्यावादयंत्याविपंचिकाम् ॥१०॥
नानावक्रगतिस्निग्धंश्रुत्वातंपञ्चमध्वनिम् ॥ तुतोषोद्भिन्नरोमांचोधुन्वन्मौलिंमहेश्वरः ॥११॥

नारदजी इससे सन्तुष्ट होगये। यद्यपि यह मुग्धभाव पूर्वक मनोहर कंठ ( स्वर ) से गान कर रही थी ॥९॥ तथापि विचित्र स्वरनाद के ज्ञाता देवराजको इसने मोहित कर लिया। जिस समय यह वीणा बजा रही थी, उस समय कौतुकवशात् इसके अंग थिरक रहे थे ॥ १० ॥ अनेक प्रकारकी वक्रगति से स्निग्ध हुई इसकी पंचमध्वनिको सुनकर सन्तुष्ट होजाने के कारण महादेवजीके रोम खड़े हो गये, सुतराम् वे अपने सिर को हिलाने लगे ॥११॥ शीलस्वभाव,

उदारता आदि गुण एवं यौवनकी सम्पत्ति से युक्त इस के समान अन्य कोई स्त्री स्वर्गमें भी नहीं है ॥ १२ ॥ कहाँ तो यह देवमुखी स्त्री और कहाँ ( इसके लिये ) व्याघ्र मुखवाला मैं पुरुष ! हे ब्रह्मन् ! इस चिन्तासे ही मैं रात दिन अपने हृदयमें भस्म होता रहता हूँ ॥ १३ ॥ हे इक्ष्वाकुनदन ! विद्याधरके ऐसे वाक्य सुन दिव्यलोचन और

शीलौदार्यगुणग्रामरूपयौवनसम्पदा ॥ नानयासदृशनाकेकाचिदस्तिनितम्बिनी ॥१२॥
क्वेयंदेवमुखीरामाक्वाहंव्याघ्रमुखः पुमान् ॥ इतिब्राह्मणसंचिन्त्यदह्यामिहृदिसर्वदा ॥१३॥
इतिविद्याधरप्रोक्तंश्रुत्वाचैक्ष्वाकुनंदन ॥ त्रिकालज्ञो भृगुःप्राहप्रहसन्दिव्यलोचनः ॥१४॥
शृणुविद्याधरश्रेष्ठ विचित्रं कर्मणां फलम् ॥ प्राप्यप्राज्ञानमुह्यन्तिमुह्यन्त्यज्ञानचेतसः ॥१५॥
मक्षिकापदमात्रंतुयथाहिविषिमं विषम् ॥ क्रियात्वविहिताल्पापिविपाकेदारुणा तथा ॥१६॥

त्रिकालदर्शी भृगुजी महाराज हँसकर बोले ॥ १४ ॥ सुनो श्रेष्ठ विद्याधर ! कर्मों के विचित्र फल को पाकर ज्ञानी पुरुष तो मोह नहीं करते किन्तु अज्ञानियों को मोहकी प्राप्ति हो जाती है ॥ १५ ॥ जैसे मक्खी के चरण के बूंद सदृश भी विष विषही होता है, ऐसे ही अल्पविधिरहित भी क्रिया फल देनेमें बड़ी दारुण होती है ॥ १६ ॥ पहिले जन्म में तुमने माघ मास का एकादशी के दिन व्रत धारण करके द्वादशीके दिन शरीरमें तेल लगा लिया था, इसी कारण तुम्हारा मुख

व्याघ्र का हो गया है ।। १७ ।। पवित्र एकादशी के दिन उपवास धारण करके पुरूरवानेभी पहिले ऐसे ही द्वादशी को तैल सेवन कर लिया था, इसीसे उसका भी देह कुरूप हो गया था ।।१८।। जब पुरूरवाने अपने देह को ऐसा कुरूप देखा तब उसके चित्तको बड़ा खेद हुआ तब वह गिरिराजके निकट सरोवर के तटपर चला आया ।.१९।। परम प्रीति पूर्वक स्नान करके पवित्र होकर कुशासनके ऊपर बैठ गया, और समस्त इन्द्रियोंपर विजय करके, नवीन नीले मेघके समान

उपोष्यैकादशींमाघेतैलाभ्यंगःकृतस्त्वया ॥ द्वादश्यांप्रागभवे देहे तेनव्याघ्रमुखोभवान् ।।१७।। उपोष्यैकादशींपुण्यांद्वादश्यांतैलसेवनात् ।। कुरूपंप्राप्तवान्देहंपुराह्येवंपुरूरवा ॥१८॥ दृष्ट्वा-त्मनः कुकायं स तेनदुःखेनदुःखितः ।। गिरिराजंसमागम्यदेवतासरसस्तटे ॥१९॥ स्थित्वा-च परमप्रीत्या शुचिः स्नातःकुशासने ।। नवनीलघनश्यामंनलिनायतलोचनम् ॥२०॥ शंख-चक्रगदापद्मधरंपीताम्बरावृतम् ।। कौस्तुभेनविराजन्तंवनमालाधरंहरिम् ॥२१॥ चिन्तयन्हृदये-राजानिगृहीताखिलेन्द्रियः ।। मासत्रयंनिराहारस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥२२॥ अल्पेनतपसातुष्टः

श्याममूर्ति, कमलवत् विस्तृत नेत्रोंवाले, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी पीताम्बर ओढ़े कौस्तुभमणि जिनकी शोभा बढ़ा रहा है, और जिन हरिने बनमाला धारण कर रक्खी है उनका अपने हृदय में ध्यान करके राजा ने तीन मास पर्य्यन्त निराहार रहकर दारुण तप किया ।। २०-२१-२२ ।। चूँकि पहिले सात जन्म में भी राजाने पूजा करी थी, इस

हेतु भगवान् थोड़े ही समय में अल्पतप करने सेही प्रसन्न होगये और राजाकी उक्त पूजाका स्मरण करके स्वयं प्रादुर्भूत हुए ॥ २२ ॥ मकरके सूर्यमें माघशुक्ल द्वादशीके दिन आनन्द पूर्वक उस चक्रवती राजाका शंखोदकसे अभिषेक करके ॥ २४ ॥ वासुदेव भगवान् ने तैलाभ्यंग क्रिया चेष्टा का स्मरण कराय अत्यन्त कमनीय, अतिशय सुन्दर और मनोहर रूप

सहजन्मकृतार्चनः । संस्मरंस्तस्यरूपंतत्सदेवेशस्तदास्वयम् ॥२३॥ माघस्यशुल्कपक्षतुद्वादश्यांमकरेरवौ। शंखाद्भिरभिषिच्याशुमुदा तं चक्रवर्तिनम् ॥२४॥ वासुदेवोददौतस्मस्माश्र्यंस्तैलचेष्टितम् ॥ अतीवसुन्दरंरूपंकमनीयंमनोहरम् ॥२५॥ येनतंचकमेदेवीउर्वशीदेवनायिका ॥ इत्थंलब्धवरोराजाकृतकृत्यः पुरंगतः॥२६ इतिकर्मगतिंज्ञात्वाकिंविद्याधरखिद्यते ॥ भवान्परिजिहीर्षुश्चेद्दानवस्यविरूपताम् ॥२७॥ शीघ्रंमद्वचनादेवप्राचीनाघविनाशनम् ॥ माघमासंकुरुस्नानंमणिकूटनदीजले ॥२८॥ मुनिसिद्धसुरैर्जुष्टेकथयिष्यामितद्विधिम् ॥ तव

उसे दे दिया ॥ २५ ॥ उसकी सुन्दरता के कारण उर्वशी नामक अप्सरा उसे चाहने लगी, राजा इस प्रकार वर पाय कृत कृत्य हो अपने नगर को चला गया ॥ २६ ॥ हे विद्याधर ! इस प्रकार कर्मों की गतिको जानकर तुम क्यों खेद करते हो और यदि तुम इस दैत्यरूपका परित्याग करना चाहते हो तो ॥ २७ ॥ तुम हमारे कहनेसे माघमास में मणिकूट नदीके जलमें स्नान करो, तब तुम्हारे प्राचीन जन्म के पापोंका विनाश हो जायगा ॥ २८ ॥ उक्त नदीके ऊपर मुनीश्वर, सिद्ध

पुरुष और देवता निवास करते हैं, स्नान की विधि भी मैं तुम्हारे प्रति वर्णन करूंगा। तुम्हारे भाग्य से माघमास निकट ही अर्थात् आजसे पाँचवें दिन आनेवाला है ॥२९॥ पौषशुक्ल एकादशीसे प्रारम्भ करके भूमिके ऊपर शयन और एक मास पर्यन्त निराहार रहकर तीनों कालमें स्नान करना कर्त्तव्य है ॥ ३० ॥ हे उत्तम विद्याधर !

भाग्यवशान्माघोऽनिकटः पंचमेऽहनि ॥२९॥ पौषस्यैकादशीशुक्लामारभ्यस्थंडिलेशयः ॥ मासमेकंनिराहारस्त्रिकालंस्नानमाचरेत् ॥३०॥ त्रिकालमर्चयन्विष्णुन्त्यक्तभोगोजितेन्द्रियः ॥ माघस्यैकादशी शुक्ला यावद्विद्याधरोत्तम ॥३१॥ ततोनिर्दग्धपापं त्वां द्वादश्यां पुण्यवत्सरे ॥ अभिषिच्येशिवैस्तोयैर्मन्त्रपूतैरहंसुर ॥३२॥ कामवक्त्रोपमंवक्त्रंकरिष्यामितवानघ ॥ देवतावदनोभूत्वात्वंविद्याधरसत्तम ॥ ३३॥ अनयावरवर्णिन्यासार्धंक्रीडयथासुखम् ॥ ज्ञातमाघःभा

इन्द्रिय निग्रह पूर्वक भोगोंका परित्याग करके माघशुक्ल एकादशी पर्यन्त तीनों समयमें श्रीविष्णु भगवानका पूजन करें ॥ ३१ ॥ फिर जब तुम्हारे समस्त पाप दूर हो जायेंगे तब द्वादशीके पवित्र दिन हे किन्नर ! मन्त्रोंसे पवित्र किये हुए कल्याणकारी जलोंके द्वारा तुम्हारा अभिषेक करके ॥३२॥ हे अनघ ! तुम्हारे मुखको कामदेवके समान सुन्दर बना देंगे. हे विद्याधरोंमें श्रेष्ठ ! तब तुम देवमुखवाले होकर ॥३३॥ इस सुन्दरीके साथ नित्य क्रीड़ा करोगे. चूँकि तुम्हें

दोगे, हे विद्याधरोंमें श्रेष्ठ ! तब तुम देवमुखधारी होकर ॥२३॥ इस सुमुखीके साथ नित्य क्रीडा करोगे, चूँकि तुम्हें





माघमासका माहात्म्य विदित हो गया है अतएव तुम माघस्नान नित्यही किया करो ॥३४॥ ऐसा करनेसे सदाही तुम्हारे मनोरथोंकी सिद्धि होती रहेगी, सर्वज्ञ महात्मा भृगुजीने इसप्रकार उसके प्रति वर्णन किया है ॥३५॥ हे राजेन्द्र ! विद्याधरके प्रति फिर भी गाथा का वर्णन किया कि—माघस्नान करनेसे विपत्तिका नाश और पापोंका जय होता है ॥३६॥ माघ स्नान यज्ञोंसे अधिक फल प्रदान करता है, माघस्नान करनेसे समस्त दानों का फल प्राप्त होता है,

वस्त्वंमाघस्नानंसदा कुरु ॥३४॥ यथामनोरथावाप्तिर्जायतेतवसर्वदा ॥ इत्युक्तंभृगुणातस्मै· सर्वज्ञेनमहात्मना ॥३५॥ विद्याधरायराजेन्द्र पुनर्गाथाउदाहृता ॥ माघस्नानैर्विपन्नाशोमाघ· स्नानैरघक्षयः ॥३६॥ सर्वयज्ञाधिकोमाघःसर्वदानफलप्रदः ॥ माघोगर्जतियज्ञेभ्योमाघोयोगाञ्च· गर्जति ॥३७॥ तीव्राच्चतपसामाघो भो विद्याधर गर्जति ॥ पुष्करेचकुरुक्षेत्रेब्रह्मावर्तेपृथूदके ॥३८॥ अविमुक्तेप्रयागेचगंगासागरसंगमे ॥ यत्फलंदशभिर्वर्षैःप्राप्यतेनियमैर्नरैः ॥३९॥

विशेष क्या कहें, केवल एक माघ (स्नान) ही समस्त यज्ञों और योगोंसे अधिक गर्जना करता है ॥३७॥ हे विद्याधर उग्रतप की अपेक्षा भी माघ ( स्नान ) ही अधिक गर्जना करता है, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथूदक ॥३८॥ काशी प्रयागराज और गंगासागर संगम, इन स्थानोंमें दस वर्ष पर्यन्त नियमोंका पालन करनेसे जिस फल की प्राप्ति मनुष्यों को होती है ॥३९॥ वह माघमासमें केवल तीन ही दिन स्नान करनेसे मिलता है, जिनके चित्तमें चिरकाल पर्यन्त

स्वर्गलोकमें निवास करनेके अनुराग का उदय हो रहा हो ॥४०॥ उन्हें चाहिये कि जहाँ कहीं वन पड़े मकर के सूर्य (अर्थात्–माघमास) में स्नान करैं, आयु, आरोग्यता, सम्पत्ति, रूप और सौभाग्य आदि गुणों की प्राप्तिके निमित्त जिनकी कामना हो ॥४१॥ उन्हें माघस्नान कदापि न छोड़ना चाहिये, जो नरकसे डरते हैं, जिन्हें संचित दरिद्रता का

तत्फलंप्राप्यतेमाघेत्र्यहस्नानान्नसंशयः ॥ स्वर्गलोकेचिरंवासोयेषांमनसिवर्तते ॥४०॥ यत्रक्वापिजलेतैस्तुस्नातव्यंमृगभास्करे ॥ आयुरारोग्यसंपत्तीरूपसौभगतागुणे ॥४१॥ येषांमनोरथस्तैस्तुनत्याज्यंमाघमेवनम् ॥ येनविभ्यन्तिनरकाद्येदारिद्र्याच्चसंचितात् ॥४२॥ सर्वथातैःप्रयत्नेनमाघेकार्यंनिमज्जनम् ॥ दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपंकप्रक्षालनायच ॥४३॥ माघस्नानान्नचान्योऽस्तिउपायोराजसत्तम ॥ श्रद्धाहीनानिकर्माणितथात्यल्पफलानिवै ॥४४॥ फलंददातिसम्पूर्णंमाघस्नानंयथातथा ॥ अकामोवासकामोवायत्रक्वापिबहिर्जले ॥४५॥ इहामुत्रचदुः-

भय है ॥४२॥ उन्हें सर्वथा यत्न पूर्वक माघमासमें स्नान करना कर्त्तव्य है, दरिद्रता, पाप और मन्दभाग्य आदि पंक (कीचड़) से प्रक्षालन करने के लिये भी ॥४३॥ हे राजसत्तम! माघस्नान से अधिक और कोई उपाय नहीं है जो कर्म श्रद्धा रहित होके किये जाते हैं वे अल्पफल प्रदान करते हैं किन्तु माघ स्नान चाहे जैसे किया जाय तथापि वह सम्पूर्ण फल प्रदान करता है। निष्काम हो अथवा सकाम कहीं बाहर जलमें ॥४५॥ ... जैसे कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी क्षय और शुक्लपक्षमें वृद्धि

फल प्रदान करता है। निष्काम हो अथवा सकाम कहीं बाहर जन्ममें ॥४४-४५॥

इसलोक अथवा क्या परलोक कहीं भी दुःख नहीं भोगता, जैसे कृष्णपक्षमें चन्द्रमाका क्षय और शुक्लपक्षमें वृद्धि होती है ॥४६॥ इसीप्रकार माघस्नान करनेवाले के पापोंका क्षय और पुण्योंकी वृद्धि होती है, जैसे रत्नाकर (सागर) में भाँति-भाँतिके रत्न होते हैं, उसीप्रकार माघस्नान करनेसे मनुष्योंको विविध भाँतिके पुण्योंकी प्राप्ति होती है। आयु,





खानिमाघस्नायीनविंदति ॥ पक्षद्वयेयथाचन्द्रोवर्द्धतेक्षीयतेतथा ॥४६॥ पातकंक्षीयतेमाघे-
पुण्यराशिश्चवर्द्धते ॥ यथाऽब्धौखलुरत्नानिजायन्तेविविधानिच ॥४७॥ स्नानात्पुण्यानिजा-
यन्तेनराणांमाघतस्तथा ॥ आयुर्वित्तंकलत्रादिसम्पदःप्रभवन्ति च ॥४८॥ कामधेनुर्यथाकामं
चिंतामणिस्तुचिंतितम् । माघस्नानंददातीहतद्वत्सर्वान्मनोरथान् ॥४९॥ कृतेतपःपरंज्ञानं
त्रेतायांयजनंतथा ॥ द्वापरेतुकलौज्ञानंमाघःसर्वयुगेषुच ॥५०॥ सर्वेषामेववर्णानामाश्रमाणां-

धन और स्त्री आदि अनेक सम्पत्तियोंका भी लाभ होता है ॥४७-४८॥ जैसे कामधेनु अपनी सम्पूर्ण कामनाको और चिन्तामणि समस्त चिन्ताओं (मनोरथों) को पूर्ण कर देती है, इसीप्रकार माघस्नान भी अखिल कामनाओंको पूर्ण कर देता है ॥४९॥ सत्ययुगमें तप, त्रेतामें परमज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें केवल ज्ञान एवं माघस्नान सबही युगोंमें फलको देनेवाला है ॥५०॥ हे राजन्! चारों वर्ण और सब आश्रमोंके लिये माघस्नान धर्मकी धाराओंसे

वर्षा करता है ॥५१॥ वसिष्ठजी बोले—भृगुजीके ऐसे वाक्य सुनकर उस विद्याधरने पत्नीसहित भृगुजीके साथही उसी आश्रममें पर्वतके झरनेमें यथोक्त विधिसे स्नान किया ॥५२॥ इसके अनन्तर जब उसे भृगुजीके अनुग्रहसे मनोरथ सिद्धि का लाभ हो गया अर्थात् जब उसका मुख देवताओंके जैसा हो गया तब वह उसी मणिपर्वतके ऊपर



नभूपते ॥ माघस्नानंतुधर्मस्यधाराभिरभिवर्षति ॥५१॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इतिवाक्यंभृगोःश्रुत्वा· तस्मिन्नेवाश्रमेसुरः ॥ सहैवभृगुणामाघेगिरिनिर्झरिणीह्रदे ॥ यथोक्तविधिनास्नानमकरोद्भार्यया सह ॥५२॥ भृगोरनुग्रहात्सोऽथसंप्राप्यमनसेप्सितम् ॥ देवतावदनोभूत्वामुमुदेमणिपर्वते ॥५३॥ आजगामभृगुर्विंध्यंतमनुग्राह्यहर्षितः ॥५४॥ मणिमयगिरिराजेस्नानमात्रेणमाघेमदन· वदनरूपस्तत्रविद्याधरोऽभूत ॥ क्षपितनियमदेहोविन्ध्यपादावतीर्णोभृगुरपिसहशिष्यै राज·

आनन्द उपभोग करने लगा ॥५३॥ इधर भृगुजी महाराज भी उसके ऊपर अनुग्रह करके अतिशय प्रसन्न हो विन्ध्या-चलके ऊपर चले गये ॥५४॥ मणिमय गिरिराजके ऊपर केवल माघमासमें स्नानमात्र करनेसे विद्याधर का मुख कामदेवके मुखके सदृश होगया, नियमोंका आचरण करनेसे जिनका शरीर कृश होगया है ऐसे भृगुजी भी विन्ध्या-

माहात्म्यका द्विजराज भृगुजीने विद्याधरके प्रति वर्णन किया, जो व्यक्ति नित्यही इसका श्रवण करते हैं उन्हें विविध प्रकारके विचित्र फल और मनोरथ देवताओंके समान प्राप्त होते हैं ॥५६॥

इति श्रीमाघमासमाहात्म्येभाषाटीकायां वसिष्ठदिलीपसंवादो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥



गामाथरेवाम् ॥५५॥ अखिलभुवनमारंमाघमाहात्म्यमेतद्द्विजवरभृगुणोक्तंभूपविद्याधराय ॥ विविधफलविचित्रं यःशृणोतीह नित्यं रुचिरसकलकामान्देववत्प्राप्नुयात्सः ॥५६॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमासमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

वसिष्ठजी बोले—जिसप्रकार एक समय कार्त्तवीर्यके प्रश्न करनेपर दत्तात्रेयजीने वर्णन किया था, हे नृपसत्तम! अब हम उसी माघमाहात्म्य को तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥१॥ साक्षात् नारायण स्वरूप दत्तात्रेयजी महाराज जब

वसिष्ठ उवाच ॥ अधुना माघमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ॥ पृच्छतेकार्तवीर्यायदत्त-त्रेयोदितं यथा ॥१॥ दत्तात्रेयंहरिंसाक्षाद्वसन्तसह्यपर्वते ॥ पप्रच्छतंद्विजंगत्वाराजामाहिष्मती-पतिः ॥२॥ सहस्रार्जुन उवाच ॥ भगवन्योगिनांश्रेष्ठसर्वेधर्माःश्रुतामया ॥ माघस्नानफलंब्रूहि-



सह्य पर्वतके ऊपर निवास करते थे, तब माहिष्मती नगरीके राजाने उनसे जाकर यह प्रश्न किया ॥२॥ सहस्रार्जुन

बोला—हे भगवन् ! आप सब योगियोंमें श्रेष्ठ हैं, मैंने सम्पूर्ण धर्मों का श्रवण किया, अब हे सुव्रत ! माघस्नानके फलका वर्णन करिये ॥३॥ दत्तात्रेयजी बोले—हे नृपशार्दूल ! इस प्रश्नका शुभ उत्तर श्रवण करो, प्रथम ब्रह्माजीने महात्मा नारदजीके प्रति वर्णन किया था ॥४॥ माघस्नानका वही प्रभूत सब फल मैं वर्णन करता हूँ, यथादेश,

कृपयाममसुव्रत ॥३॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ श्रूयतांनृपशार्दूलएतत्प्रश्नोत्तरंशुभम् ॥ ब्रह्मणोक्तं-पुराह्येतन्नारदायमहात्मने ॥४॥ तत्सर्वंकथयिष्यामिमाघस्नानफलंमहत् ॥ यथादेशंयथातीर्थं यथाश्राद्धंर्मयथाक्रियाम् ॥५॥ अस्मिन्वैभारतेवर्षेकर्मभूमौविशेषतः ॥ अमाघस्नायिनांनृणां-निष्फलं जन्मकीर्तितम् ॥६॥ असूर्यंगगनंयद्वद्चन्द्रमुडुमण्डलम् ॥ तद्वद्नाभातिसत्कर्ममाघ स्नानंविना नृप ॥७॥ व्रतैर्दानैस्तपोभिश्चनतथाप्रीयतेहरिः ॥ माघमज्जनमात्रेणयथाप्रीणाति केशवः ॥८॥ नसमंविद्यतेकिंचित्तेजःसौरेणतेजसा ॥ तद्वत्स्नानेनमाघस्यनसमाःक्रतुजाःक्रिया ॥९॥

यथातीर्थ यथाश्राद्ध और यथा क्रिया ॥५॥ जो मनुष्य इस भारतवर्ष और विशेषकर कर्मभूमिमें माघस्नान नहीं करते उनका जन्म निष्फलही है ॥६॥ जैसे बिना सूर्यके आकाश और बिना चन्द्रमाके तारागणकी शोभा नहीं होती है उसीप्रकार हे राजन् ! माघस्नानके बिना अन्य सत्कर्म सुशोभित नहीं होते ॥७॥ व्रत-दान और तप करनेसे भी भगवान् ऐसे प्रसन्न नहीं होते जैसे माघमासमें केवल स्नानमात्र करनेसे प्रसन्न हो जाते हैं ॥८॥ जैसे-

सूर्यनारायणके तेजके समान अन्य कोई तेज नहीं है, इसी प्रकार माघस्नानके समान यज्ञानुष्ठान भी नहीं है ॥ ९ ॥ मनुष्य को चाहिये कि, वासुदेव भगवान्‌की प्रीति, सब पापों का नाश और स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये माघस्नान अवश्य करे ॥१०॥ अतिशय पुष्ट और बलवान् जो यह देह अपवित्र और नाशवान् है यदि माघस्नान न किया तो ऐसे देहसे क्या लाभ है ॥११॥ ऐसे देहमें अस्थियोंके स्तम्भ, स्नायुओंका बन्धन, मांस और रक्तके लेप हैं, इसके ऊपर चर्म लिपट रहा है।

प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये ॥ माघस्नानं प्रकुर्वीतस्वर्गलोकायमानवः । १० ॥ किंरक्षितेनदेहेनसुपुष्टेनबलीयसा ॥ अध्रुवेणाप्यशुचिना माघस्नानंविनाभवेत् ॥ ११ । अस्थिस्तंभंस्नायुबद्धं मांसक्षतजलेपनम् ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धंपात्रंमूत्रपुरीषयोः ॥१२॥ जराशोकविपद्व्याप्तंरोगमंदिरमातुरम् ॥ रजस्वलमनित्यंचसर्वदोषसमाश्रयम् ॥१३॥ परोपतापितापार्तंपरद्रोहिपरंविषम् ॥ लोलुपंपिशुनंक्रूरंकृतघ्नंक्षणिकंतथा ॥ १४॥ दुष्पूरंदुर्धरंदुष्टंदोषत्रयसमन्वितम् ॥

यह शरीर मूत्र और पुरीष (विष्टा) का पात्र और दुर्गन्धिसे पूर्ण है ॥१२॥ जरा, शोक और विपत्तिसे व्याप्त है, रोग और दुःखोंका मन्दिर है, अनेक दोष इसमें भरे रहते हैं, एवं यह काया अनित्य है ॥१३॥ दूसरोंको सन्ताप देनेवाला, स्वयं भी तापोंसे व्याप्त, दूसरोंसे द्रोह करनेवाला, परम विषरूप, लोभी, पिशुन, ( निन्दक ) क्रूर, (दुष्ट) और कृतघ्न अर्थात् दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकारोंको न माननेवाला, और क्षणविध्वंसी है ॥१४॥ इसकी पूर्ति बड़े दुःखोंसे

होती है, इसका पोषण भी बड़े-बड़े क्लेशोंसे होता है, यह दुष्ट- सत्त्व, रज, तम तीनों प्रकारके दोषोंसे लिप्त है, अशुद्ध है, स्राव करनेवाला, छिद्रोंसे व्याप्त और दैहिक दैविक भौतिक इन तीनों तापोंसे व्याप्त रहता है ॥ १५ ॥ इसकी स्वाभाविक ही अधर्म में प्रवृत्ति रहती है, सैकड़ों तृष्णायें इसमें भरी पड़ी हैं, नरकके द्वाररूप कामक्रोध और महालोभ इसमें उपस्थित हैं ॥ १६ ॥ अन्तमें इसमें कीड़े पड़ते या यह भस्म होता अथवा श्वानोंके खानेमें आता है,

अशुचिस्राविसच्छिद्रंतापत्रयविमोहितम् ॥ १५ ॥ निसर्गतोऽधर्मरतंतृष्णाशतसमाकुलम् ॥ कामक्रोधमहालोभनरकद्वारसंस्थितम् ॥ १६ ॥ क्रिमिविड्भस्मभवतिपरिणामेशुनांहविः ॥ ईदृक्शरीरंव्यर्थंहिमाघस्नानविवर्जितम् ॥ १७ ॥ बुद्बुदाइवतोयेषुपूतिकाइवजंतुषु ॥ जाय-न्तेमरणायैवमाघस्नानविवर्जिताः ॥ १८ ॥ अवैष्णवोहतोविप्रोहतंश्राद्धमयोगि न ॥ अब्रह्म-ण्यंहतंक्षेत्रमनाचारंहतंकुलम् ॥ १९ ॥ सदंभश्चहतोधर्मक्रोधेनैवहतंतपः ॥ अदृढंचहतंज्ञानं-

यदि माघस्नान न किया जाय तो यह ऐसा ( निंद्य ) शरीर निष्फल ही है ॥१०॥ यदि मनुष्य माघस्नान न करैं, तो उनका जन्म जल के बुद्बुद अथवा दीमककी भाँति नष्ट होजाने के लिये होता है ॥ १८ ॥ ब्राह्मणमें यदि विष्णु भगवान्की भक्ति न हो तो, उसे नष्ट जानना चाहिए, अयोगी का श्राद्ध नष्ट होना है, जहाँ ब्राह्मणोंकी भक्ति न हो वह क्षेत्र नष्ट है, एवं आचाररहित कुलका विनाश हो जाता है ॥ १९ ॥ दम्भपूर्ण धर्म, क्रोधयुक्त तप, दृढ़ता रहित ज्ञान

चेत्र नष्ट है, एवं आचाररहित कुलका विनाश हो जाता है ॥ १९ ॥ छलपूर्ण धर्म, क्रोधयुक्त तप, दृढ़ता रहित ज्ञान





और अभिमानसे शास्त्रोंका श्रवण करना ये सब नष्ट होते हैं ॥२०॥ जिसमें गुरुभक्ति न हो उस स्त्री और ब्रह्मचारी को नष्ट जानना चाहिये, जो अग्नि प्रदीप्त न हो उसमें किया हुआ होम नष्ट हो जाता है और अकेले भोजन करना भी नष्ट होता है ॥२१॥ उपजीविकाके निमित्त कन्या हत है, केवल अपनेही लिये जो भोजन बनाया जाता है वह हत

प्रमादेनहतंश्रुतम्॥२०॥ गुर्वभक्ताहतानारीब्रह्मचारीतथाहतः॥ अदीप्तेग्नौहतोहोमोहताभुक्ति-रसाक्षिका ॥ २१ ॥ उपजीव्याहताकन्यास्वार्थेपाकक्रियाहता ॥ शूद्रभिक्षोहतोयागःकृपणस्य-हतंधनम् ॥२२॥ अनभ्यासाहताविद्याहतोराजाविरोधकृत् ॥ जीवनार्थंहतंतीर्थंजीवनार्थंहतं-व्रतम् ॥ २३ ॥ असत्याचहतावाणीतथापैशुन्यवादिनी ॥ संदिग्धश्चहतोमंत्रोव्यग्रचित्तोहतो-जपः ॥२४॥ हतमश्रोत्रियेदानं हतो लोकश्चनास्तिकः ॥ अश्रद्धयाहतंसर्वंकृतंयत्पारलौकिकम्

है, शूद्र भिक्षुकका यज्ञ नष्ट है इसी प्रकार कृपण का धन भी नष्ट है ॥२२॥ अभ्यासरहित विद्या, विरोध करनेवाला राजा, प्राणनिर्वाहके लिए तीर्थसेवन, और जीवन ही के निमित्त व्रतका आचरण ये सब नष्ट हैं ॥२३॥ असत्य तथा पैशुन्य (चुगली) से वाणी नष्ट हो जाती है, जिसमें सन्देह हो ऐसे मन्त्रका जप व्यर्थ है, एवं चित्त व्यग्र होनेसे भी जप हत अर्थात् व्यर्थ ही होता है ॥ २४ ॥ जो वेदपाठी नहीं है उसे दान देना व्यर्थ है। नास्तिक अर्थात् वेदनिन्दक

लोक हत है, और श्रद्धारहित होके परलोकके निमित्त जो कुछ कर्म किया जाय वह सब वृथा है ॥ २५ ॥ हे राज-सत्तम ! इस लोकमें दरिद्रतासे मनुष्यों का सभी कुछ नष्ट है, जैसे उक्त सब नष्ट हैं, इसी प्रकार माघस्नान न करनेवाले मनुष्योंका जीवन भी नष्ट अर्थात् व्यर्थ है ॥ २६ ॥ जो व्यक्ति मकरके सूर्यमें सूर्योदय के प्रथम स्नान नहीं करते, उनके पाप कैसे छूटेंगे और वे स्वर्गको कैसे जायँगे । २७ ॥ ब्रह्मघाती, सुवर्णका चोर, मद्यपान कर्ता, गुरुपत्नीगामी,

॥२५॥ इहलोकेहतोनृणांदरिद्रेणनृपोत्तम् ॥ मनुष्याणांतथाजन्ममाघस्नानंविनाहतम् ॥२६॥ मकरस्थेरवौयोहिनस्नात्यनुदितेरवौ ॥ कथंपापैःप्रमुच्येतकथंसत्रिदिवंव्रजेत् ॥ २७ ॥ ब्रह्म-हाहेमहारीचसुरापोगुरुतल्पगः ॥ माघस्नायीविशुद्धःस्यात्तत्संसर्गीचपंचमः ॥ २८ ॥ माघ-मासेरटंत्यापःकिंचिदभ्युदितेरवौ ॥ ब्रह्मघ्नंवासुरापंवाकंपतितंपुनीमहे ॥२९॥उपपापानिसर्वाणि-पातकानिमहान्त्यपि ॥ भस्मीभवंतिसर्वाणिमाघस्नायिनिमानवे ॥ ३० ॥ कंपंतिसर्वपापानि-

और इनका संसर्ग करनेवाला ये पाँचों ही महापातकी माघस्नान करनेसे बिलकुल शुद्ध हो जाते हैं ॥२८॥ माघ-मासमें सूर्यके किंचिन्मात्र उदय होने पर जल यों कहते हैं—कि जलमें स्नान करनेवाला ब्रह्मघाती और मद्यपान कर्ता को हम पवित्र करेंगे ॥२९॥ छोटे-छोटे सब पातक और महापाप ये सबही माघस्नान करनेवाले मनुष्यों के नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥ जब माघस्नान का प्रारम्भ होता है तब संपूर्ण पाप कंपायमान होने लगते हैं, क्योंकि वे जानते हैं

संप्रति स्नान करनेसे ये हमारे विनाशका समय है ॥ ३१ ॥ माघस्नान करनेके लिये मनुष्य का उद्यत हुआ देख पाप इस प्रकार कोलाहल करने लगते हैं, सुतराम् माघमास में स्नान करनेसे मनुष्य अग्निके समान प्रदीप्त हो जाते हैं ॥३२॥ माघस्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त होके इस प्रकार शुद्ध हो जाता है जैसे मेघ निर्मुक्त चन्द्रमा निर्मल होता है, आर्द्र ( गीला ) शुष्क स्वल्प अथवा विशेष, मन वचन कर्म से किये हुए सब पापों को ॥३३॥ माघस्नान

माघस्नानसमागमे ॥ नाशकालोऽयमस्माकंयदिस्नास्यतिवारिणी ॥ ३१ ॥ एवंक्रोशंतिपापा-निदृष्ट्वास्नानोद्यतंनरम् ॥ पावकाइवदीप्यंतेमाघस्नानैर्नरोत्तमाः ॥३२॥ विमुक्ताःसर्वपापेभ्यो-मेघेभ्यइवचंद्रमाः ॥ आर्द्रं शुष्कंलघुस्थूलंवाङ्मनःकर्मभिःकृतम् ॥३३॥ माघस्नानंदहत्पापं-पावकःसमिधोयथा ॥ प्रमादिकंचयत्पापंज्ञानाज्ञानकृतंचयत् ॥ ३४ ॥ स्नानमात्रेणतन्नश्येन्म-करस्थेदिवाकरे ॥ निष्पापास्त्रिदिवंयान्तिपापिष्ठायान्तिशुद्धताम् ॥३५॥ संदेहोनात्रकर्तव्यो-

इस प्रकार भस्म कर देता है, जैसे अग्नि समिधाओं को भस्म करता है जो पाप प्रमाद ( असावधानी ) से किये गये हैं अथवा ज्ञान वा अज्ञान से जो पाप किये गये हैं ॥ ३४ ॥ मकरके सूर्यमें केवल स्नानमात्र करनेही से उन सबका नाश हो जाता है, पापहीन व्यक्ति स्नान करनेसे स्वर्गको जाते हैं और पापीजन माघस्नान करें तो शुद्ध हो जाते हैं ॥३५॥ हे राजन् ! यह जो माघस्नानका फल है इसमें किसी प्रकारका सन्देह करना कर्त्तव्य नहीं है, और जिस

प्रकार श्रीविष्णु भगवान्की भक्ति करनेमें सभी का अधिकार है, इसी प्रकार हे नरपाल! माघस्नान करनेके लिये भी सभी अधिकारी हैं ॥३६॥ माघ सभी को स्वर्ग देता है, सभ के पापोंका नाश करता है और परम मन्त्ररूप है, और माघहीको परमतप भी समझना चाहिये ॥३७॥ एवं च माघस्नान ही सर्वोत्तम प्रायश्चित है, और पूर्वजन्ममें



माघस्नानेनराधिप ॥ सर्वेंधिकारिणोह्यत्रविष्णुभक्तौयथानृप ॥ ३६ ॥ सर्वेषांस्वर्गदोमाघःसर्वेषांपापनाशनः ॥ एषएवपरोमंत्रोह्येतदेवपरंतपः ॥३७॥ प्रायश्चित्तंपरंचैतन्माघस्नानमनुत्तमम् ॥ नृणांजन्मांतराभ्यासान्माघस्नानेमतिर्भवेत् ॥३८॥ अध्यात्मज्ञानकौशल्यंजन्माभ्यासाद्यथानृप ॥ संसारकर्दमाक्षेपप्रक्षालनविशारदम् ॥ ३९ ॥ पावनंपावनानांचमाघस्नानंपरंनृप ॥ स्नांतिमाघेनयेराजन्सर्वकामफलप्रदे ॥ ४० ॥ कथंतेभुंजतेभोगांश्चंद्रसूर्यग्रहोपमान् ॥ शृणु-

( सुकृतका ) अभ्यास करने ही से मनुष्योंकी माघस्नान करने की मति होती है ॥३८॥ हे नरपति! जैसे पूर्वजन्म के अभ्यास ही से अध्यात्मज्ञान में निपुणताकी प्राप्ति होती है, और वह सांसारिक पंकका प्रक्षालन करती है ॥३९॥ इसी प्रकार हे नृप! यह माघस्नान पवित्रोंको भी पवित्र करने वाला है, हे राजन्! सम्पूर्ण कामनाओं के फल प्रदान करनेवाले माघमासमें जो मनुष्य स्नान करते हैं ॥ ४० ॥ वे चन्द्र, सूर्य, ग्रहोंके समान भोगोंका उपभोग

कैसे कर सकते हैं, हे राजन्! माघस्नान के प्रभावसे उदय आश्चर्यजनक वृत्तान्त को सुनो ॥ ४१ ॥ भृगुजी के वंशमें उत्पन्न हुई कुब्जिका नामक एक परम कल्याणी ब्रह्माणी थीं, उसने बालवैधव्य के दुःखसे क्लेशित हो दारुण तपश्चर्या की ॥ ४२ ॥ विन्ध्याचल के महाक्षेत्र में जहाँ रेवा कपिलाका संगम है वहाँ ही उसने व्रत धारण कर

राजन्महाश्चर्यंमाघस्नानप्रभावजम् ॥४१॥ कुब्जिकानामकल्याणीब्राह्मणीभृगुवंशजा ॥ बाल-वैधव्यदुःखार्तातपस्तेपेसुदुस्तरम् ॥ ४२ ॥ विन्ध्यपादेमहाक्षेत्रेरेवाकपिलसंगमे ॥ तत्रसाव्रती-नीभूत्वानारायणपरायणा ॥ ४३ ॥ सदाचारवतीनित्यानित्यंसंगविवर्जिता ॥ जितेन्द्रिया-जितक्रोधासत्यवाक्स्वल्पभाषिणी ॥ ४४ ॥ सुशीलादानशीलाचदेहशोषणशालिनी ॥ पितृदेव-द्विजेभ्यश्चदत्त्वाहुत्वातथाऽनले ॥४५॥ षष्ठेकालेचसाभुङ्क्तेह्युञ्छवृत्तिःसदानृप ॥ कृच्छ्राति-

नारायण के निमित्त अपने चित्त को लगाया ॥४३॥ वह सदा ही सदाचरणका पालन करती थी, उसने समस्त संगका परित्याग कर दिया, वह इन्द्रियों और क्रोध पर विजय करके स्वल्प और सत्य भाषण करती थी ॥४४॥ उसका स्वभाव सुशील और दान करने की प्रकृति थी, उसने तप करके अपने देहको शुष्क कर दिया था वह देवता और ब्राह्मणोंको दान एवं अग्निमें हवन करके ॥ ४५ ॥ सदा शिला ( उंछ ) वीन के छठें काल में भोजन करती थी, हे

राजन् कृच्छ्,अतिकृच्छ् तथा तप्तकृच्छ् आदि व्रतोंके द्वारा ॥ ४६ ॥ पुण्याचरणसे वह सदाचारिणी नर्मदाके तट पर मासोंको व्यतीत करती थी, इस प्रकार उस सुशीला तपस्विनी ने वल्कलोंके वस्त्र धारण कर ॥ ४७ ॥ महासती गुणधैर्य्य और सन्तोष धारणपूर्वक रेवा कपिलके संगम में साठ माघोंमें स्नान किया ॥ ४८ ॥ सुतराम् हे नृप ! वह

कृच्छ्पाराकतप्तकृच्छ्रादिभिर्व्रतैः ॥४६॥ पुण्यान्नयतिसामासान्नर्मदायाश्चरोधसि ॥ एवं तया- तपस्विन्यावल्कलिन्यासुशीलया ॥ ४७ ॥ सुमहासत्त्वशालिन्याधृतिसंतोषयुक्तया ॥ षष्टिर्मा- घस्तयास्नातारेवाकपिलसंगमे ॥ ४८ ॥ ततःसातपसाक्षीणातस्मिंतीर्थेमृतानृप ॥ माघस्नान- जपुण्येनतेनसावैष्णवेपुरे ॥ ४६ ॥ उवासप्रमुदायुक्ताचतुर्युगसहस्रकम् ॥ सुन्दोपसुन्दनाशाय- पश्चात्पद्मभवात्पुनः ॥ ५० ॥ तिलोत्तमेतिनाम्नासाब्रह्मलोकेऽवतारिता ॥ तेनपुण्यस्यशेषेणरू- पस्यैकायनंययौ ॥ ५१ ॥ अयोनिजाबलारत्नंदेवानामपिमोहिनी ॥ लावण्यहृदिनीतन्वासा-

तपसे क्षीण होकर उसी तीर्थमें मर गई, तब माघस्नान के पुण्य से वह विष्णुलोकमें ॥ ४६ ॥ सहस्र चतुर्युगोपर्यन्त आनन्दपूर्वक निवास करती रही, इसके अनन्तर सुन्द उपसुन्दका विनाश करने के लिये कमलयोनि ब्रह्माजीके द्वारा ॥५०॥ तिलोत्तमा नामसे ब्रह्मलोकमें अवतीर्ण की गई, और इसी पुण्यकी विशेषतासे वह अत्यन्तही रूपवती हुई ॥ ५१ ॥

को भी मोहित होना पड़ता था, और वह सूक्ष्मांगी सौन्दर्यको बराबर ...

निर्मित कर चतुर ब्रह्माजी को भी आश्चर्यकी प्राप्ति हुई, उसको निर्माण कर चुकने के अनन्तर सन्तुष्ट होके ब्रह्माजी ने यह आज्ञादी कि ॥ ५३ ॥ हे मृगशावकलोचने ! दैत्योंका विनाश करनेके लिये शीघ्र ही तुम यहाँसे जाओ, तब वह भामिनी वीणा लेकर ब्रह्माजीके लोकसे ॥ ५४ ॥ आकाशमार्गके द्वारा वहाँ गई, जहाँ वे दोनों देवशत्रु उपस्थित थे,

भूदप्सरसांवरा ॥ ५२ ॥ निपुणस्यविधेःस्रष्टुर्नूनमाश्चर्यकारिणी ॥ तामुत्पाद्यविधातावैतुष्टोनुज्ञातदाददौ ॥५३॥ एण शावाक्षिगच्छत्वंदैत्यनाशायसत्वरम् ॥ ततः साब्रह्मणोलोकाद्वीणामादायभामिनी ॥ ५४ ॥ गतापुष्करमार्गेणयत्रतौदेववैरिणौ ॥ तत्रस्नात्वातुरेवायाःपवित्रेनिर्मलेजले ॥५५॥ परिधायांबरंरक्तंबंधूककुसुमप्रभम्॥ रणद्वलयिनीचारुसिजन्मेखलनूपुरा ॥५६॥ लोकमुक्तावलीकंठीचलत्कुण्डलशोभना । माधवीकुसुमापोडाकिंकेलीविटपेस्थिता ॥ ५७ ॥

वहाँ रेवाके पवित्र और निर्मल जलमें स्नान करके ॥ ५५ ॥ दुपहरीके पुष्पके समान लाल-लाल वस्त्रोंको उसने धारण किया, उसकी सुन्दर करधनी शब्द करने लगी, एवम् नूपुर भी शब्द कर रहे थे ॥५६॥ उसके कण्ठमें मुक्ताओं की माला चलायमान थी, उसके सुन्दर कुण्डल भी हिल रहे थे, उसके जूड़ेमें चमेलीके पुष्प गुंथे हुए थे, ऐसी विधि से वह अशोक वृक्षके नीचे जाके बैठ गई ॥ ५७ ॥ अथ च वह सुमनोहर स्निग्ध स्वर से गान करती, वीणा बजाती

छवों स्वरोंके तानका उत्थान मनोहरतासे करती थी ॥ ५८ ॥ इस प्रकार उस तिलोत्तमाको अशोक वनमें उपस्थित हुई दैत्यके दूतों ने इस प्रकार देखा जैसे चन्द्रमाकी कला हृदयमें सुख देनेवाली होतीं है ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! उसे देखतेही सैनिक लोग अतिशय विस्मित हुए और वे हर्षित हो सुन्द उपसुन्दके निकट जाके निवेदन किये ॥ ६० ॥



गायन्तीसुस्वरंसापीडयंतीतुवल्लकीम् ॥ मूर्च्छयंतीस्वरषट्कंसुस्निग्धं कोमलंकलम् ॥ ५८ ॥ इत्थंतिलोत्तमाबालातिष्ठत्यशोककानने ॥ दृष्ट्वादैत्यभटौरिन्दोःकलेवसुखदाहृदि ॥५९ ॥ तां-दृष्ट्वाविस्मितैराजन्सानन्दैःसैनिकैर्भृशम् ॥ त्वरमाणैरदृष्टैवगत्वासुन्दोपसुन्दयोः ॥ ६० ॥ कथितासंभ्रमेणैववर्णयित्वापुनःपुनः॥ हेदैत्यौनविजानीमोदेवीवादानवीनुकिम् ॥६१॥ नागां-गनाथवायक्षीस्त्रीरत्नंसर्वथातुसा ॥ युवांरत्नभुजौलोकेरत्नभूतेतिसाबला ॥ ६२ ॥ वर्त्ततेनाति-दूरेग्रेअशोकेशोकहारिणी ॥ गत्वातांपश्यतंशीघ्रंमन्मथस्यापिमोहिनीम् ॥ ६३ ॥ इतिसेना-

संभ्रमपूर्वक वे दोनोंही से यों कहने लगे कि, हे दैत्यों ! हम नहीं जानते वह देवी है अथवा दानवी है ॥ ६१ ॥ अथवा नागस्त्री वा यक्षिणी कौन है, किन्तु वह सर्वथाही स्त्री रत्न है, लोकमें रत्नोंका उपभोग करनेवाले आप हैं और वह कामिनी रत्नस्वरूप है ॥ ६२ ॥ वह शोकहारिणी थोडीही दूरीपर अशोकके नीचे उपस्थित हैं, आप चलके उसे

सुने तब वे दोनों मद्यपानके प्यालेको और जलसेवन ( कुल्ले ) को भी परित्याग करके ॥ ६४ ॥ एवं सहस्रों उत्तम स्त्रियोंको भी छोड़कर जलाशयमें से निकले, और सौभारकी बनी लोहे की कालदण्ड जैसी ॥६५॥ गदाको पृथक्-पृथक् ले के बड़े वेगसे चले, ( और वहाँ पहुँचे जहाँ ) चण्डीके समान शृंङ्गार किये हुए इनका वध करनेके लिये वह

पतीनांतौश्रुत्वावाक्यंमनोहरम् ॥ चषकंसीधुनस्त्यक्त्वाविहायजलसेचनम् ॥ ६४ ॥ उत्तमस्त्री-
सहस्राणित्यक्त्वातस्माज्जलाशयात् ॥ शतभारायसींक्रूरांकालदंडोपमांगदाम् ॥६५॥ भिन्नां-
भिन्नांगृहीत्वातुजवेनाभिप्लुतंगतौ ॥ यत्रशृंगारसज्जासाहंतुंचंडीवसंस्थिता ॥६६॥ राजन्सं-
धुक्षयंतीवदैत्ययोर्मन्मथानलम् ॥ स्थित्वातस्याःपुरोजातौतद्रूपेणविमोहितौ ॥६७॥ विशेषा-
न्मधुनामत्तावूचतुस्तौपरस्परम् ॥ भ्रातर्विरमभार्येयंममास्तुवरवर्णिनी ॥ ६८ ॥ त्वमेवार्यत्य-
जैतां मे भार्यां तुमदिरेक्षणाम् ॥ इत्याग्रहेणसंरब्धौमातंगाविवसोन्मदौ ॥६९॥ अन्योन्यंकाल

उपस्थित थी ॥६६॥ हे राजन् ! वह बैठी-बैठी उन दोनों दैत्यों के कामाग्नि को प्रदीप्त कर रही थी, तब वे दोनों दुष्ट उसके रूपसे मोहित हो सामने खड़े हो गये ॥ ६७ ॥ कारण कि वे दोनों मद्यपान करनेके हेतु उन्मत्त हो रहे थे सुतराम् परस्पर कहने लगे, हे भाई ! तुम यहाँ से चले जाओ, क्योंकि—यह सुन्दरी हमारी स्त्री है ॥६८॥ हे आर्य ! तुम इस मस्त नेत्रोंवाली हमारी स्त्रीको छोड़ दो, इस प्रकार हठ करते-करते वे दोनों उन्मत्त हाथीके समान ॥६९॥

कालके वशीभूत हो परस्पर गदासे ताड़ना करने लगे, निदान परस्पर प्रहारके कारण निर्जीव हो भूमिके ऊपर निपतित होगए ॥ ७० ॥ उन दोनोंको मृतक हुआ देख सैनिकोंने बड़ा कोलाहल किया, हाय ! यह कालरात्रिके समान कौन है, हाय ! यह क्या उपस्थित हो गया ? ॥ ७१ ॥ इस प्रकार दैत्यसैनिकों के कहते हुए जिस प्रकार पर्वत के दो



निर्दिष्टौगदयाजघ्नतुस्तदा ॥ परस्परप्रहारेणगतासूपतितौभुवि ॥७०॥ तौमृतौसैनिकैर्दृष्ट्वा- कृतः कोलाहलोमहान् ॥ कालरात्रिसमाकेयंहाकिमेतदुपस्थितम् ॥ ७१ ॥ एवंवदत्सुसैन्येषु- दैत्यौसुन्दोपसुन्दकौ ॥ पातयित्वागिरेःशृङ्गेह्रादिनीवतिलोत्तमा ॥७२॥ प्रस्थितागगनंशीघ्रंद्यो- तयन्तीदिशोदश ॥ देवकार्यंततःकृत्वाआगताब्रह्मणःपुरः ॥ ७३ ॥ ततस्तुष्टेनदेवेनविधिना- सानुमोदिता ॥ स्थानंसूर्यरथेदत्तंतवचन्द्राननेमया ॥७४॥ भुक्ष्वभोगाननेकांस्त्वंयावत्सूर्योम्ब-

शिखरोंको गिराकर वज्र आकाशको चला जाता है, उसी प्रकार उन सुन्द तथा उपसुन्दको गिराकर वह तिलोत्तमा ॥ ७२ ॥ दशो दिशाओंको प्रकाशित करती हुई शीघ्रही आकाशमें चली सुरकार्य कर पश्चात् ब्रह्मलोकमें आ गई ॥ ७३ ॥ तब प्रसन्नचित्तसे ब्रह्माजीने उस तिलोत्तमाको अनुमोदित कर कहा कि हे चन्द्रानने ! तुझको सूर्यके रथमें

... उस तिलोत्तमाको अनुमोदित कर कहा कि, हे चन्द्रानन ! तुझको सूर्यके रथमें ४८



राजेन्द्र ! वह कुब्जिका ब्राह्मणी अप्सराओंमें श्रेष्ठ होकर ॥७५॥ अबतक सूर्यलोकमें महान् माघस्नानका फल भोगती है, जिससे हे राजन् ! प्रयत्नपूर्वक परमगतिके चाहनेवाले श्रद्धावान् नर को सदैव मकरके सूर्यमें स्नान करने योग्य है, जो कि माघके स्नान करनेवाले हैं उनको कोई भी पुरुषार्थ इस लोकमें अप्राप्य नहीं रहता, अर्थात् सभी प्राप्त होजाते

रोऽस्यतः । इत्थं सा ब्राह्मणी राजन्भूत्वाचाप्सरसां वरा ॥७३॥ भुक्तेऽद्यापि रवेर्लोके माघस्नान-फलंमहत् ॥ तस्मात्प्रयत्नतो राजन् श्रद्दधानैः सदा नरैः ॥७६॥ स्नातव्यं मकरादित्ये वांछद्भिः-परमांगतिम् ॥ नानवाप्तोऽत्र त्वस्यास्ति पुरुषार्थोहि कश्चन ॥७७॥ नाशं पापानि गच्छन्ति माघ-मज्जतयो नरः ॥ तुलयन्ति न ते तत्र यज्ञाः सर्वे सदक्षिणाः ॥७८॥ माघस्नाने नराजेन्द्र तीर्थे चैवविशेषतः ॥ न चान्यत्स्वर्गदं कर्म न चान्यत्पापनाशनम् ॥७९॥ न चान्यन्मोक्षदं यस्मान्माघस्नान

हैं ॥७६–७७॥ जो नर माघ स्नान करनेवाला है उसका कुछ भी पाप अभोग नहीं रहता बल्कि सभी क्षीण होजाते हैं इस संसार में दक्षिणा सहित समस्त यज्ञ इस माघस्नानके साथ बराबर नहीं हो सकते हैं ॥ ७८ ॥ हे राजेन्द्र ! विशेषकर तीर्थके विषे किये हुए माघस्नानके तुल्य अन्य कर्म स्वर्गका देनेवाला और न अन्य कर्म पापका नाश करनेवाला है ॥ ७९ ॥ और माघस्नानके समान पृथ्वीपर मोक्षका देनेवाला अन्य कर्म भी नहीं है ॥ ८० ॥ इति

समंभुवि ॥८०॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमास माहात्म्ये वसिष्ठदिलीप संवादे माघस्नान प्रशंसायांसुन्दोपसुन्ददैत्यवधोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां सुन्दोपसुन्ददैत्यवधवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन् ! इस माघमहात्म्य में तुझसे प्राचीन इतिहास कहता हूँ सुनो पहिले सत्ययुग के समय अतिश्रेष्ठ नैषध नगरमें ॥ १ ॥ कुबेर के समान धनाढ्य हिमकुण्डल नामका एक वैश्य कैसा

॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ अत्रतेकथयिष्यामिइतिहासंपुरातनम् ॥ पुराकृतयुगेराजन्नैषधेनगरे· वरे ॥१॥ आसाद्वैश्यःकुबेराभो नामतो हिमकुण्डलः ॥ कुलीनःसत्क्रियोदांतोद्विजवह्निसुरा· र्चकः॥२॥ कृषिवाणिज्यकर्तासौबहुधाक्रयविक्रयी ॥ गोघोटकमहिष्यादिपशुपोषणतत्परः ॥३॥

था वह वैश्य कि कुलीन और शुभकर्मोंका करनेवाला तथा जितेन्द्रिय और ब्राह्मण, अग्नि तथा देवताओं की पूजा करता था ॥ २ ॥ यह वैश्य कृषि ( खेती ) वाणिज्य ( व्यापार ) और क्रय विक्रय किया करता था, सुतराम् गौ

भूसा आदि ), काष्ठ, फल, मूल, लवण, पीपल, ॥ ४ ॥ धान्य, शाक, तैल, विविध प्रकार के वस्त्र, धातु और सब प्रकार के इक्षुविकार ( मिठाइयें ) बेचता था ॥ ५ ॥ इस प्रकार उस वैश्य ने अनेक प्रकार का उपाय रचकर आठ करोड़ सुवर्ण की अशर्फियें उपार्जन करीं ॥ ६ ॥ जब वह इस प्रकार महाधनी हो गया और उसके कानतक बुढ़ापा

पयोदधिनितक्राणिगोमयानितृणानिच ॥ काष्ठानिफलमूलानिलवणानिचपिप्पलीम् ॥ ४ ॥ धान्यानिशाकतैलानिवस्त्राणिविविधानिच ॥ धातूनिक्षुविकारांश्चविक्रीणीतेचसर्वदा ॥ ५ ॥ इत्थंनानाविधैर्वैश्यउपायैःपरमैस्तदा ॥ द्रव्याण्युपार्जयामासअष्टौहाटककोटयः ॥६॥ एवंमहाधनःसोथआकर्णपलितोऽभवत् ॥ पश्चाद्विचार्यसंसारक्षणिकत्वंस्वचेतसि ॥ ७ ॥ तद्धनस्यषडंशेनधर्मकार्यंचकार सः । विष्णोरायतनंचक्रेचक्रेगेहंशिवस्यच ॥८॥ तडागंखानयामासविपुलंसागरोपमम् ॥ वाप्यश्चपुष्करिण्यश्चबहुशस्तेनकारिताः ॥९॥ वटाश्वत्थाम्रकंकोलजम्बूनिम्बादिका

आ पहुँची तब उसने अपने चित्त में संसार को क्षणभंगुर विचार कर ॥ ७ ॥ उस धन के छठे भाग से धर्मकार्य करने लगा, सुतराम् उसने विष्णुमन्दिर और शिवालय बनवाये ॥ ८ ॥ समुद्र के समान बड़े २ सरोवर खुदवाये, बावड़ी और पुष्करिणी बनवाई ॥ ९ ॥ तथा उसने बट, पीपल, आम, कङ्कोल, जामुन, नीम आदि के बन लगाये

और पुष्प वाटिका भी लगाई ॥ १० ॥ सूर्योदय से सूर्यास्त पर्य्यन्त बराबर वह अन्नदान करता रहता था, एवं च इसने नगरके बाहर चारों ओर बड़ी २ सुन्दर प्रपा ( प्याऊ ) बनवाये ॥ ११ ॥ भूमि के ऊपर प्रपादान करने का जो कुछ फल है सो पुराणों से प्रसिद्ध ही है, इससे धर्मात्मा ने सभी दान किये ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर जन्म भर



ननम् ॥ आरोपितंसुसत्त्वेनतथापुष्पवनंशुभम् ॥१०॥ उदयास्तमानंयावदन्नदानंचकारसः ॥ पुराद्बहिश्चतुर्दिक्षुप्रपाचक्रेसुशोभना ।११। पुराणेषुप्रसिद्धानिप्रापादानानिभूतले। ददौसता निधर्मात्मानित्यंदानरतस्तथा ॥१२॥ यावज्जीवंकृतेपापे प्रायश्चित्तमथाकरोत् ॥ देवपूजारतो नित्यंनित्यंचातिथिपूजकः ॥१३॥ तस्यैत्थंवर्तमानस्यसंजातौद्वौसुतौनृप॥ तौतुप्रसिद्धनामानौ श्रीकुंडलविकुंडलौ॥१४॥ तयोर्मूर्ध्निगृहंत्यक्त्वाजगामतपसेवनम् ॥ तत्राराध्यपरंदेवंगोविन्दं वरदंप्रभुम् ॥१५॥ तपःक्लिष्टशरीरोऽभूद्वासुदेवमनाःसदा ॥ आप्तवान्वैष्णवंलोकंयत्रगत्वानशो-

के पापों का इसने प्रायश्चित किया, अथच यह नित्य ही देवपूजन में तत्पर रह कर अतिथियों की पूजा किया करता था ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार सदाचरण करते २ उसके दो पुत्र हुए, और वे दोनों श्रीकुण्डल एवं विकुण्डल नाम से विख्यात हुए ॥ १४ ॥ तब वह उन दोनों के सिर पर घरके भारको सौंप कर तपश्चर्या करने के लिये वनको

दृढ़चित्त हो तपसे शरीरको कृशकर ऐसे विष्णुलोकको चला गया जहां जाके फिर शोच नहीं करना होता है ॥ १६ ॥



हे राजन् ! इसके अनन्तर उसके वे दोनों पुत्र, रूप और धनसम्पन्न होनेके कारण धन एवं मानके मदसे, उन्मत्त हो गये ॥ १७ ॥ अतएव उनका आचरण निन्दनीय होगया, सुतराम् वे दोनों धर्मकर्मका परित्याग करके व्यसनों में आसक्त होगये इसीसे वे अपनी माता तथा वृद्धोंके वाक्योंको भी नहीं सुनते थे ॥ १८ ॥ वे दुराचारी दोनों भ्राता



च्यति ॥ १६॥ अथतस्यसुतौराजन्धनमानमदान्वितौ॥ तरुणौरूपसंपन्नौधनगर्वेणगर्वितौ॥१७॥ दुःशीलौव्यसनासक्तौधर्मकर्मविदूरगौ ॥ नवाक्यंशृणुतोमातुर्वृद्धानांवचनंतथा ॥१८॥ उन्मार्गगौदुरात्मानौपितृमित्रान्निषेधकौ ॥ अधर्मनिरतौदुष्टौपरदाराभिगामिनौ ॥१९॥गीतवादित्रनिरतौवीणावेणुनिनादिनौ॥वारस्त्रीशतसंयुक्तौगायंतौचेरतुःसदा ॥२०॥ चाटुवाचिनरैर्युक्तौ विटगोष्ठीविशारदौ ॥ सुवेषौचारुवसनौचारुचंदनभूषितौ ॥ २१ ॥ सुगंधमाल्यमालाढ्यौक-

अपने पिताके मित्रोंका निषेध करके उन्मार्गगामी होगये एवं वे दुष्ट अधर्म में तत्पर हो परस्त्रीगमन करने लगे ॥ १९ ॥ गाने बजाने में निरत होकर वे दोनों बीणा बजाने लगे और सैकड़ों वेश्याओंको साथ लिये गाते फिरते थे ॥ २० ॥ बहुतसे खुशामदी लोग उनके साथ रहते थे, वे दोनों धूर्तों की गोष्ठीमें बैठ २ कर ( धूर्ततामें ) बड़े चतुर होगये थे, सुन्दर वस्त्र धारण कर अपने वेषको उत्तम बनाये रहते और उत्तम चन्दनसे विभूषित रहते थे ॥२१॥

सुगन्धित माला पहिरे कस्तूरीकी सुगन्धिसे महकते, अनेक आभूषण धारण करनेसे शोभायमान रहते और मोतियोंके परमोत्तम हार पहिने रहते थे ॥ २२ ॥ बहुत से हाथी घोड़े और रथोंको साथ लिये इधर उधर विचरते, मद्य पानकर वेश्याओंको साथ लिये मोहित हुए फिरते थे ॥ २३ ॥ पिताके सैकड़ों सहस्रोंके धनको लुटाकर उन्होंने धनको नष्ट कर दिया विशेष क्या कहें अनेक प्रकारके भोगोंमें आसक्त होकर वे अपने रमणीक घरमें पड़े

स्तूरीलक्ष्मलक्षितौ । नानालंकारशोभाढ्यौमौक्तिकोदारहारिणौ ॥२२॥ गजवाजिरथौघेनक्रीडं-तौतावितस्ततः ॥ मधुपानसमायुक्तौवारस्त्रीरतिमोहितौ ॥२३॥ नाशयंतौपितुर्द्रव्यंसहस्रंददतुः शतम् ॥ तस्थतुःस्वगृहेरम्येनित्यंभोगपरायणौ ॥२४॥ इत्थंतुतद्धनंताभ्यांविनियुक्तमसद्व्ययैः ॥ वारस्त्रीविटशैलूषमल्लचारणबंदिषु ॥२५॥ अपात्रेतद्धनंदत्तंक्षिप्तंबीजमिवोषरे ॥ नसत्पात्रेषु-तद्दत्तंनब्राह्मणमुखेहुतम्॥२६॥ नार्चितोभूतभृद्विष्णुःसर्वपापप्रणाशनः ॥ तयोरेवन्तुतद्द्रव्यम-

रहते थे ॥ २४ ॥ इस प्रकार उन दोनोंने वह सम्पूर्ण धन वेश्याओं, धूर्तों, नटों, मल्ल ( पहलवानों ) चारण और बन्दीजनोंको दे दे कर असत्कार्यों में व्यय करके नष्ट कर डाला ॥ २५ ॥ ऊसर भूमिमें बीज बोनेके समान उन्होंने वह द्रव्य कुपात्रों कोही दिया, सत्पात्रोंको कभी नहीं दिया और ब्राह्मणोंके मुख में भी कभी हवन नहीं किया ॥ २६ ॥

विशेष क्या कहूँ इस प्रकार करते २ उन दोनोंका अखिल धन थोड़े ही कालमें नष्ट हो गया ॥२७॥ तब तो दुःखको प्राप्त हो वे दोनों अत्यन्त ही दीन हो गये, भूख की पीड़ासे दुःखित हो मोहित होकर सोच करने लगे ॥ २८ ॥ उस समय उनके घरमें भोजन करने के योग्य कोई भी वस्तु नहीं थी, स्वजनों, बन्धुबान्धवों, सब सेवकों और उपजीवियोंने भी ॥ २९ ॥ द्रव्य न होने के कारण उनका परित्याग कर दिया, सुतराम् नगर भर में उनकी निन्दा होने लगी,

च्चिरेणक्षयंययौ ॥२७॥ ततस्तौदुःखमापन्नौकार्पण्यंपरमंगतौ ॥ शोचमानौमुमुह्यतांक्षुत्पीडा- दुःखदुःखितौ ॥२८॥ तयोस्तुतिष्ठतोर्गेहेनास्तियद्भुज्यतेतदा ॥ स्वजनैर्बान्धवैःसर्वैःसेवकैरु- पजीविभिः ॥२९॥ द्रव्याभावात्परित्यक्तौनिन्द्यमानौततःपुरे॥ पश्चाच्चौर्यंसमारब्धंताभ्यांतन्नग रेनृप ॥ ३० ॥ राजतोलोकतोभीतौस्वपुरान्निःसृतौतदा ॥ चक्रतुर्वनवासंचसर्वेषामृणपी- डितौ ॥ ३१ ॥ जघ्नतुःसततंमूढौशितबाणैर्विषार्पितैः ॥ नानापक्षिवराहांश्चहरिणान्रोहितां-

हे राजन् ! अब तो उन्होंने इसी नगर में चोरी करना आरम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ राजा और अन्य लोगोंके भयके मारे वे अपने नगर से निकल गये और सबके ऋण से पीड़ित हो वन में निवास करने लगे ॥ ३१ ॥ निदान वे दोनों मूढ़ विषैले तीक्ष्ण बाणोंसे अनेक पक्षियों, शूकरों, हरिणों तथा रोहितों ॥३२॥ शशाओं, शल्लकी (स्याही विशेष) गोधा, गोह, तथा अन्य बहुत प्रकार के जंगली जीवों का वध करने लगे, वे दोनों महाबली भीलों के साथ में रहकर

अहेर करने लगे ॥ ३३ ॥ हे परंतप ! इस प्रकार वे दोनों पापी मांसका आहार करने लगे, एक समय उन दोनों मेंसे एक तो किसी पर्वत के ऊपर चलागया, और दूसरा किसी वनमें चला गया ॥ ३४ ॥ उनमें से ज्येष्ठ को सिंहने मार डाला और छोटे को सर्प ने डस लिया, सुतराम् हे राजन ! वे दोनों पापी एक ही दिन मृत्यु को प्राप्त हो गये ॥ ३५ ॥ तव तो

स्तथा ॥ ३२ ॥ शशकान्शल्लकांगोधाः श्वापदांश्चबहूंस्तथा ॥ महाबलौभिल्लसंगवाखेटकरतौ सदा ॥ ३३ ॥ एवंमांसमथाहारौपापाचारौपरंतप ॥ कदाचिद्भूधरंप्राप्तएकोन्यश्चवनंगतः ॥ ३४ ॥ शार्दूलेनहतोज्येष्ठःकनिष्ठकःसर्पदंशितः ॥ एकस्मिन्दिवसेराजन्पापिष्ठौनिधनंगतौ ॥ ३५ ॥ यमदूतैस्तदाबद्धौपाशैर्नीतौयमक्षयम् ॥ गत्वाब्रुजगदुःसर्वे ते दूताः पापनाविभो ॥ ३६ ॥ धर्मराजनावेतावानीतौतवशासनात् ॥ आज्ञांदेहिस्वभृत्येषुप्रसीदकरवामकिम् ॥ ३७ ॥ आलोक्याचित्रगुप्तेनतदादूतान्जगौयमः ॥ एकस्तुनीयतांघोरंनिरयन्तीव्रवेदनम् ॥ ३८ ॥ अपरः

यमदूत उनको पाशों में बाँधकर यमलोक को ले गये, और वहाँ पहुँच कर सब दूत कहने लगे कि, ये दोनों बड़े पापी हैं ॥ ३६ ॥ हे धर्मराज ! आपकी आज्ञासे हम इन दोनों पापी मनुष्योंको ले आये हैं, प्रसन्नता पूर्वक सेवकोंको शीघ्र आज्ञा दीजिये कि, अब हम क्या करें ? ॥ ३७ ॥ जब चित्रगुप्तने उन दोनोंका लेखा देख लिया, तब यमराजने

से परिपूर्ण हुए स्वर्गमें स्थापित करो। उनकी यह आज्ञा सुन उतावले दूतोंने झटपट ऐसा ही कर डाला ॥ ३९ ॥ अर्थात् हे राजन्! इनमेंसे ज्येष्ठको घोर नरकमें निक्षिप्तकर दिया तब तो एक यमदूत मधुर वचन कहने लगा ॥ ४० ॥

स्थाप्यतांस्वर्गेयत्रभोगा अनुत्तमाः ॥ तदाज्ञांतुसुसंप्राप्यदूतैस्तैःक्षिप्रकारिभिः ॥ ३९ निक्षिप्तो रौरवेघोरेतत्रज्येष्ठोनराधिप ॥ तेषांदूतवरः कश्चिदुवाचमधुरंवचः ॥ ४० ॥ विकुण्डलमयासार्धं-मेहिस्वर्गंददामिते। भुंक्ष्वभोगान्सुदिव्यांस्त्वमर्जितान्स्वेनकर्मणा ॥ ४१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे-उत्तरखण्डेमाघमासमाहात्म्येवसिष्ठदिलीपसंवादेविकुण्डलस्वर्गप्राप्तिर्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ततोहृष्टमनाःसोऽपिदूतम्पप्रच्छतम्पथि ॥ सन्देहंहृदिकृत्वातुविस्मयंपरमंगतः ॥ १ ॥ विचारयन्हृदिस्वर्गःकस्यहेतोःफलंमम ॥ विकुण्डलउवाच ॥ भोदूतवरपृच्छामिसन्देहं

हे विकुण्डल! तू मेरे साथ स्वर्गमें आओ, अपने सत्कर्मों से उपार्जन किये हुए दिव्यभोगों का उपभोग कर ॥ ४१ ॥

इति माघमाहात्म्ये भाषाटीकायां विकुण्डल स्वर्ग प्राप्ति नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऋषि बोले—तब तो सन्देहपूर्वक मनमें विस्मयको प्राप्त हो चित्तमें प्रसन्न होकर वह मार्गमें उस दूतसे पूछने लगा ॥ १ ॥ उसने अपने हृदयमें यह विचार किया कि, मुझे किस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गकी प्राप्ति हुई है, विकुण्डल

बोला—हे श्रेष्ठदूत ! हम एक बड़े आश्चर्यकी बात तुमसे पूछते हैं ॥ २ ॥ हम दोनोंका एकही कुल में जन्म हुआ, एवं हमने कर्मभी समानही किये थे, हमारी मृत्युभी समानही हुई और समान ही हमें यमराजके दर्शन हुए ॥ ३ ॥ जब उसके भी कर्म मेरेही जैसे थे तो फिर मेरे ज्येष्ठ भ्राताको नरकमें निपतित क्यों किया गया, और मुझे

त्वामहम्परम् ॥ २ ॥ आवांजातौकुलेतुल्येतुल्यंकर्मतथाकृतम् ॥ दुर्मृत्युरपितुल्योभूत्तुल्यंदृष्टोयमस्तथा ॥ ३ ॥ कथंसनिरयेक्षिप्तस्तुल्यकर्माममाग्रजः ॥ ममभावोकथंस्वर्गइतिसंछिन्धिसंशयम् ॥४॥ देवदूतनपश्यामिस्वस्यस्वर्गस्यकारणम् ॥ इतिपृष्टोदेवदूतोविकुण्डलमुवाचह ॥५॥ यमदूतउवाच ॥ मातापितासुतोजायास्वसाभ्राताविकुंडल । जन्महेतुरियंसंज्ञाजन्मकर्मोपभुक्तये ॥ ६ ॥ एकस्मिन्पादपेयद्वच्छकुन्तानांसमागमः ॥ पुत्रभ्रातृपितृणांचतथाभवतिसं·

स्वर्गका लाभ कैसे हुआ यह सन्देह दूर करिये ॥ ४ ॥ हे देवदूत ! मैं अपने स्वर्ग आनेका कोई कारण नहीं देखता हूँ, जब इस प्रकार देवदूत से पूछा तब वह विकुण्डल से कहने लगा ॥ ५ ॥ यमदूत बोला हे विकुण्डल ! माता पिता, पुत्र, स्त्री बहिन और भाई ये सब संज्ञायें जन्मके कारण हैं, और जन्म तो कर्मोंका उपभोग करनेके

पिता ( आदि ) का संगम जानना चाहिये ॥ ७ ॥ उन्हीं के योग से यह मनुष्य जो २ कर्म करता है, उन्हीं कर्मों के फल का सदा उपभोग करता है ॥ ८ ॥ हे वैश्य यह बात मैं तुमसे प्रीति पूर्वक बिलकुल सत्य कहता हूँ कि—मनुष्य अपने किए हुए शुभाशुभ कर्मों का समयानुसार बारम्बार उपभोग करता है ॥ ९ ॥ अकेला ही उसके

गमः ॥७॥ तेषांयोगेनहियत्कर्मकुरुतेपूर्वभावितः ॥ तस्यतस्यफलंभुंक्तेकर्मणःपुरुषःसदा॥८॥ सत्यंवदामितेप्रीत्यानरःकर्मशुभाशुभम् ॥ स्वकृतंभुञ्जतेवैश्यकालेकालेपुनःपुनः ॥ ९ ॥ एकःकरोतिकर्माणिएकस्तत्फलमश्नुते ॥ अन्योन्यंलिप्यतेवैश्यकर्मनान्यस्यकस्यचित् ॥ १० ॥ अतस्तुनरकेपापेतवभ्रातासुदारुणः ॥ त्वंचधर्मेणधर्मात्मन्स्वर्गंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ ११ ॥ विकुण्डलउवाच ॥ आवाभ्यांसमपापेषुनपुण्येषुरतंमनः ॥ यदिजानासिमत्पुण्यंतन्मांत्वंकृपया वद ॥ १२ ॥ यमदूतउवाच ॥ शृणुवैश्यप्रवक्ष्यामियत्त्वयापुण्यमर्जितम् ॥ जानामितदहंसर्वंन-

फलको भोगता है, हे वैश्य ! दूसरे किसी को परस्पर लिप्त नहीं करते हैं ॥ १० ॥ इसी कारण हे धर्मात्मा ! तुम्हारा भ्राता नरक में गया और तुम धर्मसे अविनाशी स्वर्ग में जारहे हो ॥ ११ ॥ विकुण्डल बोला—हम दोनोंने बराबर पापही किये, पुण्यमें तो कभी मनमें हीं नहीं लगाया ऐसी दशामें भी मेरा कोई पुण्य है और उसे तुम जानते हो तो कृपाकरके मेरे प्रति वर्णन करो ॥ १२ ॥ यमदूत बोला—सुनो वैश्य ! तुमने जो पुण्याचरण

किया है उसे मैं तुम्हारे प्रति वर्णन मा करता हूँ कारण कि—तुम अवश्य ही उसे नहीं जानते हो ॥ १३ ॥ हरमित्र का पुत्र सुमित्र नाम वेदपारगामी एक ब्राह्मण था और यमुना जी के दक्षिण तटपर उसका पवित्र आश्रम था ॥ १४ ॥ हे वैश्य वर! उस वनमें उक्त ब्राह्मणके साथ तुम्हारी मैत्री हो गई और उसीके सत्सङ्ग से तुमने दो माघमासमें



त्वंनेतिससुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ हरमित्रसुतोविप्रःसुमित्रोवेदपारगः ॥ आसीत्तस्याश्रमःपुण्योय-मुनादक्षिणेतटे ॥ १४ ॥ तेनतस्मिन्वनेसख्यंजातंतवविशांवर ॥ सत्संगेनत्वयास्नातंमाघमा-सद्वयंतथा ॥ १५ ॥ कालिंदीपुण्यपानीयेसर्वपापहरे शुभे ॥ तत्तीर्थेलोकविख्यातेसर्वपाप-प्रणाशने ॥१६॥ एकेनसर्वपापेभ्योविमुक्तस्त्वंविशांवर ॥ द्वितीयमाघपुण्येनप्राप्तःस्वर्गस्त्वयाऽनघ ॥१७॥ त्वंतत्पुण्यप्रभावेणमोदस्वसुचिरंदिवि॥नरकेषुतवभ्रातासहतांयमयातनाम् ॥१८॥

स्नान किया ॥१५॥ शुभ कल्याण स्वरूप अतएव समस्त पापोंका विनाश करनेवाले सुनराम् लोकविख्यात कालिन्दी के शुभ जलमय तीर्थ में ( तुमने स्नान किया था ) ॥ १६ ॥ हे वैश्यराज! एक माघस्नान करनेसे तो तुम्हारा अखिल पापों से छुटकारा होगया, और हे निष्पाप! दूसरे माघस्नानके पुण्यसे तुझे स्वर्गकी प्राप्ति हुई है ॥१७॥ उसी पुण्यके

करें ॥ १८ ॥ वह असिपत्रोंसे छेदन किया जायगा, मुद्गरोंसे उसे ताड़न किया जायगा, शिलाओंसे चूर्ण २ करके उसे तप्त अँगारोंके ऊपर भूना जायगा ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—दूतोंके ऐसे बचन सुन भाईके दुःखसे उसे अत्यन्त ही खेद हुआ, संपूर्ण अङ्गमें पुलक हो आया, अतएव वह दीन नम्रतापूर्वक ॥ २० ॥ देवदूतसे निपुणता सहित मधुर-



छिंद्यमानोसिपत्रैश्चभिद्यमानश्चमुद्गरैः ॥ चूर्णमानःशिलापृष्ठैस्तप्तांगारेषुभर्जितः ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ इतिदूतवचःश्रुत्वाभ्रातृदुःखेनदुखितः ॥ पुलकांकितसर्वाङ्गोदीनोऽसौविनयान्वितः ॥ २० ॥ उवाचदेवदूतंमधुरंनिपुणंवचः ॥ मैत्रीसाप्तपदीसाधोसतांभवतिसत्फला ॥२१॥ मैत्री भावंचिंत्याथमामुपाकर्तुमर्हसि ॥ त्वत्तोऽहंश्रोतुमिच्छामिसर्वज्ञस्त्वंमतोमम ॥ २२ ॥ यमलोकंनपश्यन्तिकर्मणाकेनमानवाः ॥ गच्छंतियेननिरयंतन्मे त्वं कृपया-

वाक्य बोला, हे सज्जन ! सात पग चलनेही से सज्जनोंके साथ उत्तम फल देनेवाली मित्रता हो जाती है ॥२१॥ मैत्री भावहीका विचार करके आपको हमारा उपकार करना कर्त्तव्य है, क्योंकि आपको मैंने सर्वज्ञ समझ रक्खा है, इस हेतु मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ ॥ २२ ॥ कौनसे कर्मोंका आचरण करनेसे मनुष्योंको यमलोकका दर्शन नहीं होता, और जिस कर्म करनेसे प्राणी नरकमें जाते हों कृपाकरके उसका मेरे प्रति-वर्णन करो ॥ २३ ॥ यमदूत

बोला- तुम्हारे पापोंका इस समय नाश हो गया है, अतएव संप्रति तुमने अच्छा प्रश्न किया, जब मनुष्योंका हृदय शुद्ध हो जाता है तब उसकी मति कल्याणकी ओरको प्रवृत्त होती है ॥ २४ ॥ यद्यपि मैं अपने स्वामीकी सेवामें ( अर्थात् आज्ञा पालनमें ) तत्पर हूँ अतएव मुझे अवकाश नहीं है, तथापि तुम्हारे स्नेहसे यथामति मैं वर्णन करता हूँ ॥ २५ ॥

वद ॥ २३ ॥ यमदूतउवाच ॥ सम्यक्पृष्टंत्वयासौम्यलुप्तपापोसिसांप्रतम् ॥ विशुद्धहृदये- पुंसांबुद्धिःश्रेयसिजायते ॥ २४ ॥ यद्यप्यवसरोनास्तिममसेवापरस्यवै ॥ तथापिचतवस्नेहा- त्प्रवक्ष्यामियथामती ॥ २५ ॥ मनसाकर्मणावाचासर्वावस्थासुसर्वदा ॥ परपीडांनकुर्वन्तिनते- यांतियमालयम् ॥ २६ ॥ नवेदैर्नचदानैश्चनतपोभिर्नचाध्वरैः ॥ कथंचित्सद्गतिंयांतिपुरुषाः प्राणिहिंसकाः ॥ २७ ॥ अहिंसापरमोधर्मोह्यहिंसापरमंतपः ॥ अहिंसापरमंदानमित्याहुर्मु-

जो व्यक्ति मनवचन और कर्मसे किसी समय और अवस्थामें भी परपीड़ा नहीं करते हैं, वे यमलोकमें नहीं जाते ॥ २६ ॥ प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले पुरुषोंकी सद्गति वेदपाठ, दान तप और यज्ञानुष्ठानसे भी नहीं होती है ॥ २७ ॥ मुनियोंने सदा यही वर्णन किया है कि—किसीकी हिंसा न करनी यही परमधर्म है, हिंसा न करना ही

दंश ( डँस ) तथा यूका ( जूँ ) आदि प्राणियोंकी भी अपनेही समान रक्षा करते हैं ॥ २६ ॥ वे मनुष्य दहकते हुए अङ्गारोंसेभरेहुए कीलमार्गमें प्रेत नदीकी दुर्गतिको और यमयातना को भी नहीं देखते हैं ॥ ३० ॥ जो मनुष्य अपनी प्राणयात्राके लिये जल और स्थलचारी जीवों की हिंसा करते हैं उन्हें घोर दुर्गति का उपभोग करना पड़ता है ॥३१॥

नयः सदा ॥ २८ ॥ मशकान्मत्कुणान्दंशान्यूकादिप्राणिनस्तथा ॥ आत्मौपम्येनरक्षंति· मानवायेदयालवः ॥ २६ ॥ तप्तांगारमयंकीलमार्गेप्रेततरंगिणीम् ॥ दुर्गतिंनचपश्यन्तिकृतां· तस्य च ते नराः ॥ ३० ॥ भूतानियेत्रहिंसंतिजलस्थलचराणिवै ॥ जीवनार्थंहितेयांतिकाल· सूत्रांचदुर्गतिम् ॥ ३१ ॥ स्वमांसभोजनास्तत्रपूयशोणितफेनपाः ॥ मज्जंतश्चवसापंकेदुष्टाः कीटरधोमुखाः ॥ ३२ ॥ परस्परंचखादंतोध्वांतेचान्योन्यघातिनः ॥ वसंतिकल्पमेकंतेरट· न्तोदारुणंरवम् ॥३३॥ नरकान्निःसृतवैश्यस्थावराः स्युश्चिरंतुते ॥ ततोगच्छन्तितेक्रूरास्ति

वहाँ उन्हें अपने ही मांस का भोजन करना होता है, और वे पीब एवं रक्त के झाग पीते हैं, अथच वे दुष्ट अधोमुख होकर चर्बी के पंक में मज्जन करते हैं ॥ ३२ ॥ उन्हें वहाँ कीड़े काटते हैं, अन्धकार में परस्पर एक दूसरे का घात करके भक्षण करते हैं, और घोर शब्द करते हुए एक कल्प पर्य्यन्त वहाँ ही निवास करते हैं ॥३३॥ हे वैश्य! नरक

से निकल कर वे चिरकाल पर्य्यन्त स्थावर होके रहते हैं, इसके अनन्तर फिर वे दुष्ट सैकड़ों पशुपक्षियों की योनियों में
निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ फिर वे प्राणी हिंसक पुरुष, जन्मान्ध, काने, कुबड़े, लूले, लँगड़े, दरिद्री और अङ्गहीन
होते हैं ॥ ३५॥ इस हेतु धर्मका ज्ञाता जो मनुष्य दोनों लोकों में सुख प्राप्ति की अभिलाषा करता हो उसे चाहिये कि

र्यग्योनिशतेषु च ॥ ३४ ॥ पश्चाद्भवंतिजात्यंधाः काणाकुब्जाश्चपंगवः ॥ दरिद्राअंगहीना-
श्चपुरुषाःप्राणिहिंसकाः ॥ ३५ ॥ तस्माद्वैश्यपरद्रोहंकर्मणामनसागिरा ॥ लोकद्वयेसुखप्रेप्सु-
र्धर्मज्ञोनसमाचरेत् ॥ ३६ ॥ लोकद्वयेनविन्दन्तिसुखानिप्राणिहिंसकाः ॥ येहिंसंतिनभूतानि
नतेबिभ्यतिकुत्रचित् ॥ ३७ ॥ प्रविशंतियथानद्यःसमुद्रमृजुवक्रगाः ॥ सर्वेधर्माह्यहिंसायां-
प्रविशंति तथादृढम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणेउत्तरखंडेमाघ माहात्म्येदिलीपवसिष्ठसंवादे-
विकुंडलदूतसंवादोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मनवचन कर्म से कदापि द्रोह न करे॥३६॥ जो मनुष्य प्राणियों की हिंसा करते हैं उन्हें दोनों लोकों में सुखकी प्राप्ति
नहीं होती, और जो व्यक्ति प्राणियों की हिंसा नहीं करते उन्हें कहीं भी डरना नहीं होता है ॥३७॥ जैसे कि सीधी
अथवा टेढ़ी चाहें जैसी गतिसे चलनेवाली क्यों न हो परन्तु नदियें सब समुद्रही में पहुँचती हैं, उसी प्रकार जितने धर्म
हैं वे सब अहिंसा में प्रवेश करते हैं ॥ इति माघमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो किसी को अभयदान देता है, मानो उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया और

अहिंसामें प्रवेश करते हैं ॥ ३८ ॥ इति माघमासमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥





यमदूत बोले—हे वैश्यराज ! जो किसी को अभयदान देता है, मानो उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया और उसी को सब यज्ञों में दीक्षा प्राप्त हो गई है ॥ १ ॥ हे वैश्य ! जो व्यक्ति शास्त्रोक्त अपने २ स्वच्छ धर्म का यथोक्त रीतिसे पालन करते हैं उन्हें यमलोक में जाना नहीं होता है ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये

यमदूतउवाच ॥ सस्नातः सर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥ अभयंयेनभूतेभ्योदत्तमत्रविशांवर ॥ १ ॥ निजांनिजांश्वशास्त्रोक्तान्वर्णधर्मान्विमिश्रितान् ॥ पालयंतीहयेवैश्यनतेयांतियमालयम् ॥ २ ॥ ब्रह्मचारीगृहस्थश्ववानप्रस्थोयतिस्तथा ॥ स्वधर्मनिरताःसर्वेनाकपृष्ठेवसंतिते ॥ ॥ ३ ॥ यथोक्तकारिणःसर्वेवर्णाश्रमसमन्विताः ॥ नराजितेंद्रियायांतिब्रह्मलोकंचशाश्वतम् ॥ ४ ॥ इष्टापूर्तरतायेचपंचयज्ञरताश्चये ॥ दयान्विताश्चयेनित्यंनेक्षंतेतेयमालयम् ॥ ५ ॥

सबही अपने २ धर्म में निरत रहकर स्वर्गलोक में निवास करते हैं ॥ ३ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर वर्ण और आश्रम के धर्मों का यथोक्त रीति से पालन करते हैं, उन्हीं को अविनाशी ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती ॥ ४ ॥ जो मनुष्य इष्टापूर्त्त अथवा पञ्चयज्ञ करने में निरत हैं, एवं जो नित्यही दयालु रहते हैं उन्हें यमलोक के दर्शन तक नहीं होते ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण इन्द्रियों के विषयों से पृथक् रहकर वेदवाक्यों का वर्णन करते हैं, जो शक्तिशाली हैं और

अग्निहोत्र करने में नित्य लगे रहते हैं, वे ही, स्वर्गकी यात्रा करते हैं ॥ ६ ॥ जिन शूरवीरोंने शत्रुओं के द्वारा वेष्टित होकर भी कभी दीन बचन नहीं कहे, और जिनकी, मृत्यु संग्राम में हुई है वे लोग सूर्य्यलोक में होकर परलोक में जाते हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य अनाथ ( असहाय ) स्त्री और ब्राह्मणों के लिये अथवा शरणागत का पालन करने में

इंद्रियार्थैर्निवृत्तायेसमर्थावेदवादिनः ॥ अग्निपूजारतानित्यंतेविप्राःस्वर्गगामिनः ॥ ६ ॥
अदीनवादिनःशूराःशत्रुभिःपरिवेष्टिताः ॥ आहवेषुविपन्नायेतेषामार्गोदिवाकरः ॥ ७ ॥
अनाथस्त्रीद्विजार्थेचशरणागतपालने ॥ प्राणास्त्यजंतियेवैश्यतेमोदन्तेसदादिवि ॥ ८ ॥
पंग्वंधबालवृद्धानांरोग्यनाथदरिद्रिणाम् ॥ येपुष्णंतिसदावैश्यनच्यवंतेदिवस्तुते ॥ ९ ॥ गांद॰
ष्ट्वापंकनिर्मग्नांरोगमग्नंद्विजंतथा ॥ उद्धरंतिनरायेतुतेषांलोकोऽश्वमेधिनाम् ॥ १० ॥ गोग्रा॰

अपने प्राणों का परित्याग करते हैं, हे वैश्य ! वे सदैव स्वर्गलोक में आनन्द का उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥ हे वैश्य ! जो व्यक्ति पंगु ( लूले लंगड़े ) अन्धे, बालक, वृद्ध, रोगी, अनाथ और दरिद्री इनका पालन पोषण करते हैं, उनका स्वर्गलोक से पतन कदापि नहीं होता ॥ ९ ॥ गौ को कीचड़ में फँसी हुई और ब्राह्मणों को रोग में मग्न देखकर जो

स्वर्गलोक से पतन कदापि नहीं होता ॥ ९ ॥ गौ को कीचड़ में फँसी हुई और ब्राह्मणी को रोग में मग्न देखकर जो



देते हैं, सदैव गौकी सेवा शुश्रूषा करते हैं और जो गौकी पीठके ऊपर कभी नहीं चढ़ते हैं, वेही स्वर्गलोक में जाते हैं ॥ ११ ॥ जहाँ गौएँ जलपान करती हैं उस स्थान में जो मनुष्य गड्ढा बना देते हैं, वे यमलोक को विनाही देखे स्वर्गलोक को चले जाते हैं ॥ १२ ॥ बावड़ी वापी कूप और तालाब आदि के निर्माण करने से अनन्त फल की

संये प्रयच्छंतिशुश्रूषंतिचगांसदा ॥ येनारोहंतिगोपृष्ठेतेस्युःस्वर्लोकगामिनः ॥११॥ गर्तमात्रं-चयेचक्रुर्यत्रगौर्वितृषी भवेत् ॥ यमलोकमदृष्ट्वैवतेयान्तिस्वर्गतिंनराः ॥१२॥ वापीकूपतडागा-दौधर्मस्यांतोनविद्यते ॥ पिबंतिस्वेच्छयायत्रजलस्थलचराःसदा ॥ १३ ॥ यथायथाचपानी-यंपिबंतिस्वेच्छयानराः ॥ तथातथाऽक्षयः स्वर्गोधर्मवृद्धिर्विशांवर ॥ १४ ॥ प्राणिनांजीवनं वारिप्राणावारिणिसंस्थिताः ॥ तत्प्रपांयेप्रयच्छन्तितेदीप्यंतेसदादिवि ॥ १५ ॥ अश्वत्थमेकंपि-

प्राप्ति होती है, क्योंकि—उसमें जलचर और स्थलचर जीव सदैव जलपान किया करते हैं ॥ १३ ॥ अपनी इच्छा-अनुसार जैसे २ मनुष्य उनमें जलपान करते हैं, उसी क्रमसे हे वैश्य ! कूपादि निर्माणकर्ताओंके धर्म की वृद्धि और स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ जलही में प्राण रहते हैं इसलिये केवल जलही को प्राणियोंका जीवन कहना चाहिये, सुतराम् जो व्यक्ति जलकी प्याऊ लगाते हैं उनका स्वर्गमें सदैव प्रताप वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ पीपल

का एक, पिचुमन्द (नीम) का एक, वटवृक्ष का एक, इमलीके दश वृक्ष, कपित्थ (कैथ) बेल और आँवले के तीन अथच आमके पाँच वृक्ष बोने वाले मनुष्य को नरकके दर्शन नहीं करने होते॥ १६ ॥ दश कुपुत्रों की अपेक्षा पाँच वृक्ष श्रेष्ठ हैं, कारण कि- वे पुत्र पुष्प फल और मूलोंके द्वारा अपने पितरों की तृप्ति संपादन करते हैं ॥१७॥ उन





चुमंदमेकंन्यग्रोधमेकंदशतिंतिणीकम् ॥ कपित्थगिल्वामलकत्रयंचपंचाम्रवापीनरकंनपश्येत् ॥ १६ ॥ वरंभूमिरुहाःपंचनतुकोष्ठरुहादश ॥ पत्रैःपुष्पैःफलैर्मूलैःकुर्वन्तिपितृतर्पणम् ॥१७॥ नतत्करोत्यग्निहोत्रंसुहुतंयोषितः सुतः ॥ यत्करोतिघनच्छायपादपः पथिरोपितः ॥ १८ ॥ सदासुखीसवसतिसदादानंप्रयच्छति ॥ सदायज्ञंसयजतेयोरोपयतिपादपम् ॥ १९ ॥ सच्छा-यान्फलपुष्पाढ्यान्पादपान्पथिरोपितान् ॥ येछिंदंतिसदामूढास्तेयांतिनिरयंचिरम् ॥ २० ॥

स्त्री-पुत्रों को अग्निमें अग्निहोत्र करने की आवश्यकता नहीं, जिन्होंने मार्गमें घनी छायावाले वृक्ष लगाये हैं ॥१८॥ जो मनुष्य वृक्षारोपण करते और दान करते हैं और यज्ञका यजन करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं॥ १९ ॥ जो मनुष्य मार्ग में लगे हुए फल फूल समन्वित वृक्षों को काटते हैं वे मूढ़ चिरकालपर्य्यन्त नरक में निवास करते हैं॥ २० ॥ बहुत तुलसी के वृक्ष लगाने से भी यमराज के दर्शन नहीं करने होते हैं, क्योंकि तुलसीका वन पवित्र





...अतएव वह समस्त पापोंका अपहरण करता है ॥ २१ ॥ हे वैश्य ! जिस

और कामनाओंको पूर्ण करने वाला है, अतएव वह समस्त पापोंकाभी अवहरण करता है ॥ २१ ॥ हे वैश्य ! जिस घर में तुलसीका वन लगा रहता है, उसे बिलकुल तीर्थही समझना चाहिये, सुतराम् उसमें यमदूत नहीं जा सकते हैं ॥ २२ ॥ जो व्यक्ति तुलसीका आरोपण करते हैं वे मनुष्य उतनेही सहस्र वर्ष पर्यन्त जितने कि, दल और बीज

नपश्यंतियमंवैश्यतुलसीवनरोपणात ॥ सर्वपापहरंपुण्यंकामदंतुलसीवनम् ॥ २१ ॥ तुलसी- काननंवैश्यगृहेयस्मिंश्चतिष्ठति ॥ तद्गृहंतीर्थभूतंहिनोयांतियमकिंकराः ॥ २२ ॥ तावद्वर्ष- सहस्राणियावद्बीजदलानिच ॥ वसंतिदेवलोकेतेतुलसींरोपयंतिये ॥ २३ ॥ तुलसीगन्धमाघ्रा- यपितरस्तुष्टमानसाः ॥ प्रयांतिगरुडारूढाभवनंचक्रपाणिनः ॥ २४ ॥ दर्शनंनर्मदायास्तु- गंगास्नानंविशांवर ॥ तुलसीवनसंस्पर्शः सममेतत्त्रयंस्मृतम् ॥ २५ ॥ रोपणात्पालनात्से-

होते हैं ॥ २३ ॥ तुलसी की गन्धका आघ्राण करने से पितरों का चित्त सन्तुष्ट हो जाता है, अतएव गरुड़जीके ऊपर आरूढ़ होकर चक्रपाणि श्रीविष्णुभगवान् के भवन में निवास करते हैं ॥ २४ ॥ हे वैश्यराज ! नर्मदानदीका दर्शन, गंगाजी में स्नान करना, और तुलसी वनका स्पर्श ये तीनों ( अर्थात्—इन तीनों का पुण्य ) समानही कीर्तन किया गया है ॥ २५ ॥ तुलसी के लगाने, पालने, जलदेने, दर्शन और स्पर्श करने से तुलसी मनुष्योंके मन वचन

कायासे संचय किये पापका विनाश करती है ॥ २६ ॥ हे वैश्य ! प्रत्येक पक्षकी द्वादशी को ब्रह्मादि देवता भी तुलसीवनकी पूजा करते हैं ॥ २७ ॥ मणि, सुवर्ण पुष्प और मोती ये सब तुलसी के एक पत्रकी पूजाकी भी समानता नहीं कर सकते अर्थात् तुलसी के एक पत्र की पूजा करने से जिस उत्तम फलकी प्राप्ति है—मणि,

कादर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ॥ तुलसीदहतेपापंवाङ्मनःकायसंचितम् ॥२६॥ पक्षेपक्षेपतुसंप्राप्तेद्वादश्यांवैश्यसत्तम ॥ ब्रह्मादयोपिकुर्वंतितुलसीवनपूजनम् ॥ २७ ॥ मणिकांचनपुष्पाणितथामुक्ताफलानिच ॥ तुलसीपत्रपूजायाः कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ २८ ॥ आम्ररोपसहस्रेणपिप्पलानांशतेनच ॥ यत्फलंहितदेकेनतुलसीविटपेनच ॥ २९ ॥ विष्णुपूजनसंसक्तस्तुलसींयस्तुरोपयेत् ॥ युगायुतंदशैकंचरोपकोरमतेदिवि ॥ ३० ॥ तुलसीमंजरीभिस्तुकुर्याद्ध-

सुवर्ण, पुष्प और मोती दान करने में उसके षोडशांशकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ २८ ॥ आमके सहस्र और पीपल के सौ वृक्ष लगानेसे भी जो फल मिलता है वही फल तुलसी का एक वृक्ष लगानेसे भी प्राप्त होता है ॥२९॥ जो मनुष्य विष्णु भगवान् की पूजा में निरत रहकर तुलसी के [illegible] करता है. वह ग्यारह सहस्र वर्ष

उनको मुक्ति हो जाती है, अतएव वे गर्भमें कभी नहीं आते ॥ ३१ ॥ पुष्कर आदि सब तीर्थ, गंगा आदि सब नदियें और वासुदेव आदि सब देवता तुलसीदल में निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य तुलसी वृक्षका आरोपण कर उसके दलोंसे विष्णु भगवान् की पूजा करते हैं वे प्रसन्नता पूर्वक हरि भगवान् के निकट निवास करते हैं ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य



रिसमर्चनम् ॥ नसगर्भगृहंयातिमुक्तिभागीभवेन्नरः ॥ ३१ ॥ पुष्करादीनितीर्थानिगंगाद्याः सरितस्था ॥ वासुदेवादयोदेवावसंतितुलसीदले ॥ ३२ ॥ आरोप्य तुलसीवैश्यसंपूज्यतद्दलैर्हरिम् ॥ वसन्तिमोदमानास्तेयत्रदेवश्चतुर्भुजः ॥ ३३ ॥ एककालंद्विकालंवात्रिकालंवापियोनरः॥ समर्चयतिभूतेशंलिंगेसेवासमुद्भवे ॥ ३४ ॥ स्फाटिकेरत्नलिंगेवापार्थिवेवास्वयंभुवि ॥ स्थापितेवाक्वचिद्वैश्यतीर्थेगिरौवने ॥ ३५ ॥ नमःशिवायमंत्रेणकुर्वंतस्तज्जपंसदा ॥ शृण्वंतियमलोकस्यकथामपिनतेनराः ॥ ३६ ॥ शिवपूजाप्रभावेणशिवभक्ताः शिवेरताः ॥

एक दो अथवा तीन समय सेवासमुद्भूत भूतनाथ की पूजा करते हैं ॥ ३४ ॥ अथवा जो व्यक्ति स्फटिक मणिनिर्मित वा रत्नलिंग, पार्थिव अथवा स्वयं प्रादुर्भूत हुए लिंग की किंवा हे वैश्य ! किसी तीर्थ वा वनमें स्थापन किये हुए शिवलिंग की ॥ ३५ ॥ "ॐनमःशिवाय" इस मंत्रके द्वारा जप पूर्वक पूजा करते हैं, उन मनुष्योंको यमलोक की कथा भी नहीं सुननी पड़ती है ॥३६॥ महादेवजी के जो भक्त शिवभक्तिमें तत्पर होते हैं, वे महादेवजी की पूजाके प्रभावसे

चौदह इन्द्रके राज्यपर्य्यन्त शिवलोक में आनन्द भोगते हैं ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य किसी प्रसंग, मोह (अज्ञान) दम्भ ( पाखण्ड ) अथवा लोभसे महादेवजी के दर्शन कर लेते हैं, उन्हें यमराज के दर्शन नहीं करने पड़ते ॥३८॥ हे वैश्य ! सब पापों का विनाश करने वाला, और अखिल ऐश्वर्य्यदायक शिवपूजन के समान त्रिलोकी में अन्य कोई पुण्य नहीं

मोदंतेशिवलोकंतेयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ३७ ॥ प्रसंगेनापिमोहेनदंभेनापिहिलोभतः ॥ येसे॰
वन्तेमहादेवंनतेपश्यंतिभास्करिम् ॥ ३८ ॥ शिवार्चनसमंपुण्यंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वैश्वर्य॰
प्रदंवैश्यनास्तिकिंचिज्जगत्त्रये ॥ ३९ ॥ शिवभक्तिंप्रकुर्वाणायेद्विषंतिजनार्दनम् । तेषांनिर॰
यपातस्तुतत्कालेचउदाहृतः ॥ ४० ॥ द्रव्यमन्नंफलंतोयंशिवस्वंनस्पृशेत्क्वचित् ॥ निर्माल्यं॰
नैवसंलंघेत्कूपेसर्वंचतत्क्षिपेत् ॥४१॥ मक्षिकापादमात्रंहिशिवस्वमुपजीवति ॥ मोहाल्लोभात्स॰

है । ३९ ॥ जो मनुष्य महादेवजी की भक्ति का आचरण करते हैं किन्तु श्री विष्णु भगवानसे द्वेष करते हैं, उनका तत्काल ही नरक में पतन हो जाता है ॥ ४० ॥ धन, अन्न फल अथवा जल महादेवजी का चाहे जो द्रव्य हो उसका स्पर्श न

जो मनुष्य लोभ, अथवा मोह के वशीभूत होकर मक्खी के चरण के समान भी शिवद्रव्य को ग्रहण करता है वह कल्प, पर्यन्त नरक से दुःखों को भोगता है ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य तृण काष्ठ अथवा पाषाणों के द्वारा शिवमन्दिर को निर्माण कराते हैं, वे महादेवजी के निकट उनके साथ आनन्द से निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु





पच्येतकल्पांतंनरकंः ॥ ४२ ॥ तृणैःकाष्ठैश्चपाषाणैर्येकुर्वन्तिशिवालयम् ॥ भाईतेसहरुद्रेण-
तेनराःशिवसन्निधौ ॥ ४३ ॥ ब्रह्मविष्णुमहादेवप्रासादंमठमेव च ॥ कृत्वातुसुचिरंकालंतत्र-
लोकेवसंतिते ॥ ४४ ॥ येधर्ममठगोशालाः पथिविश्राममंदिरम् ॥ यतीनांसदनंवैश्यदीनां-
नांचकुटीरकम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मशालांचविपुलांब्राह्मणस्यचमंदिरम् ॥ सृष्ट्वायांतिविशांश्रेष्ठइन्द्र-
स्यभवनंनराः ॥ ४६ ॥ जीर्णोद्धारेणवैतेषांतत्फलंद्विगुणंभवेत् ॥ चतुरंगंयत्र यः कुर्यात्संग-

अथवा महादेवजी का मन्दिर अथवा मठ बनवाते हैं, चिरकालपर्यन्त उन्हीं के लोक में निवास करते है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य मार्गमें धर्मशाला, गोशाला, विश्रामस्थान, संन्यासियोंके स्थान अथवा दीन दुखियों की कुटी ॥ ब्रह्मशाला अथवा ब्राह्मणों के मन्दिर इनको निर्माण कराते हैं, हे वैश्यराज ! वे लोक इन्द्रलोक में निवास करते हैं ॥ ४५-४६ ॥ और उनका जीर्णोद्धार कराने से उससे द्विगुणफलकी प्राप्ति होती है, एवं जो व्यक्ति उन्हें मग्न करता

(तोड़ता फोड़ता) है वह अवश्य ही नरक में जाता है ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति लोभ से मोहित हो देवता, ब्राह्मण अथवा यतियों के मठोंका अधिकारी बनना चाहता है, उसको समस्त धर्म कृत्यों में से बहिष्कृत कर देना चाहिये ॥४८॥ जो मनुष्य मठ के पत्र पुष्प फल जल अथवा अन्न आदि किसी द्रव्य का भक्षण करता है वह इक्कीस नरकों में क्लेश



च्छेन्निरयंध्रुवम् ॥ ४७ ॥ देवविप्रयतीनांतुमठलोभविमोहितः ॥ मठाधिपत्यंयःकुर्यात्सर्वधर्म-
बहिष्कृतः ॥४८॥ पत्रंपुष्पंफलंतोयंद्रव्यमन्नं मठस्य च ॥ योश्नातिनरकान्भोगान्लभतेचैकवि-
शतिः ॥४९॥ इच्छेन्नरकंनेतुंसपुत्रपशुबांधवम् ॥ तंदेवेष्वधिपंकुर्याद्गोषुचब्राह्मणेषुच ॥५०॥
अभोज्यंमठिनामन्नंभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ स्पृष्ट्वामठपतिंवैश्यसवासाजलमाविशेत् ॥५१॥
आदित्यंचंडिकांविष्णुंरुद्रंचैवगणेश्वरम् ॥ उपभुंजंतियेद्रव्यंतेवैनिरयगामिनः ॥५२॥

भोगता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य अपने पुत्रों पशुओं और बन्धु बान्धवों को नरक में भेजना चाहता हो, उसे देवताओं गौवों और ब्राह्मणों के ऊपर अधिकारी बना देना चाहिये ॥ ५० ॥ मठके अधिकारियों का अन्न भोजन करने के अयोग्य है, उसका भोजन करने के अनन्तर चान्द्रायण व्रत करना चाहिये हे वैश्य ! मठाधिकारी का स्पर्श करले तो

अयोग्य है, उसका भोजन करने के अनन्तर चान्द्रायण व्रत करना चाहिये हे वैश्य ! मठाधिकारी का स्पर्श करले तो





भक्षण करते हैं, उन्हें नरक में जाना होता है ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु अथवा महादेवजी की ही पूजा के लिये जो मनुष्य पुष्पवाटिका का आरोपण करते हैं, उनके अहोभाग्य हैं, सुन्दराम् वे लोग देवलोक में निवास करते हैं ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य पितरों, देवताओं और अतिथियों की सदा पूजा करते हैं, वे प्रजापति के उत्तमोत्तम लोक में जाते हैं ॥ ५४ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानांपूजार्थं पुष्पवाटिकाम् ॥ आरोपयंतियेऽन्यादेवलोकेवसंतिते ॥ ५३ ॥
येसदापितृदेवांश्चप्रीणयंत्यतिथोन्सदा ॥ प्राजापत्यंहितेयांतिलोकंसर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ५४ ॥
मूर्खोवापंडितोवापिश्रोत्रियः पतितोऽपिवा ॥ ब्रह्मतुल्योऽतिथिर्वैश्यमध्याह्ने यः समागतः ॥५५॥
पथिश्रांतायविप्रायह्यन्यस्मैक्षुधिताय च ॥ प्रयच्छंत्यन्नपानीयंतेनाकेचिरवासिनः ॥ ५६ ॥
प्रासह्यदृष्टपूर्वाश्चभोक्तुकामाक्षुधातुराः ॥ यद्गेहेतृप्तिमायांतिब्रह्मलोकेवसंतिते ॥ ५७ ॥ अति-

हे वैश्य ! जो अतिथि मध्याह्न समय आके उपस्थित हुआ हो वह मूर्ख हो या पण्डित वेदपाठी हो अथवा पतित हो परन्तु उसे ब्रह्मतुल्य जानना चाहिये ॥ ५५ ॥ मार्ग में थके हुए ब्राह्मण अथवा अन्य क्षुधित व्यक्ति को जो मनुष्य अन्न जल प्रदान करते हैं वे स्वर्गलोक में चिरकाल पर्यन्त निवास करते हैं ॥ ५६ ॥ जिनको पहिले कभी न देखा हो ऐसे मनुष्य क्षुधित होकर भोजन करने की कामना से आकर जिनके घर तृप्त होते हैं उन मनुष्यों का ब्रह्मलोक

में निवास होता है ॥ ५७ ॥ हे वैश्य ! मध्याह्न अथवा सन्ध्या के समय जिसके घर से हो आगत अतिथि विमुख हो लौट जाता है, वह यमलोक में निवास करता है ॥ ५८ ॥ जिस गृहस्थ के घर से अभ्यागत "नहीं-नहीं" वाक्य सुन निराश हो लौट जाता है उस गृहस्थी के जन्मभर के संचित पुण्य को वह अतिथि ले जाता है ॥ ५९ ॥ अतिथि

थिर्विमुखोयस्यसंगच्छेद्गृहमागतः ॥ मध्याह्नेवैश्यसायंवासप्रयातियमालयम् ॥५८॥ नास्ति॰
नास्तिवचः श्रुत्वात्यक्ताशोह्यतिथिर्व्रजेत् ॥ आजन्मसंचितंपुण्यंगृह्णातिगृहमेधिनः ॥५९॥
नास्त्यतिथिसमोबंधुर्नास्त्यतिथिसमंधनम् ॥ नास्त्यतिथिसमोधर्मोनास्त्यतिथिसमोहितः ॥६०॥
आतिथ्यस्यप्रभावेणराजानोमुनयस्तथा ॥ ब्रह्मलोकंगताद्यापिनच्यवंतेविशांवर ॥६१॥
आजन्मतोगृहस्थोयः प्रमादाद्वाकथंचन ॥ भोजयेदतिथिंनूनंनैवपश्यतिसोऽन्तकम् ॥६२॥

के समान बन्धु, धन, धर्म और हितकारी अन्य कोई भी नहीं है, ॥ ६० ॥ हे वैश्य ! अतिथियों ही के प्रताप से जो राजा और मुनिलोग ब्रह्मलोक में पहुँचे हैं, अब तक उनका पतन नहीं हुआ है ॥ ६१ ॥ हे वैश्य ! जो गृहस्थ अपने जन्म में प्रमादसे भी अतिथि को भोजन करा देते हैं, उनको यमराज के दर्शन कदापि नहीं होते ॥ ६२ ॥ हे

कुरुओं में उनका जन्म होता है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर वे लोग भारतवर्षमें धर्माचारी राजा होते हैं, अथच जो मनुष्य अन्नदान करता है उसे दीर्घ आयु और विपुल सुखसंपत्तिकी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ क्यों कि-सब मनुष्यों के प्राण अन्नहीमें हैं, इसलिये हे वैश्यराज ! अन्नदान करनवालेको विद्वानोंने प्राणदाता कहा है ॥६५॥ जब केसरिध्वज राजा

सुदीप्तेषुविमानेषुभुंक्तेषोयूषमन्नदः ॥ यातिस्वर्गच्युतोवैश्यउत्तरांश्चकुरून्प्रति ॥६३॥ ततश्च भारतेवर्षेराजाभवतिधार्मिकः ॥ अन्नदोदीर्घमायुश्चविंदते सुखसंपदः ॥६४॥ सर्वेषामेवभूतानामन्नप्राणाःप्रतिष्ठिताः ॥ तेनान्नदोविशांश्रेष्ठप्राणदातास्मृतोबुधैः ॥६५॥ प्राहवैवस्वतोदेवोराजानंकेसरिध्वजम् ॥ च्यवंतं स्वर्गलोकात्तं कारुण्येन विशांपते ॥ ६६ ॥ ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं नराधिप ॥ कर्मभूमौ गतो भूयो यदि स्वर्गं त्वमिच्छसि ॥ ६७ ॥ इत्यश्रावि मयावैश्यसाक्षाद्धर्ममुखादपि ॥ अन्नदानसमंदानमतो नास्तिमयोदितम् ॥ ६८ ॥ पानीयंप्रददेद्ग्रीष्मेहेमन्तेऽग्नितथैवच । अन्नं च सर्वदा

स्वर्ग से निपतित होने लगा, तब वैवस्वतदेवने करुणा करके उससे कहा ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! यदि कर्मभूमि मर्त्यलोक में जाकर फिर तुम स्वर्गप्राप्तिकी इच्छा करो तो अन्नका दान अवश्य करना ॥ ६७ ॥ हे वैश्य ! यह वृत्तान्त मैंने स्वयं धर्मराजके मुखसे सुना था, अतएव अन्नदानके समान अन्य कोई दान नहीं है ऐसा मैंने कहा है ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य ग्रीष्मऋतुमें जल, हेमन्तऋतुमें अग्नि और सब कालमें अन्नदान करते हैं उन्हें नरकयातना नहीं भोगनी पड़ती ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य ज्ञान अथवा अज्ञानसे किये हुए छोटे अथवा बड़े पापोंके लिए छ मासमें प्रायश्चित्त करता है ॥ ७० ॥ हे वैश्यराज ! वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है, अतएव उसे यमराजके दर्शन नहीं होते, और

दत्त्वागच्छेद्याम्यांनयातनाम् ॥ ६९ ॥ ज्ञाताज्ञातेषुपापेषुक्षुद्रेषुचमहत्सुत्र ॥ षट्सुषट्सुचमासेषुप्रायश्चित्तंतुयश्चरेत् ॥ ७० ॥ निष्कल्मषोनरोवैश्यसकृतांतनपश्यति ॥ प्रायश्चित्तंचरेद्यस्तुवाङ्मनः कायकर्मसु ॥७१॥ सप्राप्नोतिशुभाँल्लोकान्देवगंधर्वशोभितान् ॥ नित्यंजपंतियेवैश्यगायत्रींवेदमातरम् ॥ ७२ ॥ अन्यद्वावैदिकंजाप्यंनतेलिप्यंतिपातकः ॥ वेदाभ्यासरतानित्यंसायंप्रातर्हुताशने ॥७३॥ येजुह्वतिद्विजावैश्यतेलभंतेऽक्षयांगतिम् ॥ नित्यंव्रतसमाचारोनित्यंतीर्थोपसेवकः ॥७४॥ नित्यंजितेन्द्रियः सत्यं यमंरौद्रंनपश्यति ॥ नरकंदारुणंस्मृ-

जो पुरुष वाचिक मानसिक, अथवा कायिक कर्मों के प्रायश्चित्तका आचरण करता है ॥ ७१ ॥ उनको देवताओं और गन्धर्वों से शोभित लोकोंकी प्राप्ति होती है । हे वैश्य ! जो लोग वेदमाता गायत्रीका नित्य ही जप करते हैं ॥७२॥ अथवा अन्य किसी वैदिक मन्त्रका जप करते हैं, उन्हें पातकों से लिप्त नहीं होना होता, जो व्यक्ति वेदके

प्राप्ति होती है, जो मनुष्य नित्य ही व्रतका आचरण करता, नित्यतीर्थों की सेवा करता है ॥७४॥ और जो नित्य ही इन्द्रिय दमन पूर्वक सत्य संभाषण करता है, उसको बीभत्स्य यमराजके दर्शन नहीं करने पड़ने, नरकों की दारुणताका विचार ( स्मरण ) करके पराये अन्नकी अभिरुचिका परित्याग कर डालना चाहिये ॥ ७५ ॥ कारण कि, जो जिसके अन्नका उपभोग करता है, वह उसके पातकों का भी उपभोग करता है जो मनुष्य प्रभात समय स्नान करता है,

त्वापरान्नेच्छांनित्यजेत् ॥ ७५ ॥ योयस्यान्नंसमश्नातितस्याश्नातिचकिल्विषम् ॥ याम्यांहियातनांदुःखंप्रातःस्नायीनविंदति ॥७६॥ प्रातःस्नानेनपूयंतेअतिपापकरानराः ॥ प्रातःस्नानंहरेद्वैश्यसबाह्याभ्यंतरंमलम् ॥ ७७ ॥ प्रातःस्नानेननिष्पापोनरोननिरयंव्रजेत् ॥ स्नानंविनातु योभुंक्तेसमलाशीसदानरः ॥७८॥ अस्नायिनोऽशुचेस्तस्यनिराशाःपितृदेवताः ॥ स्नानहीनो-

उसे यमयातना नहीं भोगनी पड़ती ॥ ७६ ॥ प्रातः समय स्नान करने से बड़े-बड़े पापाचारी भी पवित्र हो जाते हैं हे वैश्य ! प्रातः काल का स्नान बाह्य और अभ्यन्तर के सब मलोंका अपहरण कर लेता है ॥ ७७ ॥ प्रातः समय स्नान करने से मनुष्य के समस्त पापों का नाश हो जाता है, अतएव उनको नरक में नहीं जाना होता है, एवं च जो मनुष्य विना स्नान किये भोजन करलेता है उसको सदा मल खानेवाला जानना चाहिये ॥ ७८ ॥ जो

मनुष्य स्नान न करने के कारण अपवित्र रहता है उसके पितृदेव निराश रहते हैं, कारण कि, जो मनुष्य स्नान नहीं करता वह पापी और अशुद्ध होता है ॥७९॥ जो मनुष्य स्नान नहीं करते वे नरक की यातना को भोगकर नीच जातियों में उत्पन्न होते हैं और जो मनुष्य माघमास में पर्व के दिन स्नान करते हैं ॥८०॥ उनकी दुर्गति अथवा कुत्सित योनियों में उनका जन्म नहीं होता, एवञ्च उनके दुःस्वप्न और अनिष्टचिन्तायें सभी निष्फल हो जाती

नरःपापःस्नानहीनोऽशुचिःसदा ॥ ७९ ॥ अस्नायीनरकंभुक्त्वापुल्कसादिषुजायते ॥ ये पुनस्तपसिस्नानमाचरंतीहपर्वणि ॥८०॥ तेनैवदुर्गतिंयांतिनजायंतेकुयोनिषु ॥ दुःस्वप्नंदुष्टचित्यंचवन्ध्यंभवतिसर्वदा ॥८१॥ प्रातःस्नानविशुद्धानांपुरुषाणांविशांवर ॥ तिलांश्चतिलपात्रंचतिलपद्ममयथाविधि ॥८२॥ दत्त्वाप्रेतपतेर्भूमिंनव्रजंतिनराःक्वचित् ॥ पृथिवींकांचनंगाश्चमहादानानिषोडश ॥ ८३ ॥ दत्त्वातुननिवर्ततेस्वर्गलोकाद्विकुण्डल ॥ पुण्यासुतिथिषुप्राज्ञी-

हैं ॥ ८१ ॥ हे वैश्यवर ! प्रातः स्नान करने से जो मनुष्य शुद्ध हो गये हैं, उनको तिल, तिलपात्र और तिलकमल यथा विधि से ॥ ८२ ॥ दान करके दिये जायँ तो दान करनेवाले मनुष्यों को यमपुरी में नहीं जाना पड़ता । पृथिवी, कांचन ( सुवर्ण ) गौ और षोडश महादान ॥ ८३ ॥ इन सबका दान करने से हे विकुण्डल ! स्वर्गलोक से लौटना नहीं होता है । विचार शील व्यक्तियों को चाहिये कि पवित्र तिथियों में व्यतीपात और संक्रान्ति के

दिन ॥ ८४ ॥ स्नान करके कुछ न कुछ अवश्य दान करे, क्योंकि ऐसा करने से उसको दुर्गति नहीं भोगनी पड़ती, और दान करनेवाले व्यक्तियोंको दारुणनगर के मार्गमें भी नहीं चलना पड़ता ॥ ८५ ॥ और इस लोकमें भी उनका निर्धनोंके कुलमें जन्म नहीं होता, जो मनुष्य सदैव मौनधारण अथवा सत्य संभाषण करनेवाला है, किंवा जो अल्प बातही बोलता है ॥ ८६ ॥ जो क्रोध नहीं करता, जो क्षमा करने ही में अपना पौरुष सफल जानता है, जो अल्प

व्यतापातेनसंक्रमे ॥ ८४ ॥ स्नात्वादत्त्वातुयत्किंचिन्नैवमज्जतिदुर्गतिम् ॥८५॥ इहलोकेन-जायंतेकुलेधनविवर्जिते ॥ सत्यवादीसदामौनोप्रियवादीचयोनरः ॥८६॥ अक्रोधनःक्षमा-सारोनातिवागनसूयकः ॥ सदादाक्षिण्यसंयुक्तःसदाभूतदयान्वितः ॥८७॥ गोप्ताचपरधर्मा-णांवक्तापरगुणस्यच ॥ परस्वंतिलमात्रंतुमनसापिनयोहरेत ॥८८॥ नपश्यतिविशांश्रेष्ठसवैन-रकयातनाम् ॥ परापवादीपापिष्ठःपापेष्वभिरतःसदा॥८९॥पच्यतेनरकेघोरेयावदाभूतसंप्लवम् ॥

भाषण करता और किसीकी निन्दा नहीं करता, जिसके कार्य्य सदैव निपुणतासे सम्पन्न होते और जो सदैव अन्य प्राणियों के ऊपर दया करता है ॥ ८७ ॥ जो पराये धर्मकी रक्षा करता और पराये गुणोंका प्रकाश करता है, और जिसके मनमें पराये द्रव्यको तिलमात्र भी लेनेकी आकांक्षा नहीं होती है ॥ ८८ ॥ हे वैश्यवर ! उनको नरक यातनाके दर्शन तक भी नहीं होते, जो मनुष्य दूसरों की निंदा करता, जो पापाचारी और सदैव पापही में रुचि

रखनेवाला है ॥ ८९ ॥ वह प्रलय पन्तर्य्यं घोर नरकमें कष्ट भोगता है, जो मनुष्य कठोर वचन बोलता है उसके लिये समझ लेना चाहिये कि, वह अवश्य नरकमें जायगा ॥ ९० ॥ और हे वैश्यराज, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि, पीछे उसे दुर्गतिकी प्राप्ति होगी, जो मनुष्य दूसरोंके किये हुए उपकारोंको नहीं मानते, उनका तीर्थयात्रा और तपश्चर्य्या से भी उद्धार नहीं होता ॥ ९१ ॥ और वह मनुष्य नरकमें चिरकालपर्य्यन्त घोर कष्टका उपभोग

वक्ता परुषवाक्यानां मंतव्यो नरकं गतः ॥९०॥ संदेहो न विशां श्रेष्ठ पुनर्यास्यति दुर्गतिम् ॥ न तीर्थैर्न तपोभिश्च कृतघ्नस्यास्ति निष्कृतिः ॥९१॥ सहते यातनां घोरां स नरो नरकं चिरम् ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेषु मज्जति यो नरः ॥९२॥ जितेन्द्रियो जिताहारो न स याति यमालयम् ॥ न तीर्थे पातकं कुर्यात्त्यजेत्तीर्थोपजीवनम् ॥९३॥ अन्यतीर्थसमां गंगां यो ब्रवीति नराधमः ॥ स याति रौरवं वैश्य नरकं दारुणं भृशम् ॥९४॥ तीर्थे प्रतिग्रहस्त्याज्यस्त्याज्यो धर्मस्य विक्रयः ॥ दुर्जरं

करता है, और जो मनुष्य भूमण्डलके सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करता है ॥ ९२ ॥ और जितेन्द्रिय रहकर नियमित भोजन करता है, उसको यमलोकमें नहीं जाना होता, मनुष्योंको चाहिये कि, तीर्थके ऊपर पापका आचरण न करें एवं तीर्थकी आजीविकाको भी त्याग देना चाहिये ॥९३॥ हे वैश्य ! जो नीच मनुष्य गंगाजीको भी अन्य तीर्थों ही

देना चाहिये, क्योंकि तीर्थका दान और पातक ये दोनों ही कठिनतासे दूर होते हैं ॥९५॥ तीर्थोंमें जो कुछ भी पाप किया जाय सब कठिनतासे ही दूर होता है, अतएव वहाँ पापादि करनेवालोंको नरकमें जाना होता है, जिसने एक वार भी गंगाजलमें स्नान किया है तो उसकी आत्मा गंगाजलके स्पर्शसे शुद्ध हो जाती है ॥ ९६ ॥ इसी कारण उसने चाहे जितने पाप क्यों न किये हों तथापि उसे नरकमें नहीं जाना पड़ता, व्रत, दान, तप, यज्ञ तथा अन्य पवित्र कर्म

पातकंतीर्थेदुर्जरश्चप्रतिग्रहः ॥९५॥ तीर्थेषुदुर्जरंसर्वमेतत्कृत्वानरकंव्रजेत् ॥ सकृद्गंगाम्भसिस्नात्वापूतोगांगेनवारिणा ॥९६॥ नरोननरकंयातिअपिपातकराशिकृत् ॥ व्रतंदानंतपोयज्ञाः पवित्राणीतराणिच ॥९७॥ गंगाबिन्द्वभिषेकस्यनसमानोतिविश्रुतम् ॥ धर्मद्रव्यंधर्मबीजंवैकुंठचरणच्युतम् ॥९८॥ धृतंमूर्ध्निमहेशेनयद्गांगममलंजलम् ॥ तद्ब्रह्मैवनसंदेहोनिर्गुणंप्रकृतेःपरम् ॥९९॥ तेतत्किंसमतांगच्छेदपिब्रह्मांडगोलके । गंगेनामग्रहणाद्योजनानांशतैरपि ॥१००॥

सभी मिलकर ॥ ९७ ॥ गंगाजलके एक बिन्दुके अभिषेककी समानता नहीं कर सकते हैं, ऐसा शास्त्रोंमें कहा है । यह गंगाजल धर्म का द्रव्य है धर्मका बीजस्वरूप है, इसका प्रादुर्भाव श्रीविष्णुभगवान् के चरणों से हुआ है ॥ ९८ ॥ उसी निर्मल गंगाजल को महादेवजीने अपने शिरके ऊपर धारण किया, उसी गंगाजलको मायिक गुणोंसे रहित, और जहाँ तक प्रकृतिकी भी पहुँच नहीं है ऐसा ब्रह्म ही समझना चाहिये ॥ ९९ ॥ अतएव इस ब्रह्माण्डके गोलकमें कोई

वस्तुभी उसके समान नहीं हो सकती, जब सौ योंयनकी दूरीपर बैठा हुआ भी मनुष्य गंगा नामका उच्चारण करनेसे ॥ १०० ॥ नरकयात्रासे बच जाता है, तब उसके सदृश भला और क्या हो सकता है, अन्य किसीके द्वारा नरक देनेवाले कार्य्य तत्काल भस्मीभूत नहीं होते ॥ १०१ ॥ अतएव यत्नपूर्वक गंगाजीमें मनुष्योंको स्नान करना चाहिए, जिसने दान लेना त्याग दिया, अथवा जो दान नहीं लेता है ॥१०२॥ वह तारा रूप होकर चिरकालपर्यन्त स्वर्गलोकमें

नरोननरकंयातिकितयासदृशंभवेत्॥ नान्येनदह्यतेसद्यः क्रियानरकदायिनी ॥१०१॥ गंगांभासि- प्रयत्नेनस्नातव्यंतैश्चमानुषैः॥ प्रतिग्रहनिवृत्तोयःप्रतिग्रहक्षमोपिसन्॥१०२॥सद्भिजोद्योततेवैश्य तारारूपश्चरंदिवि ॥ गामुद्धरंतियेपंकाद्येरक्षंतीरोगिणम् ॥ १०३ ॥ म्रियंतेगोगृहेचैवतेस्युर्न- भसितारकाः ॥ यमलोकंनपश्यंतिप्राणायामरतानराः॥१०४॥अपिदुष्कृतकर्माणस्तएवहतकि- ल्बिषाः॥दिवसेदिवसेवैश्यप्राणायामास्तुषोडशः ॥१०५॥ अपिभ्रूणहतःपुंसांपुनंत्यहरहःकृताः

प्रकाश रहता है, जो मनुष्य पंक ( कीचड़ ) में से गोका उद्धार और रोगी की रक्षा करते हैं ॥१०३॥ अथवा गौशाला में जिनका मरण होता है, वे सब आकाशमें तारे होते हैं, और गंगाजीको प्रणायाम करनेवाले मनुष्योंको यमलोकके दर्शनतक नहीं होते ॥१०४॥ हे वैश्य ! जो प्रतिदिन सोलह २ प्राणायाम करते हैं उन्होंने चाहे जैसे दुष्कर्म किये हों तथापि उनके सब पाप दूर हो जाते हैं ॥१०५॥ जो ...

भ्रूण इत्यादिक पातकभी दूर हो जाते हैं ॥ १०६ ॥ सहस्र गौओंका दान करना, तथा प्राणायाम करना, अथच जो मनुष्य एक मास पर्यन्त कुशाग्रसे गङ्गाजल पान करता है ॥१०७॥ इसका फल एक सौ वर्ष प्राणायाम करनेके समान है, जितने महापातक हैं, तथा जितने क्षुद्र उपपातक हैं ॥१०८॥ हे वैश्यवर! प्राणायाम करनेसे ये सब पातक क्षण

तपांसियानितप्यंतेव्रतानिनियमाश्चये ॥१०६॥ गोसहस्रप्रदानंच प्राणायामाश्चतु तत्समाः ॥ गंगां-भोपिकुशाग्रेण मासमेकंतु यः पिबेत् ॥१०७॥ संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामस्तु तत्समः ॥ पातकंतु-महद्यच्चतथाक्षुद्रोपपातकम् ॥१०८॥ प्राणयामःक्षणात्सर्वं भस्मसात्कुर्याद्विशांवर ॥ मातृवत्परदा-रान्येसंपश्यंतिनरोत्तमाः ॥१०९॥ तेनयांतिविशांश्रेष्ठ कदाचिद्यमयातनाम् ॥ मनसापि परेषां यः कलत्राणिनसेवते ॥११०॥ सहिलोकद्वयेदेवस्तेनवैश्यधराधृता ॥ तस्मात्सर्वात्मनात्याज्यं पर-दारोपसेवनम् ॥ १११ ॥ नयंतिपरदारास्तु नरकानेकविंशतिम् ॥ नलोभेजायतेयेषां परद्रव्येषु-

भरमें भस्म हो जाते हैं, जो मनुष्य पराई स्त्रियोंको अपनी माताके सदृश अवलोकन करते हैं ॥ १०९ ॥ हे वैश्यराज! उन्हें यमयातना नहीं भोगनी होती, एवं च जो व्यक्ति पराई स्त्रियोंकी अपने मनसेभी सेवा नहीं करता है ॥११०॥ वह दोनों लोकोंमें उत्तम समझा जाता है और मानों उसीने भूमिको धारण कर रक्खा है, सुतराम् मनुष्योंको परस्त्री सेवन सर्वथैव परित्याग कर देना चाहिये ॥१११॥ परस्त्री गमन इक्कीस नरकोंमें ले जाता है, जिनके चित्तमें पराये

द्रव्यका लोभ नहीं होता है ॥ ११२ ॥ वे लोक देवलोकमें जाते हैं, और उन्हें यमयातनाका उपभोग नहीं करना होता, जिन कारणों से क्रोध उत्पन्न होता है, उन कारणोंके उपस्थित होनेपर भी क्रोध जिसे नहीं आता ॥ ११३ ॥ उस क्रोधहीन व्यक्तिको स्वर्गका विजय करनेवाला समझना चाहिए, जो मनुष्य माता-पिताका देववत् आराधना



मानसम् ॥११२ ॥ तेयांतिदेवलोकंहिनयाम्यंवश्यसत्तम ॥ सत्सुक्रोधनिमित्तेषुयः क्रोधेनन- जीयते ॥ ११३ ॥ जितस्वर्गःसमंतव्योपुरुषोऽक्रोधनोभुवि ॥ मातरंपितरंयस्तुआराधयति- देववत् ॥ ११४॥ संप्राप्तेवार्द्धकेकालेनसयातियमालयम् ॥ पितुराधिक्यभावेनयेऽर्चयंतिगुरुं- नराः ॥ ११५ ॥ भवंत्यतिथयोलोकेब्रह्मणस्तेविशांवर ॥ इहताश्चस्त्रियोधन्याः शीलस्यपरिर- क्षणात् ॥ ११६ ॥ शीलभंगेननारीणांयमलोकः सुदारुणः ॥ शीलंरक्षंतियानित्यंदुष्टसंग-

करता है ॥ ११४ ॥ वह व्यक्ति वृद्ध भाव प्राप्त होनेपर यमलोकका दर्शन नहीं करता और जो मनुष्य गुरुमहाराज की पूजा पिताकी अपेक्षासे भी अधिक भावसे करते हैं ॥ ११५ ॥ हे वैश्यवर ! वे लोग ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं, एवं च इस लोकमें उन्हीं स्त्रियोंको धन्य है जो शीलकी रक्षा करती हैं ॥ ११६ ॥ यदि शीलका विनाश हो जाय तो

हैं ॥ ११७ ॥ हे वश्य ! उन स्त्रियों को शीलकी रक्षा करनेही से निःसन्देह स्वर्गकी प्राप्ति होती है शुद्ध पाकयज्ञका आचरण करने और निषिद्ध कार्यों का परित्याग करनेसे ॥ ११८ ॥ हे वैश्य ! स्वर्गकी गतिका लाभ होता है, और उक्तविधिसे आचारण करनेवालेको नरककी यात्रा नहीं करनी पड़ती, जो मनुष्य शास्त्रका विचार करते और जो वेदका अभ्यास करते हैं ॥११९॥ एवं च जो महाशय पुराण और संहिताको सुनाते अथवा स्वयं पढ़ते हैं, जो स्मृतियों

विवर्जनात् ॥ ११७ ॥ शीलेनहिपरःस्वर्गःस्त्रीणांवैश्यनसंशयः ॥ विशुद्धपाकयज्ञेननिषिद्धाचरणेनच ॥११८॥ स्वर्गतिर्विहितावैश्यनगतिस्तस्य नारकी ॥ विचारयंतियेशास्त्रंवेदाभ्यासरताश्चये ॥११९॥ पुराणंसंहितांयेचश्रावयन्तिपठन्तिच ॥ व्याकुर्वंतिस्मृतियेचयेधर्मप्रतिबोधकाः ॥ १२० ॥ वेदांतनिपुणायेवैतैरियंजगतीधृता ॥ तत्तदभ्यासमाहात्म्यैःसर्वेतेहतकिल्बिषाः ॥१२१॥ गच्छंतिब्रह्मणोलोकंयत्रमोहोनविद्यते ॥ ज्ञानमादाययोदद्याद्वेदशास्त्र-

( अर्थात्—मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंमें ) की व्याख्या करते एवं जो धर्मका उपदेश करते हैं ॥ १२० ॥ और जो व्यक्ति वेदान्तशास्त्र की क्रियामें निपुण हैं, उन्होंने ही इस भूमिको धारण कर रक्खा है । जिनका २ नाम प्रथम लिया गया है उनका अभ्यास करनेके माहात्म्यसे उक्त सब महाशयोंके पापोंका नाश हो जाता है ॥१२१॥ सुतराम् वे ब्रह्माजीके उस लोकमें जाते हैं, जहाँ अज्ञान है ही नहीं, जो मनुष्य वैदिक अथवा शास्त्रीय ज्ञानका दूसरोंको

उपदेश करते हैं ॥ १२२ ॥ उस सांसारिक बन्धनसे मुक्तकराने वाले महात्माकी देवता भी पूजा करते हैं ॥ १२३ ॥
इति श्रीमाघमाहात्म्य भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥





समुद्भवम् ॥१२२॥ अपि देवास्तमर्चंति भवबंधविदारकम् ॥१२३॥ इति श्रीपद्म० उत्तर-खंडेमाघमासमा० वसिष्ठदिलीपसंवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

—: ❁ :—

यमदूत बोला—हे वैश्यराज ! धर्मराजका सम्मत, और सम्पूर्ण लोकोंको अमरत्व लाभ करानेवाले इस अद्भुत रहस्यको तुम सुनो ॥ १ ॥ जो मनुष्य विष्णु भगवान्‌की भक्तिका आचरण करते हैं वे लोग यमराज के घोर

यमदूतउवाच ॥ श्रूयतामद्भुतं ह्य तद्रहस्यंवैश्यसत्तम ॥ संमतंधर्मराजस्यसर्वलोकामृत-प्रदम् ॥ १ ॥ नयमंयमदूतंवानदूतान्घोरदर्शनान् ॥ पश्यंतिवैष्णवा नूनं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २ ॥ आहास्मान्यमुनाभ्रातासादरंचपुनःपुनः ॥ भवद्भिर्वैष्णवास्त्याज्यानतेस्युर्ममगो-

दर्शनवाले उनके सब दूत अथवा किसी यमदूतके दर्शन नहीं करते हैं, यह बात मैं बिलकुल सत्य ही कहता हूँ ॥ २ ॥

मैं उन्हें देखतक नहीं सकता हूँ ॥ ३ ॥ हे दूतो ! जो मनुष्य किसी कारणसे एकबार भी विष्णुभगवान्का स्मरण करते हैं, उनके समस्त पापसमूहका विनाश हो जाता है सुतराम् उनको विष्णुभगवान्के परमपद मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥४॥ जो मनुष्य विष्णुभगवान्का भजन करता है, वह दुराचारी, दुःशील और सदैव पापाचरण करनेमें निरत ही

चराः ॥ ३ ॥ येस्मरन्तिसकृद्दूताःप्रसंगेनापिकेशवम् ॥ तेविध्वस्ताखिलाघौघायांतिविष्णोः परंपदम् ॥ ४ ॥ दुराचारोपिदुःशीलःसदापापरतोपिवा ॥ भवद्भिःसर्वदात्याज्योविष्णुंःचेद्भजतेनरः ॥ ५ ॥ वैष्णवोयद्गृहेभुंक्तेतेषांवैष्णवसंगतिः । तेपिवःपरिहार्या स्युस्तत्संगहतकिल्बिषाः ॥ ६ ॥ इतिवैश्यानुशास्तास्माद्देवोदंडधरः सदा ॥ अतोनवैष्णवोयातिराजधानींयमस्यतु ॥ ७ ॥ विष्णुभक्तिंविनानॄणांपापिष्ठानांविशांवर ॥ उपायोनास्तिनास्त्यन्यः

क्यों न हो तथापि तुम्हें उसका सर्वदा ही परित्याग करदेना चाहिये ॥ ५ ॥ जिस घरमें वैष्णवलोग भोजन करते हैं, उनको वैष्णवके संसर्गका लाभ होता है, चूँकि वैष्णवोंके संसर्गसे उनके भी समस्त पापोंका विनाश हो जाता है, अतएव तुम्हें उनका भी परित्याग कर देना चाहिये ॥६॥ हे वैश्य ! यमराजजी इस प्रकार सदैव हम लोगोंको शासन करते रहते हैं उसका यही कारण है कि वैष्णव व्यक्ति को यमराज की राजधानी में नहीं जाना होता है ॥ ७ ॥ हे

वैश्य ! जो पापाचरण करनेवाले मनुष्य हैं उनका संसार सागरसे उद्धार करनेके लिये विष्णुभक्तिको छोड़कर अन्यकोई
भी उपाय ही नहीं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण विष्णुके भक्त नहीं हैं, उनको सांसारिक जनस्वपाक ( चाण्डाल ) के
समान अवलोकन करते हैं, और वैष्णव यदि नीच वर्ण का हो तथापि वह तीनों लोकों को पवित्र कर सकता
है ॥ ९ ॥ पितृपक्ष और मातृपक्ष के पूर्वज व्यक्तिगण चिरकाल से नरक में निपतित हों तो भी जब उनके कुलमें पुत्र

संततुंनरकांबुधिम् ॥ ८ ॥ श्वपाकमिवनेक्षंतेलोकाविप्रमवैष्णवम् ॥ वैष्णवोवर्णबाह्योपिपुनाति-
भुवनत्रयम् ॥ ९ ॥ नरकेपिचिरंमग्नाः पूर्वजायेकुलद्वये ॥ तदन्वयांतितेस्वर्गंयदार्चंतिसुतो-
हरिम् ॥ १० ॥ विष्णुभक्तस्ययेदासावैष्णवान्नभुजश्चये ॥ तेपिक्रतुभुजांश्रेष्ठगतिंयांतिनराः
किल ॥ ११ ॥ अर्जयेद्वैष्णवस्यान्नंप्रयत्नेनविचक्षणः ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थंतदभावेजलं-
पिबेत् ॥ १२ ॥ गोविंदेतिजपन्मंत्रंकुत्रचिन्म्रियतेदि ॥ सनरोनयमंपश्येन्नचप्रेक्षामहे-

विष्णु भगवान् का पूजन करता है तभी वे लोग स्वर्ग को चले जाते हैं ॥ १० ॥ जो मनुष्य वैष्णवों के दास हैं और
जो वैष्णवों के अन्नका भोजन करते हैं, उन पुरुषोंको भी अवश्य ही देवताओं को उत्तम गतिका लाभ होता है॥ ११॥
मनुष्य यदि अपने समस्त पापोंका संशोधन करना चाहे तो उसको चाहिये कि—वैष्णव ही के अन्नकी याचना करें

इस मन्त्रका जप करता हुआ कहीं अपने प्राणपरित्याग करता है तो उसे यमराजके दर्शन नहीं होते, और न इन्हीं
उसका अवलोकन कर सकते हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य अंगन्यास, ऋषि, छन्द और देवता सहित 'ॐ नमोभगवते वासु-
देवाय' इस समग्र द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हैं ॥ १४ ॥ अथवा जो नरोत्तम व्यक्तिगण समस्त मन्त्रोंके
अधीश्वर स्वरूप "ॐ नमोनारायणाय" इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हैं, वे स्वयं वैष्णव हो जाते हैं, अतएव उनके

वयम् ॥ १३ ॥ सांगंसमग्रंसन्यासंसऋषिच्छंददैवतम् ॥ तद्दीक्षाविधिसंपन्नंसन्मंत्रंद्वादशा-
क्षरम् ॥ १४ ॥ अष्टाक्षरंचमंत्रेशंयेजपंतिनरोत्तमाः ॥ तान्दृष्ट्वाब्रह्महाशुद्धस्तेजातावैष्णवा-
स्वयम् ॥ १५ ॥ शंखिनश्चक्रिणोभूत्वाब्रह्मायुर्वनमालिनः ॥ वसंतिवैष्णवेलोकेविष्णुरूपेण-
तेनराः ॥ १६ ॥ हृदिसूर्येजलेवाथप्रतिमास्थंडिलेषुच ॥ समभ्यर्च्यहरिंयांतिनरास्तेवैष्णवं-
पदम् ॥ १७ ॥ अथवासर्वदापूज्योवासुदेवोमुमुक्षुभिः ॥ शालिग्रामशिलाचक्रेचक्रांकितविनि-

दर्शन करनेसे ब्रह्मघात करनेवालोंकी भी शुद्धि हो जाती है ॥ १५ ॥ और वे लोग शंख चक्र धारणकर वनमालासे
सुसज्जित होकर विष्णुरूप ही से विष्णुलोकमें ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त निवास करते हैं ॥ १६ ॥ हृदय, सूर्य, जल,
प्रतिमा अथवा स्थण्डिल में जो मनुष्य नारायण की पूजा करते हैं, उन्हें भी वैष्णपद की प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥
अथवा मोक्ष की अभिलाषा करने वाले प्राणियों को शालिग्रामशिला में गोमती चक्र में श्रीविष्णुभगवान् की पूजा

अवश्य ही करनी चाहिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह श्रीविष्णुभगवान्‌का निवासस्थान सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है अथ च वह सभी को मुक्ति भी देता है ॥ १९ ॥ जो व्यक्ति शालिग्रामशिलामें विष्णुभगवान्‌की पूजा करते हैं मानों वे लोग प्रतिदिन सहस्रों राजसूययज्ञ का अनुष्ठान करते हैं ॥२०॥ ज्ञानद्वारा जानलेनेके योग्य अविनाशी परब्रह्म

मिते ॥ १८ ॥ अधिष्ठानंहितद्विष्णोःसर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वपुण्यप्रदंवैश्यसर्वेषामपि-
मुक्तिदम् ॥ १९ ॥ यःपूजयेद्धरिंचक्रेशालिग्रामशिलोद्भवे ॥ राजसूयसहस्रेणतेनेष्टंप्रति-
वासरम् ॥ २० ॥ यदानमंतिवेद्यंतंब्रह्मनिर्वाणमच्युतम् ॥ तत्प्रसादोवेभन्नृणांशालिग्राम-
शिलार्चनात् ॥ २१ ॥ महत्काष्ठस्थितोवह्निर्यथास्थानेप्रकाशते ॥ तथातथाहरिर्व्यापीशालिग्रामे-
प्रकाशते ॥२२॥ अपिपापसमाचारानकर्मण्यधिकारिणः ॥ शालिग्रामार्चकावैश्यनवैयांतियमा-

को जाननेपर जो पुण्यकाल प्राप्त होता है,शालिग्रामशिलाका पूजन करने से भी उसी फलकी प्राप्ति हो जाती है ॥२१॥ जैसे काष्ठमें अग्निव्याप्त है परन्तु किसी स्थान में उसका प्रादुर्भाव हो जाता है ऐसे ही यद्यपि भगवान् सर्वव्यापक हैं तथापि शालिग्रामशिलामें उनका प्रकाश प्रगट होता है ॥ २२ ॥ जिन्होंने अनेक पापोंका आचरण किया है, जिनको यज्ञकर्मों का अनुष्ठान करनेका [illegible] शालिग्रामशिलाका [illegible] करने से भी [illegible] नहीं जाना होता ॥ २३ ॥ [illegible] लक्ष्मीजी के साथ रमण करते हैं [illegible]

उन्हें यमलोक में नहीं जाना होता ॥ २३ ॥ श्री वैकुण्ठ में भगवान् वैकुण्ठलोक में लक्ष्मीजी के साथ रमण करने से भी
ऐसे प्रमुदित नहीं होते, जैसे शालिग्रामशिला और गोमती चक्र में रमण करने से होते हैं ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य ने
शालिग्राम में भगवान् का पूजन करलिया, उसने मानों अग्निहोत्र का आचरण और सागर पर्यन्त भूमिका दान कर

लयम् ॥ २३ ॥ नतथारमतेलक्ष्म्यांनतथा स्वपुरेहरिः ॥ शालिग्रामशिलाचक्रेयथासरमते·
सदा ॥ २४ ॥ अग्निहोत्रंहुततेनदत्तापृथ्वीससागरा ॥ येनार्चितोहरिश्चक्रेशालिग्रामसमुद्भवे
॥ २५ ॥ सकृत्करोतिमनुजः शालिग्रामशिलार्चनम् ॥ पापानिविलयंयांतितमः सूर्योदये·
यथा ॥ २६ ॥ शिलाद्वादशभोवैश्यशालिग्रामसमुद्भवाः ॥ विधिवत्पूजितायेनतस्यपुण्यं·
वदामिते ॥ २७॥ कोटिद्वादशलिंगैस्तु पूजितैः स्वर्णपंकजैः ॥ यत्स्याद्द्वादशकल्पेषु दिनेनैकेनत

दिया ॥२५॥ जो मनुष्य एकबार भी शालिग्रामशिला की पूजा करता है, उसके सब पाप इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं,
जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार का नाश हो जाता है ॥ २६ ॥ हे वैश्य ! शालिग्राम की बारह शिलाओं का जिस
व्यक्तिने पूजन करलिया हो अब हम उसके पुण्यको तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करो ॥ २७ ॥ सुवर्ण-
निर्मित कमलों के द्वारा बारह कल्पपर्यन्त द्वादशलिङ्ग को पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल बारह

शालिग्रामशिलाओं का पूजन करने से एक दिन में मिल जाता है ॥ २८ ॥ और जो व्यक्ति भाव पूर्वक शालिग्राम की शिलाओंकी अर्चना करता है, वह वैकुण्ठधाममें निवास करने के अनन्तर इसलोक में चक्रवर्ती राजा होता है ॥२९॥ कामी, क्रोधी, अथवा लोभी पुरुष भी यदि शालिग्रामशिलाका पूजन करे तो उसे भी हरिलोककी प्राप्ति होती है ॥३०॥

द्भवेत ॥ २८ ॥ यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालिग्रामशिलाशतम् ॥ उषित्वा स हरेर्लोके चक्रवर्ती-
हजायते ॥ २९ ॥ कामक्रोधैश्च लोभैश्च व्याप्तो यश्च नरोत्तमः ॥ सोऽपि याति हरेर्लोकं शालिग्राम-
शिलार्चनात् ॥ ३० ॥ यः पूजयति गोविंदं शालिग्रामे सदा नरः ॥ आभूतसंप्लवं यावन्नांव-
प्रच्यवते हि सः ॥ ३१ ॥ विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना मतिम् ॥ मुक्तिं याति नरो वश्य-
शालिग्रामशिलार्चनात् ॥ ३२ ॥ नरकं गर्भवासं च तिर्यक्त्वं च कुयोनिषु ॥ न याति वैश्य पापिष्ठः

जो मनुष्य शालिग्रामशिलामें गोविन्दभगवान् कीपूजा करता है, प्रलयपर्य्यन्त उसे अधोगतिकी प्राप्ति नहीं होती ॥३१॥ जो नरोत्तम व्यक्ति शालिग्रामशिला की पूजा करते हैं, वे चाहें तीर्थयात्रा भी न करें, और चाहें वे दान अथवा यज्ञा-
नुष्ठान भी न करें एवं उन्हें चाहें [illegible] भी न हो तथापि उनको स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ३२ ॥ शालिग्राम

प्लवंग आदिकी किंवा कुत्सित योनि ही में जन्म होता है ॥ ३३ ॥ दीक्षाविधि और मन्त्रका जाननेवाला जो मनुष्य बलिपूजन करता है, उसको वैष्णव धामकी प्राप्ति होती है हमारा यह कथन बिल्कुल सत्य है ॥ ३४ ॥ जो पुरुष शालिग्रामशिलाके जलसे अभिषेक करता है, मानों वह सब तीर्थोंमें स्नान करता और सब यज्ञोंमें दीक्षित होता





शालिग्रामाच्युतार्चकः ॥ ३३ ॥ दीक्षाविधानमंत्रज्ञश्चक्रेयोबलिमाहरेत् ॥ समातिवैष्णवंधामंसत्यंसत्यंमयोदितद् ॥३४॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ शालिग्रामशिलातोयैर्योभिषेकंसमाचरेत् ॥ ३५ ॥ गंगागोदावरीरेवानद्योमुक्तिप्रदास्तुया ॥ निवसंतिसतीर्थास्ताः शालिग्रामशिलाजले ॥ ३६ ॥ नैवेद्यैर्विविधैःपुष्पैर्धूपैर्दीपैश्चचंदनैः ॥ स्तोत्रवादित्रगीताद्यैः शालिग्रामशिलार्चनम् ॥३७॥ कुरुते मानवोयस्तुकलौ भक्तिपरायणः ॥ कल्पकोटिसहस्राणिरमतेसन्निधौहरेः ॥ ३८ ॥ लिंगस्तुकोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलंपूजितैस्तुतैः ॥ शालिग्रामशिलायां तु

है ॥ ३५ ॥ गोदावरी, गंगा और रेवा आदि जितनी मोक्षदायिनी नदियें हैं, वे सब तीर्थों सहित शालिग्रामशिलाके जलमें निवास करती हैं ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य कलिकालमें भक्तिभावपूर्वक नैवेद्य ( मिष्ठान्न ), विविध भाँतिके पुष्पों, धूप, दीप, चन्दन, स्तोत्रपाठ, वाद्य, एवं गान आदि के द्वारा शालिग्रामशिला का पूजन करते हैं, वे सहस्रों करोड़ कल्पपर्य्यन्त भगवान् के निकट क्रीडा करते हैं ॥ ३७-३८ ॥ करोड़ों शिवलिंगोंके दर्शक, उनकी पूजा अथवा

स्तुतिसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, शालिग्राम की एकही शिलाका पूजन करनेसे उस फलका लाभ हो जाता है ॥३९॥
जो व्यक्ति शालिग्रामशिलाजनित लिंगमें एकबार भी अर्चना करते हैं, वे चाहे अध्यात्मज्ञानरहित हों तो भी उनकी
मुक्ति हो जाती ॥ ४० ॥ जहाँ शालिग्रामशिलारूपसे भगवान् विराजमान रहते हैं, वहाँ ही सम्पूर्ण यज्ञ, देवता

एकायामर्पितत्फलम् ॥ ३९ ॥ सकृदभ्यर्चनाल्लिंगे शालिग्रामशिलोद्भवे ॥ मुक्तिं यांति मनुज·
नूनं सांख्येन वर्जिताः ॥ ४० ॥ शालिग्रामशिलारूपो यत्र तिष्ठति केशवः ॥ तत्र देवाः सुरासि·
द्धा भुवनानि चतुर्दश ॥ ४१ ॥ शालिग्रामशिलाग्रे तु यः श्राद्धं कुरुते नरः ॥ पितरस्तस्य तिष्ठं·
ति तृप्ताः कल्पशतं दिवि ॥४२॥ ये पिबंति नरा नित्यं शालिग्रामशिलाजलम् ॥ पञ्चगव्यसहस्रैस्तु·
प्राशितैः किं प्रयोजनम् ॥ ४३ ॥ शालिग्रामशिला यत्र तीर्थं योजनत्रयम् ॥ तत्र दानं च होम·
श्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ ४४ ॥ शालिग्रामशिलातोयं चक्रांकितशिलाजलैः ॥ मिश्रितं पिब·

सिद्ध और चौदह भुवन निवास करते हैं ॥ ४१ ॥ जो पुरुष शालिग्रामजीकी शिलाके अगाड़ी श्राद्ध करता है, उसके
पितर तृप्त होकर सौ कल्पपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करते हैं ॥ ४२ ॥ अथच जो मनुष्य शालिग्रामशिलाका जल·
पान करते हैं, उन्हें सहस्रोंबार पंचगव्य प्राशन करने से क्या प्रयोजन है अर्थात् सहस्रों पंचगव्यका आचमन करनेसे
... तीर्थ समझा जाता है, वहां दान अथवा होम जो कुछ

पान करते हैं, उन्हें ... के समान समझा जाता है, वहाँ दान अथवा होम जो कुछ
भी किया जाय सब करोड़ गुणा अधिक पुण्यदान करता है ॥ ४४ ॥ शालिग्रामशिला का जल एवं गोमतीचक्र का
जल इन दोनों को मिलाकर जो व्यक्ति पान करता अथवा शिर के ऊपर धारण करता है ॥ ४५ ॥ उसका देह
निःसन्देह चक्राङ्कित हो जाता है, और वह चिन्ह गुप्त रहता है, सुतराम् धर्मराज के अतिरिक्त उसके दर्शन अन्य

तेयस्तु देहे शिरसि धारयेत् ॥४५॥ तस्य चक्राङ्किता देहो भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ गुप्तं न पश्यते-
कोऽपि लोके सूर्यसुतं विना ॥४६॥ अतोऽन्यत्र स्वदूतान्वैष्णवानां गृहोत्तमे ॥ भीता वैष्णव-
भक्तानां पादोदकनिषेवणात् ॥४७॥ त्रिरात्रफलदा माघे याः काश्चिदसमुद्रगाः ॥ समुद्रगा-
स्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः ॥४८॥ षण्मासफलदा गोदावर्यस्य तु जाह्नवी ॥ पादोदकं भ-
गवतो द्वादशाब्दफलप्रदम् ॥४९॥ कोटितीर्थसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम् ॥ तोयं यदि भवे-

किसीको नहीं होते ॥ ४६ ॥ यमराज हरिभक्तों के चरणोदक से भयभीत रहते हैं, अतएव उन्होंने वैष्णव भक्तों के घर
जाने के लिये अपने दूतों को निषेध कर दिया है ॥ ४७ ॥ जो नदियें समुद्रगामिनी नहीं हैं माघमास में उनमें स्नान
करने से त्रिरात्रके फलकी प्राप्ति होती है, समुद्रगामिनी नदियों में स्नान करने से एक पक्ष और समुद्र ही में स्नान करने
से एक मास के फलका लाभ होता है ॥ ४८ ॥ गोदावरी में स्नान करने से छः मास, और भागीरथी गंगामें स्नान

करने से एक वर्ष के फलकी लब्धि होती है, अथच भगवान् का चरणोदक बारह वर्ष माघस्नान के फलको देता
है ॥ ४९ ॥ ( यदि माघमास में स्नान करने के लिये ) शालिग्राम शिलाका पवित्र जल प्राप्त हो जाय तो सहस्रों
एवं करोड़ों तीर्थों की सेवा करने से भी कोई प्रयोजन नहीं ॥ ५० ॥ जो मनुष्य माता के दुग्धही में मिलाकर एक
बिन्दुमात्र भी शालिग्राम शिलाका जलपान करता है, उसका मोक्षहो जाता है ॥ ५१ ॥ शालिग्राम शिलाके निकट

त्पुण्यंशालिग्रामसमुद्भवम् ॥ ५० ॥ शालिग्रामशिलातोयंयःपिबेद्बिंदुमात्रकम् ॥ मातुस्तस्य-
रस्तनंवसभवेन्मुक्तिभाग्नरः ॥५१॥ शालिग्रामसमीपेतुक्रोशमात्रंसमंततः ॥ कीटकोपिमृतो-
यातिवैकुंठभवनंदृढम् ॥५२॥ शालिग्रामशिलारत्नंयोदद्याद्दानमुत्तमम् ॥ भूचक्रंतेनदत्तंस्या-
त्सशैलवनकाननम् ॥५३॥ शालिग्रामशिलायास्तुमौल्यंचैवकरोतियः ॥ विक्रेताचानुमंताच
यःपरीक्षानुमोदकः ॥ ५४ ॥ तेसर्वेनरकंयांतियावदाभूतसंप्लवम् ॥ अतस्तद्वर्जयेद्द्रव्यचक्रस्य-

यदि एक कोशपर्य्यन्त कोई कीट ( कीड़ा ) भी मृतक हो जाय तो अवश्य ही वैकुण्ठलोक को जाता है ॥ ५२ ॥
जो मनुष्य शालिग्राम शिला दान करता है उसे पर्वत और गहनवन सहित भूमण्डल के दान करने का फल
उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥ जो स्वयं शालिग्राम शिला का मूल्य लगाता, जो बेचता अथवा विक्रय का अनुमोदन

अतएव हे वैश्य! चक्रका क्रयविक्रय न करना चाहिये ॥ ५५ ॥ हे वैश्य! विशेष कहने से क्या है? हे वैश्य! पापों-से डरनेवाले मनुष्यको श्रीवासुदेव भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये, क्योंकि हरिस्मरण समस्त पापोंका हरनेवाला है ॥ ५६ ॥ इन्द्रियदमनपूर्वक वनमें घोर तप करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, हरिस्मरण करनेसे उसी फलका लाभ होता है ॥ ५७ ॥ अज्ञानसे वशीभूत हो बहुत प्रकारके पापका आचरण करनेवालाभी मनुष्य यदि पापोंका

क्रयविक्रयम् ॥५५॥ बहुनोक्तेनकिंवैश्यकर्तव्यंपापभिरुणा ॥ स्मरणंवासुदेवस्यसर्वपापहरं-सदा ॥५६॥ तपस्तप्त्वानरोघोरमरण्येनियतेन्द्रियः ॥ यत्फलंसमवाप्नोतितत्स्मृत्वागरुडध्वजम् ॥५७॥ कृत्वातुबहुधापापंनरोमोहसमन्वितः ॥ नयातिनरकंनत्वासर्वपापहरंहरिम् ॥५८॥ पृथिव्यांयानितीर्थानिपुण्यान्यायतनानिच ॥ तानिसर्वाण्यवाप्नोतिविष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥५९॥ देवंशार्ङ्गधरंविष्णुंयेप्रपन्नाःपरायणम् ॥ नतेषांयमसालोक्यंनतेवानरकौकसः ॥६०॥ वैष्णवः

अपहरण करनेवाले नारायणको प्रणाम करे तो उसे नरक में नहीं जाना होता है ॥ ५८ ॥ पृथ्वीके ऊपर जितने तीर्थ अथवा पवित्र स्थान हैं, श्रीविष्णुभगवान् के नामोंका कीर्तन करनेसे उसे सब (फल) की प्राप्ति हो जाती है ॥ ५९ ॥ शार्ङ्गपाणि श्रीशरणागतवत्सल विष्णुभगवान्‌की शरणमें जो व्यक्ति जाते हैं, उन्हें न तो यमराजके निकटही जाना होता है और न नरकमें निवास ही करना पड़ता है ॥ ६० ॥ हे वैश्य! जो वैष्णव पुरुष महादेवजी

की निन्दा करता है, वह विष्णुलोकको नहीं जाता किन्तु अवश्यही नरकगामी होता है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य प्रसंगवशात् भी चाहे किसी एकही एकादशी का व्रत धारण करता है, उसको यमयातना नहीं भोगनी होती, हमने यमराजही से ऐसा सुना है कि ॥ ६२ ॥ यह एकादशी का दिन जैसा पापोंका नाश करनेवाला है त्रिलोकी में ऐसा पवित्र करनेवाला और कोई भी नहीं है ॥ ६३ ॥ हे वैश्यराज ! जब तक प्राणी विष्णु भगवान् के शुभदिन एका-





पुरुषोवैश्यशिवनिंदांकरोतियः ॥ नगच्छेद्वैष्णवंलोकंसयातिनरकंध्रुवम् ॥६१॥ उपोष्यैका-
दशीमेकांप्रसंगेनापिमानवः ॥ नयातियातनांयाम्यामितिनोयमतः श्रुतम् ॥६२॥ नेदृशं-
पावनंकिंचित्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ यादृशंपद्मनाभस्यदिनंपातकनाशनम् ॥६३॥ तावत्पापा-
निदेहेस्मिन्वसंतीहविशांवर ॥ यावन्नोपवसेज्जंतुःपद्मनाभदिनंशुभम् ॥६४॥ अश्वमेधसहस्राणि-
राजसूयशतानिच ॥ एकादश्युपवासस्यकलांनार्हंतिषोडशीम् ॥ ६५ ॥ एकादशेंद्रियैः

दशीका व्रत धारण नहीं करता है, तभीतक उसके देहमें पापोंका निवास रहता है ॥ ६४ ॥ सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ एकादशी व्रतकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥ ६५ ॥ हे वैश्य ! ग्यारहों इन्द्रियोंके द्वारा किये हुए मनुष्यों के सब पाप एकादशीका व्रत करने से विनाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥

आचरण करते हैं, उन्हें भी यमयातना नहीं भोगनी पड़ती ॥ ६७ ॥ यह एकादशी सम्पूर्ण भोगोंको देनेवाली, शरीर को निरोग रखने वाली उत्तम स्त्री और दीर्घजीवी पुत्रको भी देनेवाली है ॥ ६८ ॥ हे वैश्य ! क्या गंगा, क्या काशी, क्या गया, क्या पुष्कर, क्या कुरुक्षेत्र, क्या रेवा और क्या वेणिका ॥ ६९ ॥ क्या यमुना, क्या चन्द्रभागा,

पापंयत्कृतंवैश्यमानवैः ॥ एकादश्युपवासेनतत्सर्वंविलयंव्रजेत् ॥६६॥ एकादशीसमंकिंचित्पुण्यंलोकेनविद्यते ॥ व्याजेनापिकृतायैस्तुतेपियांतिनभास्करीम् ॥६७॥ सर्वभोगप्रदाह्येषाशरीरारोग्यदायिनी ॥ सुकलत्रप्रदाचैषाजीवपुत्र प्रदायिनी ॥६८॥ नगंगानगयावैश्यनकाशीनचपुष्करम् ॥ नचापिकौरवंक्षेत्रंनरेवानचवेणिका ॥ ६९ ॥ यमुनाचंद्रभागाचदिनेन नसमाहरेः ॥ अनायासेनयेनात्रप्राप्यतेवैष्णवंपदम् ॥७०॥ रात्रौजागरणंकृत्वासमुपोष्यहरेर्दिनम् ॥ दशवैपतृकेपक्षेमातृकेदशपूर्वजान् ॥७१॥ प्रियायादशवर्श्यैतान्समुद्धरतिनिश्चितम् ॥

इनमेंसे कोईभी एकादशीके समान पवित्र नहीं है, कारण कि—इसके द्वारा अनायास ( बिनापरिश्रम ) ही विष्णुलोक की प्राप्ति होती है ॥ ७० ॥ जो मनुष्य एकादशीके दिन उपवास धारण करके रात्रि में जागरण करता है वह मातृ-पितृ-पक्षके दश ॥ ७१ ॥ और पत्नीके पक्षवालेके भी दश पुरुषाओंका अवश्य ही उद्धार करता है और वे सब पुरुष, समस्त

संगसे मुक्त होकर गरुड़जीके उपर आरूढ़ हो ॥ ७२ ॥ माला और पिताम्बर धारण कर नारायणके लोकमें जाते हैं, हे वैश्यवर ! बाल्यभाव, युवावस्था, अथवा वृद्धवयमें चाहे जब एकादशीका व्रत किया जाय ॥ ७३ ॥ परन्तु इसका उपवास करके महापापी भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता, तीन रात्रिपर्यन्त व्रतका आचरण और तीर्थ में स्नान

तएवसंगनिर्मुक्तानागारिकृतकेतनाः ॥ ७२ ॥ स्रग्विणःपीतवस्त्राहिप्रयांतिहरिमंदिरम् ॥
बालत्वेयौवनेवापिवृद्धत्वेवाविशांवर ॥७३॥ उपोष्यैकदशींनूनंनैतिपापोपिदुर्गतिम् ॥ उपोष्ये-
हत्रिरात्राणिकृत्वातीर्थेचमज्जनम् ॥७४॥ दत्त्वाहेमतिलान्गांश्चस्वर्गतिंयान्तिमानवाः ॥ तीर्थे-
नस्नांतियेवैश्यनदत्तंकांचनंतुयैः ॥ ७५ ॥ नैवतप्तंतपःकिंचित्तेस्युःसर्वत्रदुःखिता ॥ संक्षिप्तं-
वच्मितेधर्मं नरकस्यनिवारकम् ॥७६॥ अद्रोहःसर्वभूतेषुवाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ इन्द्रियाणां-
निरोधश्चदानंचहरिसेवनम् ॥ ७७ ॥ वर्णाश्रमाणांधर्माणांपालनंविधितःसदा ॥ स्वर्गा-

करके ॥ ७४ ॥ सुवर्ण तिल और गोदान करने से मनुष्योंको स्वर्गकी गतिका लाभ होता है । हे वैश्य ! जो प्राणी तीर्थमें स्नान नहीं करते, जो सुवर्णका दान नहीं करते ॥ ७५ ॥ और जिन्होंने तपका भी कुछ आचरण नहीं किया है, वे सर्वत्रही दुःखित होते हैं, नरकसे बचानेवाले धर्मको मैं संक्षेप रीतिसे तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ ॥ ७६ ॥

है, वे सर्वत्रही दुःखित होते हैं, नरकसे बचानेवाले धर्मको ... करें ॥ ७७ ॥ चारों वर्ण और चारों आश्रमोंमें इनके धर्मको सदैव विधिपूर्वक पालन करता रहे, और हे वरथ ! स्वर्गप्राप्तिकी इच्छावाले प्राणीको तप और दानका आचरण सर्वदा करना कर्त्तव्य है ॥ ७८ ॥ जो व्यक्ति अपने हितकी इच्छा करता हो उसे यथाशक्ति उपानह, छत्र, वस्त्र, अन्न, मूल फल अथवा जल इनका दान अवश्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥ दरिद्री मनुष्य तो ऐसा नहीं कर सकते किन्तु सामर्थ्यवालों को चाहिये कि विना दान

र्थीसर्वदावैश्यतपोदानंचकीर्तयेत् ॥ ७८ ॥ यथाशक्तिसमंदद्यादात्मनोहितमिच्छता ॥ उपान-च्छत्रवस्त्रादिह्यन्नंमूलफलंजलम् ॥७९॥ अवन्ध्यंदिवसंकुर्यान्नदरिद्रैर्हिमानवैः ॥ इहलोकेपरेचै-वनादत्तमुपतिष्ठति ॥८०॥ इतिमत्वासदाचैवदातव्यंतुस्वशक्तितः ॥ दातारोनैवपश्यंतिता-सांहियमयातनाम् ॥८१॥ दीर्घायुषोधनाढ्यास्ते भवंतोहपुनःपुनः ॥ किमत्रबहुनोक्तेनयांत्य-धर्मेणदुर्गतिम् ॥ ८२ ॥ आरोहंतिदिवंधर्मैर्नराःसर्वत्रसर्वदा ॥ तेनबालत्वमारभ्यकर्तव्योधर्म

किये दिनको खाली न जाने दें, कारण कि इसलोक अथवा परलोक में बिना दिये कुछ भी प्राप्त नहीं होता ॥ ८० ॥ ऐसा मानकर अपनी शक्तिके अनुसार सदैव दान करना कर्त्तव्य है, क्योंकि दान करनेवालोंको यमयातना अवलोकन नहीं करना होता ॥ ८१ ॥ दानी लोग बारम्बार दीर्घायु और धनाढ्य होते हैं, विशेष कहने से क्या होता है, अधर्म करनेवालोंको दुर्गति की प्राप्ति होती है ॥ ८२ ॥ धर्महो के आधार से मनुष्य सदा स्वर्गारोहण करते हैं

अतएव बचपनसे ही धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥८३॥ यह सब वृत्तान्त हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, अब और क्या श्रवण करनेकी तुम्हारी इच्छा है ॥ ८४ ॥ इति श्रीमाघ मास माहात्म्य भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥





संग्रहः ॥ ८३ ॥ इतितेकथितंसर्वंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ८४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तर खण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे विकुंडलदूतसंवादे शालिग्रामशिलामहिमा वर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

विकुंडल उवाच ॥ श्रुत्वातववचःसौम्यप्रसन्नंममानसम् ॥ गंगेवतापहंमद्यःपापहानिः सतांयतः ॥ १ ॥ उपकर्तुंप्रियंवक्तुंगुणोनैसर्गिकः सताम् ॥ शीतांशुःक्रियतेयेनशीतलोऽमृत मंडलः ॥ २ ॥ देवदूततततोब्रूहिकारुण्यान्ममपृच्छतः ॥ नरकान्निर्गतिः मद्योभ्रातुर्मेजायते

विकुण्डल बोला—हे सौम्य ! तुम्हारा वचन सुनकर मेरा मन अति प्रसन्न हो गया, आपके वाक्य गंगाजीके समान ताप हरनेवाले हैं, और सज्जनोंके समान ( वार्तालाप ) पापोंका नाश करता है ॥ १ ॥ सज्जनों का यह स्वाभाविक गुण है कि वे प्रियवाक्य बोलते और दूसरोंका उपकार करते हैं, अमृतपूर्ण चन्द्रमा वही है जो सबको शीतल



बहुत शीघ्र उद्धार कैसे हो सकता है ॥ २ ॥ दयाकर मेरा भाई जिससे नरकके बन्धनसे बचकर जब देवदूतन

सात्विक गुण है कि वे प्रियवाक्य बोलते और दूसरोंका उपकार करते हैं, अमृतपूर्ण चन्द्रमा वही है जो सबको आनंद
बहुत शीघ्र उद्धार कैसे हो सकता है ॥ ३ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—उसकी मित्रतारूप रज्जु के बन्धनसे बंधकर जब देवदूतने ये वाक्य सुने तब ज्ञान दृष्टिके द्वारा क्षणमात्र में ध्यान करके यों बोला ॥४॥ देवदूतने कहा—हे वैश्य ! तुमने अपने व्यतीत हुए आठवें जन्ममें जो पुण्य संचय किया है, यदि तुम अपने भ्राता को स्वर्ग में भेजना चाहते हो तो वह उसे प्रदान कर दो ॥ ५ ॥ विकुण्डल बोला—हे दूत ! उस जन्ममें मैं कौन था और वह मेरा संचित पुण्य क्या है और

कथम् ॥३॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ इतितस्यवचः श्रुत्वादेवदूतोजगादह ॥ ज्ञानदृष्टयाक्षणंध्या-त्वातन्मैत्रीरज्जुबंधनः ॥४॥ दूतउवाच ॥ गतेवैश्याष्टमेपुण्यंत्वयाजन्मनिसंचितम् ॥ तद्भ्रा-त्रेदीयतांशीघ्रं नस्यस्वर्गंयदीच्छसि ॥५॥ विकुंडलउवाच ॥ किंतत्पुण्यंकथंजातंकिंजन्माहं-पुराभवम् ॥ तत्सर्वंकथ्यतांदूततच्चदास्यामिसत्वरम् ॥ ६ ॥ दूतउवाच ॥ शृणुवैश्यप्रवक्ष्या-मित्वत्पुण्यंचसहेतुकम् ॥ पुरामधुवनेपुण्येमुनिरासीच्चशाकलिः ॥ ७ ॥ तपोध्ययनसंपन्नस्ते-

मुझसे वह किस प्रकार बना, ये सब वृत्तान्त मेरे प्रति वर्णन करो, मैं तत्काल वह पुण्य उसे प्रदान कर दूंगा ॥ ६ ॥ दूत बोला—सुनो वैश्य ! हम तुम्हारे पुण्यका हेतु ( कारण ) सहित वर्णन करते हैं, पहिले पवित्र मधुवन में एक शाकलि ऋषि थे ॥ ७ ॥ वे तपस्वी और वेदाध्ययन करनेवाले थे, उनका तेज ब्रह्माजी के समान था. रेवती नामकी उनकी स्त्रीसे नवग्रहके समान नव पुत्र उत्पन्न हुए ॥८॥ ध्रुव, शशी, बुध, तार और ज्योतिष्मान ये पाँचों अग्नि होत्री

थे, और गृहस्थधर्म में रमण करते थे ॥ ६ ॥ निर्मोह, जितमाय, ध्यानकाम, तथा गुणातीत ये चारों ऋषिकुमार गृहस्थधर्म से विरक्त थे। १०॥ ये चारोंही संन्यासी थे सुतराम् किसी कर्म को भी करने में इनकी रुचि नहीं थी ये सब एकही ग्राममें निवास करते और संग तथा परिग्रह रहित थे ॥ ११ ॥ इन्होंने शिखा और यज्ञोपवीत का भी परित्याग

जसाब्रह्मणासमः ॥ जज्ञिरेतस्यरेवत्यांनवपुत्राग्रहाइव ॥ ८ ॥ ध्रुवःशशाबुधस्तारोज्योतिष्मा-नत्रपंचमः ॥ अग्निहोत्रप्रियाह्यतेगृहधर्मेषुरेमिरे ॥ ९ ॥ निर्मोहोजितमायश्चध्यानकामो-गुणातिगः ॥ एतेगृहविमुक्तास्तुचत्वारोद्विजसूनवः ॥ १० ॥ चतुर्थाश्रमसंपन्नाः सर्वकर्मसु-निःस्पृहाः ॥ ग्रामैकवासिनः सर्वेनिःसंगानिष्परिग्रहाः ॥ ११ ॥ निःशिखानोपवीताश्चस-मलोष्टाश्मकांचनाः ॥ येनकेनचिदाच्छन्नायेनकेनचिदाशिताः ॥ १२ ॥ सायंगृहास्तथानि-त्यंब्रह्मध्यानपरायणाः ॥ जितनिद्राजिताहारावातशीतसहिष्णवः ॥१३॥ पश्यंतेविष्णुरूपेण-

कर दिया था, इनका मृत्तिका पाषाण और सुवर्ण में समानही ज्ञान था, सुतराम् ये चाहें जिस वस्तु से अपने शरीर का अच्छादन कर लेते, और चाहें, जहाँ बैठ जाते थे ॥ १२ ॥ सन्ध्या के समय अपने घर में आ जाते और नित्यही ब्रह्मका ध्यान करने में तत्पर रहते थे, इन्होंने निद्रा और भोजन को भी नियमबद्ध कर लिया था तथा ये सब पवन

ब्रह्मका ध्यान करने में तत्पर रहते थे, इन्होंने निद्रा और भोजन को भी नियमबद्ध कर लिया था



हो ये सब भूमण्डलके ऊपर विचरते थे ॥१४॥ ये योगीजन किंचितमात्र भी क्रियाका आचरण नहीं करते थे, इनका ज्ञान अतिशय दृढ़ था अतएव इनको किसी विषयमें भी सन्देह नहीं होता था, एवं च ये लोग सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मके विचार ( अनुशीलन ) करनेमें बड़ेही निपुण थे ॥ १५ ॥ इस प्रकार वे तुम्हारे आठवें जन्ममें स्त्री पुत्रादि



जगत्सर्वंचराचरम् ॥ चरंतिलीलयापृथ्वींतेन्योन्यंमौनमास्थिताः ॥ १४ ॥ नकुर्वंतिक्रियां- किंचिदणुमात्रांहियोगिनः ॥ दृढज्ञानाअसंदेहाब्रह्मविचारविशारदाः ॥ १५ ॥ एवंतेतवविप्रस्य- पूर्वमष्टमजन्मनि ॥ तिष्ठतोमत्स्यदेशेषुपुत्रदारकुटुम्बिनः ॥१६॥ गेहंतावकमाजग्मुर्मध्याह्ने- क्षुत्पिपासिताः । वैश्वदेवोत्तरेकालेत्वयादृष्टागृहांगणे ॥ १७ ॥ सगद्गदंसाश्रुनेत्रंसहर्षंचससंभ्र- मम् ॥ दण्डवत्प्रणिपातेनबहुमानपुरःसरम् ॥१८॥ प्रणम्य चरणौस्पृष्ट्वाकृत्वापाणिपुटांज- लिम् ॥ तदाभिनंदिताःसर्वेत्वयासूनृतयागिरा ॥१९॥ अद्यमेसफलंजन्मसफलंजीवितंमम ॥

कुटुम्बी के अतिथि हुए, उस समय मत्स्यदेशमें तुम्हारी स्थिति थी ॥ १६ ॥ मध्याह्नसमयमें क्षुधा और तृषासे व्यथित हो वे तुम्हारे घर आये, ओर वैश्यदेवसे निवृत्त होनेके अनन्तर घरके आँगनमें तुमने उन्हें देखा ॥१७॥ तब नेत्रोंमें आँसू भर कर आनन्दपूर्वक गद्गद हो संभ्रमसे प्रणाम कर अतिशय आदर सत्कारसहित ॥ १८ ॥ प्रणाम करके और

उनके चरणोंका स्पर्श करके दोनों हाथ जोड़कर मनोहर वाणी से तुमने उनका सम्मान किया ॥ १९ ॥ आज मेरा जन्म और जीवन सफल है, आज मेरे ऊपर विष्णुभगवान् प्रसन्न हुए, और आजही मैं सनाथ हुआ जो आपने मुझे पवित्र किया ॥ २० ॥ मुझे, मेरे घर, स्त्री, भ्राता, पिता, गौएँ शास्त्रका श्रवण और धन सभीको धन्य है ॥ २१ ॥ इसका कारण यह है कि, दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंका नाश करनेवाले आपके चरणोंका मुझे दर्शन हुआ,





अद्य विष्णुः प्रसन्नोभूत्सनाथोस्म्यद्य पावितः ॥२०॥ धन्योस्मिममेगृहं धन्यंधन्यामेद्य कुटुंबिनी ॥
ममाद्यपितरौधन्यौधन्यागावः श्रुतंधनम् ॥२१॥ यद्दृष्टौभवतांपादौतापत्रयहरौमया ॥ भव-
तांदर्शनंयस्माद्धन्यंसर्वंहरेरिव ॥२२॥ एवंसंपूज्यतेषांतु त्वरणक्षालनंत्वया ॥ धृतंमूर्ध्निचपा-
दोदः श्रद्धयापरयातदा ॥२३॥ यतिपादोदकंवैश्यहंतिपापंपुराकृतम् ॥ सप्तजन्मार्जितंसद्यः
श्रद्धयापरयाधृतम् ॥२४॥ गंधपुष्पाक्षतैर्धूपैर्नीराजनपुरःसरम् ॥ संपूज्यसंस्कृतैरन्नैर्भोजि-

क्योंकि आपका दर्शन ईश्वरके दर्शन के समान सौभाग्यशालियोंको ही होता है ॥२२॥ इस प्रकार उनकी पूजा करके तुमने उनके चरण पखारे और बड़ी श्रद्धाके साथ चरणोदकको अपने शिरपर धारण किया ॥ २३ ॥ हे वैश्य ! यदि संन्यासियों का चरणोदक परम श्रद्धा पूर्वक शिरके ऊपर धारण किया जाय तो वह सात जन्म के संचित पापों का नाश कर देता है ॥ २४ ॥ फिर तुमने गन्ध, पुष्प, अक्षत ( चावल ) धूप और नीराजन आदि से उनकी पूजा ...





... संन्यासियोंको सन्तुष्ट किया ॥ २५ ॥ उक्त परमहंसों ने तृप्त होकर रात्रिमें

करके सुन्दर पक्वान्न का भोजन कराके सन्यासियोंको सन्तुष्ट किया ॥ २५ ॥ उक्त परमहंसों ने तृप्त होकर रात्रिमें तुम्हारे ही घर विश्राम किया और समस्त ज्योतियोंके भी ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करते रहे ॥ २६ ॥ हे वैश्य ! उनका अतिथिसत्कार करने से तुम्हें जिस पुण्यकी प्राप्ति हुई, उसे मैं सहस्रों मुख से भी वर्णन नहीं कर

तार्यतयस्त्वया ॥२५॥ तृप्ताः परमहंसास्ते विश्रांता मंदिरे निशि ॥ ध्यायन्तश्च परं ब्रह्म ज्योति-र्ज्योतिषां वरम् ॥२६॥ तेषामातिथ्यजं पुण्यं जातं ते यादृशां नर ॥ न तद्वक्त्रसहस्रेण वक्तुं शक्यो-ऽस्म्यहं खलु ॥२७॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥२८॥ ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥२९॥ अत एव हि पूज्यास्ते यस्माच्छ्रेष्ठा जगत्त्रये ॥ यत्संगतिर्विशां श्रेष्ठ महापात-

सकता ॥ २७ ॥ सृष्टिमें प्राणी, प्राणियों में बुद्धिमान्, बुद्धिमानोंमें मनुष्य और मनुष्योंमें ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ कहा गया है ॥ २८ ॥ ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें कृतबुद्धि उनमें भी क्रिया करनेवाले और क्रिया करनेवालोंमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ क्योंकि वे तीनों लोकों में श्रेष्ठ हैं अतएव उनका पूजन करना कर्त्तव्य है । हे परमश्रेष्ठ ! उनकी संगति महापातकों को नाश करने वाली है ॥ ३० ॥ सतोगुण का आश्रय करनेवाले ब्रह्मवादी महात्मा

माघ मा.

११०

गृहस्थियों के घर में विश्रान्त होकर जन्म भरके पापोंको क्षणभर में नष्ट कर देते हैं ॥ ३१ ॥ सो पहिले आठवें जन्ममें संचय किये हुए इसी पुण्यको तुम अपने भ्राताके निमित्त प्रदान करदो, तब वह नरक से मुक्त हो जायगा ॥ ३२ ॥ दूतके ऐसे वचन सुन उसने अपने मन में प्रसन्न हो वह पुण्य अपने भ्राता को दे दिया; तब उसका भी

कनाशिनी ॥ ३० ॥ विश्रान्तागृहिणोगेहेसत्त्वस्थाब्रह्मवादिनः ॥ आजन्मसंचितंपापंनाश-यातिक्षणेनवै ॥ ३१ ॥ इतितेसंचितंपुण्यमष्टमेपूर्वजन्मनि ॥ स्वभ्रात्रेदेहितत्पुण्यंनरकाद्येन-मुच्यते ॥ ३२ ॥ इतिदूतवचःश्रुत्वाददौपुण्यंससत्वरम् ॥ हृष्टेनचेतसाभ्रात्रेनिरयात्सोऽपि-निर्गतः ॥ ३३ ॥ देवैस्तौपुष्पवर्षेणपूजितौचदिवंगतौ ॥ ताभ्यांचपूजितःसम्यग्गतोदूतायथा-गतम् ॥३४॥ अखिलजनसुबोधंदेवदूतस्यवाक्यंनिगमवचनतुल्यंवैश्यपुत्रोनिशम्य ॥ स्वकृत-

नरक से उद्धार हो गया ॥ ३३ ॥ पुष्प वृष्टिके द्वारा देवताओं से पूजित होकर वे दोनों भ्राता स्वर्ग को चले गये, एवं वह दूत भी उन दोनोंसे पूजित होकर जैसे आया था वैसे ही चला गया ॥ ३४ ॥ सब मनुष्यों के लिये ज्ञानप्रदान करनेवाला वेदवाक्य के समान देवदूत के वाक्यों को सुनकर वैश्यपुत्र ने अपना पुण्य भ्राता को दिया.

भा. टी. अ१०

११०

प्रायणदाता करनेवाला वेदवाक्य के समान देवदत्त के वाक्यों को सुनकर वैश्यपुत्र ने अपना पुण्य आधा का दिया

और उसको तारकर उसके साथही आपभी स्वर्गलोक को चला गया ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इस इतिहास को जो पढ़ेगा





सुकृतदानाद्भ्रातरंतारयित्वानरपतिवरलोकंतेनसार्धंजगाम ॥ ३५ ॥ इतिहासमिमंराजन्यः पठेच्छृणुयादपि ॥ सगोसहस्रदानस्यविपापोलभतेफलम् ॥ ३६॥ इति श्रीपद्मपुराण उत्तरखंडेमाघमासमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादेश्रीकुण्डलाविकुण्डलयोः स्वर्गगमनंनामदशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथवा सुनेगा, वह निष्पाप होकर सहस्र गोदान का फल पावेगा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमाघमाहात्म्य भाषाटीकायां-दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

—:०:—

कार्तवीर्यउवाच ॥ हेतुनाकेनविप्रर्षे माघस्नानेप्रभावोद्भुतः ॥ प्रभावोवर्ण्यतेनूनंतन्मेकथय सुव्रत ॥ १॥ गतपापोयदेकेनद्वितीयेनदिवंगतः । वैश्योऽसौमाघपुण्येनब्रूहिमेतत्कुतूहलम् ॥२॥

कार्त्तवीर्य बोले—श्रेष्ठव्रत का आचारण करनेवाले हे ब्रह्मर्षि ! इसका क्या कारण है माघस्नान करने का ऐसा क्या अद्भुत प्रभाव है, यह भली प्रकार वर्णन करिये ॥ १ ॥ जो एक माघस्नान करने से सब पापों का विनाश हो गया, और द्वितीय माघस्नान से स्वर्ग की प्राप्त हुई, इस कौतूहलका मेरे प्रति सम्यक् वर्णन करिये ॥२॥

दत्तात्रेयजी बोले हे पुरुषोत्तम ! जल स्वभावही से पवित्र, निर्मल, स्वच्छ, पाण्डुवर्ण, मल और दाह का नाश करने वाला और द्रावक है ॥ ३ ॥ सब भूतों को तारनेवाला पोषण करनेवाला और जीवन स्वरूप है, और जल को सब वेदों में नारायणस्वरूप वर्णन किया गया है ॥ ४ ॥ जैसे सब ग्रहोंमें सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा उत्तम है इसी



दत्तात्रेयउवाच ॥ निसर्गात्सलिलंमेध्यंनिर्मलंशुचिपांडुरम् ॥ मलहंपुरुषव्याघ्रद्रावकंदाहनाशनम् ॥ ३ ॥ तारकंसर्वभूतानांपोषणंजीवनंस्मृतम् ॥ आपोनारायणोदेवःसर्ववेदेषुपठ्यते ॥ ४ ॥ ग्रहाणांचयथासूर्योनक्षत्राणांतथाशशी ॥ मासानांचतथामाघःश्रेष्ठःसर्वेषुकर्मसु ॥ ५ ॥ मकरस्थेरवौमाघेप्रातःकालेतथाऽमले ॥ गोष्पदेऽपिजलेस्नानंस्वर्गदंपापिनामपि ॥ ६ ॥ योगोयं दुर्लभोराजंस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ अस्मिन्योगेत्वशक्तोपिस्नायाद्यदिदिनत्रयम् ॥ ७ ॥ दद्यात्किं-

प्रकार संपूर्ण शुभकर्म करने के लिये माघमास सबसे श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ माघके महीने में जब सूर्य मकर राशि के ऊपर स्थित हों तब प्रभात समय गौ के खुर मात्र भी निर्मल जल में स्नान करने से पापियों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! चराचर त्रिलोकी में यह योग बड़ा दुर्लभ है, जो आसक्त है वह मनुष्य भी इस योग में केवल तीनही दिन स्नान करले ॥७॥ और अशक्त व्यक्तिका दरिद्र दूर करनेकी कामनासे यत्किंचित् भी दान करना कर्तव्य है.





तीन माघमास में स्नान करने से धनियोंका दीर्घजीवन लाभ होता है ॥ ८ ॥ जब सूर्य मकरराशि के ऊपर उपस्थित

तीनही दिन स्नान करले ॥७॥ और अशक्त व्यक्तिका दारिद्र दूर करनेकी कामनासे ...



तीन माघमास में स्नान करने से धनियोंको दीर्घजीवन लाभ होता है ॥ ८ ॥ जब सूर्य मकरराशि के ऊपर उपस्थित होते हैं, तब पाँच सात वा दो ही दिनमें चन्द्रमा के समान पुण्यकालकी वृद्धि होती है कारण कि मकरमास अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंको पुण्यप्रदान करनेवाला है ॥ ९ ॥ मकरमासकी सबही तिथियें ऐसी हैं कि—उनमें स्नान,



त्रिदशक्तादिदरिद्राभाववांछया ॥ त्रिस्नानेनापिमाघस्यधनिनोदीर्घजीविनः ॥ ८ ॥ पंचवा-सप्तवाद्व्यहिचन्द्रवद्वर्धतेफलम् ॥ संप्राप्तेमकरादित्येपुण्येपुण्यप्रदेनृणाम् ॥ ९ ॥ माकर्यस्तिथयः सर्वाःस्नानदानादिकर्मणाम् । कर्तारंपापहंत्र्योह्यक्षयंशाश्वतंपदम् ॥ १० ॥ तस्मान्माघेबहिः स्नायादात्मनोहित काम्यया ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामिमाघस्नानविधिंपरम् ॥ ११ ॥ कर्तव्योनियमःकश्चिद्व्रतरूपोनरोत्तमैः ॥ फलातिशयहेतोर्वै किंचिद्भोज्यंत्यजेद्बुधः ॥ १२ ॥

दान आदि कर्म करनेवाले व्यक्तियोंके पापोंका विनाश होता है और उन्हें अक्षय मोक्षपदकी प्राप्ति होती है ॥१०॥ सुतराम् जो मनुष्य अपने हितकी कामना करता हो, उसे चाहिये कि माघमासमें नगरसे बाहर स्नान करे, अब इसके अनन्तर हम माघस्नान करनेकी विधिका वर्णन करते हैं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ मनुष्योंको कोई न कोई व्रतरूप नियम अवश्य धारण करना चाहिये, एवम् प्रभूतफल प्राप्त होनेके निमित्त बुद्धिमान्को कुछ न कुछ भोजन का पदार्थ त्याग

देना चाहिये ॥ १२ ॥ विचारशीलको चाहिये कि, भूमिके ऊपर शयन करे, घृत और तिलोंका हवन करे अथच सनातन श्रीविष्णुभगवान की तीनों समय अर्चना करनी कर्तव्य है ॥ १३ ॥ देवाधिदेव माधव (श्रीविष्णु) भगवान्के निमित्त अखण्डदीपका दान करना चाहिये—इन्धन, कम्बल, वस्त्र, जूते, कुंकुम और घृत ॥ १४ ॥



भूमौशयीतहोतव्यमाज्यंतिलविमिश्रितम् ॥ त्रिकालंचार्चयेद्विष्णुंवासुदेवंसनातनम् ॥ १३ ॥ दातव्योदीपकोऽखण्डोदेवमुद्दिश्यमाधवम् ॥ इंधनंकंबलंवस्त्रमुपानत्कुंकुमंघृतम् ॥ १४ ॥ तैलंकार्पासकोष्ठंचतूलींतूलवटींपटीम् ॥ अन्नंचैवयथाशक्तिदेयंमाघेनराधिप ॥ १५ ॥ सुवर्णरत्तिकामात्रंदद्याद्धदविदत्तथा ॥ तद्दानमक्षयंराजन्समुद्रइवसर्वदा ॥ १६ ॥ परस्याग्निनसेवेतत्यजेच्चैवप्रातिग्रहम् ॥ माघांतेभोजयेद्विप्रान्यथाशक्तिनराधिप ॥१७॥ देयाचदक्षिणातेभ्य-

तैल, कपास, कोठी, तोसक, कनात और पर्दे और अन्न ये सब हे राजन्! यथाशक्ति दान करना चाहिये ॥१५॥ हे राजन्! माघमासमें रत्तीभर सुवर्णका दान करनाभी समुद्रके समान अक्षय होता है ॥ १६ ॥ हे नरनाथ! दूसरेकी अग्निका सेवन न करै, और दान ...

हे राजन् ! माघमासमें रत्तीभर सुवर्णका दान करनाभी समुद्रके समान अक्षय होता है ॥ १६ ॥ हे नरनाथ ! दूसरेकी ११४
अग्निका सेवन न करै, और दान लेने का परित्याग करदे, और ...





अपने कल्याणकी कामनासे उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये, तथा एकादशीकी विधिसे माघस्नानका उद्यापन करना चाहिये ॥ १८ ॥ स्वर्गप्राप्ति, अनन्त पुण्यका लाभ, और श्रीविष्णुभगवान्की प्रसन्नताके निमित्त श्रद्धापूर्वक उक्त कर्म करना कर्तव्य है ॥ १९ ॥ हे गोविन्द ! अविनाशी माधव ! माघमासमें मकरराशिके ऊपर

आत्मनः श्रेयइच्छता ॥ एकादशीविधानेनमाघस्योद्यापनंतथा ॥ १८ ॥ कर्तव्यंश्रद्धयानेन-ह्यक्षय्यस्वर्गवांछया ॥ अनन्तपुण्यावाप्त्यर्थंविष्णुसंप्रीतिहेतवे ॥१९॥ मकरस्थेरवौमाघेगोविंदा-च्युतमाधव ॥ स्नानेनानेनमोदेवयथोक्तफलदोभव ॥ २० ॥ इतिमंत्रंसमुच्चार्यस्नायान्मौनी-समाहितः ॥ वासुदेवंहरिंकृष्णंमाधवंचस्मरेत्पुनः ॥२१॥ गृहेऽपिसजलंकुंभंवायुनानिशिपांडि-तम् ॥ तत्स्नानंतीर्थसदृशंसर्वकामफलप्रदम् ॥२२॥ तत्रव्रतेप्रदातव्यंसान्नंचोपस्करान्वितम् ॥

सूर्य्य के उपस्थित होनेपर जो हम स्नान करते हैं इसका यथोक्त फल हमें प्रदान करिये ॥ २० ॥ इस मन्त्रका उच्चारणकरके मौनधारणपूर्वक चित्तको एकाग्र करके स्नान करना चाहिये और फिर वासुदेव हरि, कृष्ण तथा माधवका स्मरण करै ॥ २१ ॥ जलपूर्ण घटको रात्रिमें हवामें रखकर उसके जलसे घरही में स्नान किया जाय तो वह स्नानभी तीर्थही के समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ २२ ॥ फिर सब उपस्करयसहित व्रतकरके

अन्नदान करना चाहिये, इस व्रतके प्रभावसे मनुष्ययको नरकमें नहीं जाना होता है ॥ २३ ॥ जो मनुष्य मकरके सूर्य्यमें घर परही तप्त जलसे स्नान करते हैं, उनको छः वर्ष स्नान करनेका फल उपलब्ध होता है ॥ २४ ॥ और बावड़ी आदिके ऊपर नगरके बाहर स्नान करना बारह वर्ष स्नान करनेका फल प्रदान करता है, तालाबमें स्नान करनेसे

तत्स्नानस्यप्रभावेणनरोननिरयंव्रजेत् ॥ २३ ॥ तप्तेनवारिणास्नानं यद्गृहेक्रियते नरैः ॥
षडब्दफलदंतद्धिमकरस्थेदिवाकरे ॥ २४ ॥ बहिस्नानंतुवाप्यादौद्वादशाब्दफलंस्मृतम् ॥
तडागाद्विगुणंराजन्नद्यांचैवचतुर्गुणम् ॥२५॥ शतधादेवखातेषुशतधातुमहानदी ॥ शतंचतु-
र्गुणंराजन्महानद्याश्चसंगमे ॥२६॥ सहस्रगुणितंसर्वंतत्फलंमकरेरवौ ॥ गंगायांस्नानमात्रेणल-
भतेमानवोनृप ॥ २७ ॥ गंगायांयेवगाहंतिमाघमासेनृपोत्तम ॥ चतुर्युगसहस्रंतुनपतन्ति-

दूना और नदीमें स्नान करनेसे चौगुना फल मिलता है ॥ २५ ॥ देवसरोवरों और महानदियोंमें सौगुना एवं हे राजन् ! महानदी के संगममें स्नान करनेसे चार सौगुना फल प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ अथवा हे राजन् ! मकरके सूर्य्यमें गंगाजीमें स्नानमात्र करनेसे इन सबसे सहस्र गुणा अधिक फल प्राप्त होता है ॥२७॥ हे नरनाथ ! जो व्यक्ति माघमासमें गंगास्नान करते हैं वो [illegible] नहीं होते ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य माघमें गंगास्नान करता है, मानो वह [illegible] दान करता है ॥ २९ ॥ माघमासमें

सूर्यमें गंगाजीमें स्नानमात्र करनेसे इन सबसे सहस्र गुणा अधिक फल प्राप्त होता है ॥२७॥ हे नरनाथ! जो व्यक्ति

माघमासमें गंगास्नान करते हैं वो चार सहस्र युगपर्यन्त स्वर्गसे निवर्तित नहीं होते ॥ २८ ॥ हे राजन्!

जो मनुष्य माघमें गंगास्नान करता है, मानों वह प्रति दिन सहस्र परिमित सुवर्ण दान करता है ॥ २९ ॥ माघमासमें गंगास्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, गंगा यमुनाके संगममें स्नान करनेसे उससे सौगुणा अधिक फल प्राप्त होता है, ऐसा मुनियोंने वर्णन किया है ॥ ३० ॥ हे राजन्! प्रजाके हितमें तत्पर होकर उनके प्रभूत पापराशिका





सुरालयात् ॥ २८ ॥ दिनेदिनेसहस्रंतुसुवर्णानांविशांपते ॥ तेनदत्तंनुगंगायांयोमाघेस्नाति- मानवः ॥ २९ ॥ शतेनगुणितंमाघेसहस्रंराजसत्तम ॥ निर्दिष्टमृषिभिःस्नानंगंगायामुनसं- गमे ॥ ३० ॥ पापौघभूरिभारस्यदाहार्थंत्वप्रजापतिः ॥ प्रयागंविदधेभूपप्रजानांत्वहिते- स्थितः ॥३१॥ शृणुस्थानमिदंसम्यक्सितासितजलंकिल ॥ पापरूपपशूनांत्वब्रह्मणाविहितंपुरा ॥३२॥ सितासितजलेमज्जेदपिपापशतान्वितः ॥ मकरस्थेरवौमाघेनैवगर्भेषुमज्जति ॥३३॥

दाह करनेके लिये ब्रह्माजीने प्रयागराज की सृष्टि की थी ॥ ३१ ॥ इस स्थान का सम्यक्तया वर्णन सुनो यहाँके श्वेत और कृष्णवर्ण जलको ब्रह्माजीने पापरूप पशुओंको नाश करनेके लिये रचा था ॥ ३२ ॥ सैकड़ों पापों का आचरण करनेवाला मनुष्य इस श्वेतकृष्ण जलमें माघमास और मकरके सूर्यमें स्नान करै तो उसे गर्भमें निमग्न नहीं होना होता ॥ ३३ ॥ जो श्वेत और कृष्ण जलकी धाराको कि जिसके गर्भमें सरस्वती हैं, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने

उसीको ब्रह्मलोकका मार्ग निर्माण किया है ॥ ३४ ॥ हे नरपाल ! वैष्णवी माया बड़ी दुर्मदा है, देवता भी उससे बच नहीं सकते, परन्तु माघमासमें प्रयागके बीच वह भस्म हो जाती है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य माघमासमें प्रयागमें स्नान करते हैं वे तेजोमयलोकोंमें अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान्‌में लीन हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

सितासितातुयाधारासरस्वत्याविगर्भिता ॥ तन्मार्गंब्रह्मलोकस्यसृष्टिकर्ताससर्जवै ॥ ३४ ॥ दुर्मदावैष्णवीमायादेवैरपि दुरत्यजा ॥ प्रयागेदह्यतेसातुमाघेमासिनराधिप ॥ ३५ ॥ तेजोम- येषुलोकेषुभुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ पश्चाच्चक्रिणिलीयंतेप्रयागेमाघमज्जनात् ॥ ३६ ॥ उपस्पृ- शतियोमाघेमकरार्केसितासिते ॥ ननत्पुण्यंचसंख्यातुंचित्रगुप्तोपिवेत्त्यलम् ॥ ३७ ॥ संवत्सरश- तंसाग्रंनिराहारस्ययत्फलम् ॥ प्रयागेमाघमासेतुत्र्यहःस्नानस्यतत्फलम् ॥ ३८ ॥ स्वर्णभारस-

अथवा माघमास और मकरके सूर्य्यमें जो प्राणी प्रयागमें गंगा यमुना का स्पर्श करता है, उसके पुण्यों की संख्या करनेके ज्ञानको तो चित्रगुप्त भी पूर्णतया नहीं रखते हैं ॥ ३७ ॥ एक वर्षपर्य्यन्त निराहार व्रत धारण करनेका जो कुछ फल होता है, माघमासमें प्रयागमें केवल तीनही दिन स्नान करनेसे उस फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३८ ॥
प्रतिदिन स्नान करनेसे भी उसी फलकी प्राप्ति होती है ... माघमासमें गंगा यमुनाके संगममें

कुछ फल होता है, माघमासमें प्रयागमें केवल तीनही दिन स्नान करनेसे उस फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३८ ॥
प्रतिदिन स्नान करनेसे भी उसी फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! माघमासमें गंगा यमुनाके संगममें स्नान करनेसे सहस्र राजसूययज्ञके बिलकुल फलकी प्राप्ति होती है ॥ ४० ॥ हे नृपसत्तम ! भूमिके ऊपर जितने तीर्थ और सातपुरी हैं वे सब माघमासमें त्रिवेणीजीमें स्नान करनेको आती हैं ॥ ४१ ॥ पापियोंके संसर्गजनित



ह्स्रेणकुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ यत्फलंलभतेमाघेवेण्याः स्नानाद्दिनेदिने ॥ ३९ ॥ राजसूयसहस्र-
स्यराजन्नविकलंफलम् ॥ सितासितेतुमाघेचस्नानानांभवतिध्रुवम् ॥४०॥ पृथिव्यांयानितीर्था-
निपुर्यःसप्तचयाःपुनः ॥ स्नातुमायांतुवैमाघेमासिसर्वेनृपोत्तम ॥ ४१ ॥ सर्वतीर्थानिकृष्णा-
निपापिनांसंगदोषतः ॥ भवंतिशुक्लवर्णानिप्रयागेमाघमज्जनात् ॥ ४२ ॥ आकल्पजन्मभिः
पापंनरस्यविलयंव्रजेत् ॥ प्रयागमाघमासेतुत्र्यहःस्नानस्यनिश्चितम् ॥ ४३ ॥ प्रयागेमाघमासे-
यस्त्र्यहंस्नातिचमानवः ॥ पापंत्यक्त्वादिवंयातिजीर्णांत्वचमिवोरगः ॥ ४४ ॥ कुरुक्षेत्रसमागं-

दोषसे सब तीर्थोंका वर्ण कृष्ण हो जाता है, फिर माघमासमें प्रयागमें स्नान करनेहीसे उन्हें शुक्लवर्णकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य प्रयागराजमें तीन दिन भी स्नान कर लेता है, उसके कल्पभरके जन्मोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे सर्प अपनी पुरानी त्वचा ( केंचुली ) को छोड़ देता है, उसी प्रकार माघमासमें तीन दिन

स्नान करनेवाला मनुष्य पापोंका परित्याग करके स्वर्गको चला जाता है ॥ ४४ ॥ गंगाजीमें चाहे जहाँ स्नान किया जाय, उसको कुरुक्षेत्रके समान पुण्यप्रद माना गया है, और काशीमें उत्तरवाहिनी गंगा उसकी अपेक्षा शतगुणा अधिक हैं ॥ ४५ ॥ और यमुनाके संगममें गंगाजी काशीकी अपेक्षा शतगुणा अधिक हैं, और पश्चिमवाहिनी

गायत्रकुत्रावगाहिता ॥ तस्माच्छतगुणागंगाकाश्यामुत्तरवाहिनी ॥ ४५ ॥ काश्याः शत-
गुणाप्रोक्तागंगायामुनसंगमे ॥ सासहस्रगुणातासांभवेत्पश्चिमवाहिनी ॥ ४६ ॥ याराजन्द-
र्शनादेवब्रह्महत्यापहारिणी ॥ यापश्चाद्वाहिनीगंगाकालिन्द्यासहसंगता ॥४७॥ हन्तिकोटिकृतं
पापंसामाघेनृपदुर्लभा ॥ यत्कथ्यतेऽमृतंराजन्सावेणीभुविकीर्तिता ॥ ४८ ॥ तस्यांमाघेमुहूर्तं-
तुदेवानामपिदुर्लभम् ॥ ब्रह्माविष्णुर्महादेवोरुद्रादित्यमरुद्गणाः ॥४९॥ गंधर्वालोकपालाश्च-

गंगा उन सबसे सहस्र गुणा अधिक फल देनेवाली हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! उसके केवल दर्शनमात्रही करनेसे ब्रह्महत्याका अपहरण होता है, जो पश्चिमवाहिनी गंगा यमुनामें मिली हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! उस दुर्लभकी यदि माघमासमें प्राप्ति हो जाय तो करोड़ों पापों का नाश हो जाता है हे राजन् ! भूमिके ऊपर त्रिवेणीही को अमृत

माघ मा. १२१

महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, ।। ४९ ।। गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किन्नर, सर्प, अणिमा आदि गुणों सहित सिद्धगण, एवं अन्यान्य तत्त्ववादी ।। ५० ।। ब्रह्मा, पार्वती, लक्ष्मी, इन्द्राणी, मेना, अदिति और दिति हे राजन् ! समस्त देव पत्नियें तथा नाग पत्नियें ।। ५१ ।। घृताची, मेनका, रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा इत्यादि अप्सराओं के समुदाय और

यक्षकिन्नरपन्नगाः ।। अणिमादिगुणैःसिद्धायेचान्येतत्त्ववादिनः ।। ५० ।। ब्रह्माणीपार्वतीलक्ष्मीःशचीमेनादितीदितिः ।। सर्वास्ता देवपत्न्यश्चतथानागाङ्गनानृप ।। ५१ ।। घृताचीमेनकारंभाउर्वशीचतिलोत्तमा ।। गणाह्यप्सरसांसर्वेपितृणांचगणस्तथा ।। ५२ ।। स्नातुमायान्तितेसर्वेमाघेवेण्यांनराधिप ।। कृतेयुगेस्वरूपेणकलौप्रच्छन्नरूपिणः ।। ५३ ।। प्रयागेमाघमासेतु त्र्यहःस्नानस्य यत्फलम् ।। नाश्वमेधसहस्रेणतत्फलंलभतेभुवि ।। ५४ ।। त्र्यहःस्नानफलंप्राप्यपुराकांचनमालिनी ।। राक्षसायददौभूपतेनमुक्तःसपापकृत ।। ५५ ।। इति श्रीपद्मपुराणे-

११

पितृगण ।। ५२ ।। हे राजन् ! सतयुग में स्वरूप धारणकर और कलियुग में प्रच्छन्न रूपसे उक्त सब व्यक्ति माघमासमें त्रिवेणी में स्नान करने को आते हैं ।। ५३ ।। माघमास में केवल तीन ही दिन स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, भूमिके ऊपर सहस्र अश्वमेध यज्ञ करने से भी वह फल उपलब्ध नहीं हो सकता है ।। ५४ ।। प्रथम

भा. टी. अ. ११ १२१

कांचनमालिनीने तीन दिन के स्नानजनित फलको पाकर राक्षस को दे दिया था, हे राजन् ! इसी से उस पापी की मुक्ति हुई थी ॥ ५५ ॥ इति माघमास माहात्म्ये भाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

कार्त्तवीर्य बोला—हे भगवन् वह राक्षस कौन था, वह कांचनमालिनी कौन थी, उसने अपना धर्म किस प्रकार प्रदान किया और उस राक्षस की सद्गति किस विधि से हुई थी ॥ १ ॥ हे अत्रिपुत्र ! हे भास्कर !! हे

उत्तरखंडे माघमासमाहात्म्ये प्रयागस्नानप्रशंसानामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

कार्तवीर्य उवाच ॥ भगवन्राक्षसःकोसौसाकाकांचनमालिनी ॥ कथंसाप्रददौधर्मंकथंवा तस्यसद्गतिः ॥ १ ॥ एतत्कथययोगीन्द्रअत्रिसंतानभास्कर ॥ यदित्वंमन्यसेश्राव्यंपरंकौतू- हलंहिमे ॥२॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ शृणुराजन्विचित्रंत्वमितिहासंपुरातनम् ॥ यस्य स्मरण- मात्रेणवाजपेयफलंलभेत् ॥ ३ ॥ अप्सरारूपसंपन्नानाम्नाकांचनमालिनी ॥ प्रयागेमाघमासे-

योगीन्द्र !!! यदि आप सुनाना चाहते हैं तो यह सब वृत्तान्त मेरे प्रति वर्णन करिये क्योंकि मुझे इसके श्रवण करने का परम कौतूहल है ॥ २ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन् ! तुम प्राचीन विचित्र इतिहास को श्रवण करो, उसका केवल स्मरणमात्रही करने से वाजपेययज्ञके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ कांचनमालिनी नामकी एक परमरूपवती





पर्वतके समान विस्तृत देहधारी एक

का परम कौतूहल है ॥ २ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन्! तुम ...
केवल स्मरणमात्रही करने से वाजपेययज्ञके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ कांचनमालिनी नामकी एक परमरूपवती





अप्सरा माघमासमें प्रयागराजमें स्नान कर शिवमन्दिरको जा रही थी ॥ ४ ॥ पर्वतके समान विस्तृत देहधारी एक वृद्ध राक्षस गिरिराजकी गुफा में बैठा था उसने उक्त आकाशचारिणी अप्सरा को अवलोकन किया ॥ ५ ॥ उस तेजस्विनीका तेज सुवर्ण-कान्ति के समान था, सुन्दर और नेत्र बड़े २ थे, उसका मुख चन्द्रमाके समान मनोहर, केश

सास्नात्वायातिहरालयम् ॥ ४ ॥ निकुंजेगिरिराजस्यस्थितागिरिस्वरूपिणा ॥ दृष्टागगनमारू-ढातेनवृद्धेनराक्षसा ॥ ५ ॥ तेजस्विनीसुहेमाभासुश्रोणीदीर्घलोचना ॥ चंद्राननसुकेशीच-पीनोन्नतपयोधरा ॥ ६ ॥ तांदृष्ट्वारूपसंपन्नामुवाचराक्षसस्तदा ॥ कात्वंकमलपत्राक्षिकुतआ-गम्यतेत्वया ॥ ७ ॥ आर्द्रंचवसनंकस्मात्सार्द्रातेकबरीकुतः ॥ कुत्रआगम्यतेभीरुकुतस्तेखगी-गतिः ॥ ८ ॥ केनपुण्येनवाभद्रेतवतेजोमयंवपुः ॥ अतीवरूपसंपन्नंसंभूतं च मनोहरम् ॥९॥

सुन्दर एवं स्तनके कुच पुष्ट तथा उन्नत थे ॥ ६ ॥ उस सुन्दर रूपवतीको देखकर वह राक्षस कहने लगा, हे कमल नयनि ! तुम कौन हो ? और कहाँ से आ रही हो ॥ ७ ॥ तुम्हारे वस्त्र और केशपाश गीले क्यों हैं ? हे भीरु ! तुम कहाँसे आ रही हो ? अथच तुम्हारे आकाशमार्ग से यात्रा करनेका क्या प्रयोजन है ? ॥८॥ हे सुभद्रे ! तुमने ऐसे किस पुण्यका आचरण किया है कि जिसके प्रभावसे तुम्हारा देह तेजोमय हो गया है और तुम मनोहर रूपसम्पन्न हो गई हो ॥९॥

हे सुनयनी ! तुम्हारे वस्त्रोंमेंसे एक बिन्दु मेरे मस्तक के ऊपर निपतित हुआ उसीके प्रभावसे सदाका मेरा क्रूर मन क्षणभरमें शान्त हो गया ॥१०॥ इस जल की महिमा वर्णन करने की किसीकी भी शक्ति नहीं है, तुम मुझे शीलवती प्रतीत होती हो, सुतराम् तुम्हारी आकृति निर्गुण नहीं हो सकती है ॥ ११ ॥ अप्सरा बोली—सुनो राक्षस ! मैं

आघ मा. १२४

त्वद्वस्त्रबिंदुपातेनमममूर्ध्निसुलोचने ॥ क्षणेनह्यगमच्छांतिंक्रूरंमेमनसंसदा ॥ १० ॥ नीरस्य-
महिमाकोयमेनद्व्याख्यातुमर्हति ॥ त्वंमेशीलवतीभासिनाकृतिर्निर्गुणाभवेत् ॥ ११ ॥ अप्स-
रोवाच ॥ श्रूयतामप्सराश्चाहंभो रक्षःकामरूपिणी ॥ प्रयागतश्चागताहंनाम्नाकांचनमा-
लिनी ॥ १२ ॥ आर्द्रंपरिकरमेऽनःसुस्नाताहंसितासिते ॥ गंतव्यंतुमयारक्षःकैलासेतुन-
गोत्तमे ॥ १३ ॥ तत्रास्तेपार्वतीनाथः सुरासुरसुपूजितः ॥ वेणीवारिप्रभावेण रक्षस्तेक्रूरता-
गता ॥ १४ ॥ जाताहंयेनपुण्येनगंधर्वस्यसुमेधसः ॥ कन्यकादिव्यरूपातुतत्त्संकथ्य॥-

कांचनमालिनी नामकी अप्सरा हूँ मैं अपना चाहे जैसा रूप बना सकती हूँ और इस समय मैं प्रयागसे आरही हूँ ॥१२॥ हे राक्षस ! मैंने गंगायमुनाके संगममें स्नान किया है अतएव मेरा वस्त्र आर्द्र ( गीला ) है और अब मैं उत्तम कैलास पर्वतके ऊपर जा रही हूँ ॥१३॥ वहाँ देवताओं और दनुजों दोनोंही के द्वारा पूजित पार्वती पति महादेवजी विराजमान

हूँ हे राक्षस ! त्रिवेणीके जल के प्रभावसे तुम्हारी दुष्टता दूर हो गई है ॥ १४ ॥ और जिस पुण्यके प्रभावसे मैं

भा. टी. अ.१२

हे राक्षस! मैंने गंगायमुनाके संगममें स्नान किया है अतएव मेरी वस्त्र आर्द्र (गीली) है और अब मैं उसमें कैलास पर्वतके ऊपर जा रही हूँ ॥ २३ ॥ जहाँ देवताओं और दानवों दोनोंहीके द्वारा पूजित पार्वती पति महादेवजी विराजमान





मान हूँ, हे राक्षस! त्रिवेणीके जल के प्रभावसे तुम्हारी दुष्टता दूर हो गई है ॥ १४ ॥ और जिस पुण्यके प्रभावसे मैं सुमेधा गन्धर्वकी सुन्दर रूपवती कन्या हुई हूँ वह भी सब तुम्हारे प्रति वर्णन करती हूँ ॥ १५ ॥ प्रथम मैं कलिंगाधिपति राजाकी वेश्या थी, मैं रूप और लावण्यमे सम्पन्न थी अतएव मुझे अपने सौभाग्यके मदका अतीव गर्व था ॥ १६ ॥ विशेष क्या कहूँ, उस पुरमें तो मैं संपूर्ण ही युवतियों (स्त्रियों) की शिरोमणि थी, हे दैत्य! उस जन्ममें मैंने अपनी

भते ॥ १५ ॥ कलिंगाधिपतेराज्ञस्त्वहमासंविलासिनी ॥ रूपलावण्यसंपन्नासौभाग्यमदगर्विता ॥ १६ ॥ अन्यासांयुवतीनांचतत्पुरेऽहंशिरोमणिः ॥ तज्जन्मनिमयारक्षाभुक्त्वाभोगान्यथेच्छया ॥ १७ ॥ मोहितंतत्पुरंसर्वंमयायौवनसंपदा ॥ रत्नानिचविचित्राणिभूषणानिधनानिच ॥ १८ ॥ वासांसिचित्ररूपाणिकर्पूरागुरुचंदनम् ॥ एतच्चोपार्जितंसर्वंमयामोहनरूपया ॥ १९ ॥ नाहंजानामि हेम्नोन्तंस्वनिवासेनिशाचर ॥ संसेवन्तेयुवानो मे चरणौकामपीडिताः ॥ २० ॥ मयाते

इच्छाके अनुसार खूबही भोग भोगे ॥ १७ ॥ विशेष क्या कहूँ, मैंने अपने रूपकी संपत्तिसे उस समस्त नगर भर को मोहित कर लिया, विचित्र रत्न, आभूषण, धन ॥ १८ ॥ विचित्र रूपके वस्त्र, कपूर और अगर चन्दन, मुझ मनोहर रूपवतीने ये सब वस्तुएँ भलीप्रकार उपार्जन करीं ॥ १९ ॥ हे निशाचर! मैं अपने निवासस्थानमें सुवर्णका अन्त नहीं देखती थी, कारण कि युवा व्यक्तिगण कामदेवसे पीड़ित हो मेरे चरणों की सेवा करते थे ॥ २० ॥ मैंने अपनी

माया करके उनका सर्वस्वही ठगलिया, अथच कोई २ कामीजन तो एक दूसरेकी स्पर्धामे मर गये ॥ २१ ॥ सुन्दर नगर में इसप्रकार मेरी गति थी, पर जब मेरी वृद्धावस्था आई तब मैं हृदयमें सोच करने लगी कि ॥ २२ ॥ न मैंने दान किया, मैंने हवन और जप भी नहीं किया, किसी व्रतका आचरण भी मुझसे नहीं बन पड़ा, धर्म,





वंचिताः सर्वे सर्वस्वेनतुमायया ॥ अन्योन्यस्पर्धाभावेन मृताःकेचित्तुकामिनः ॥२१ इत्यंतन्नगरे रम्येसकलेमेगतिस्तदा । प्राप्तेतुवार्द्धकेकालेशुशोचहृदयंमम ॥२२॥ नदत्तंनहुतंजप्तंनव्रतंचरितंमया ॥ नाराधितोमयादेवश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥२३॥ नमयापूजितादेवीदुर्गादुर्गविनाशिनी ॥ सर्वपापहरोविष्णुनस्मृतोभोगलुब्धया ॥२४॥ नचसंतर्पिताविप्रा नकृतंप्राणिनांहितम् ॥ अणुमात्रमिदंपुण्यंनकृतंचप्रमादतः ॥ २५ ॥ पातकंतुकृतंभद्रंकेनभेदहृतेमनः ॥ बहुधेवंविलप्याहं

अर्थ, काम और मोक्षके देनेवाले भगवान्‌की मैं आराधना भी नहीं की ॥२३॥ कठिन और बड़े क्लेशों का विनाश करनेवाली दुर्गादेवीको भी मैंने नहीं पूजा, नित्य भोगोंका उपभोग करनेके लोभसे मैंने सब पापोंका नाश करने वाले श्रीविष्णुभगवान् का स्मरणतक नहीं किया ॥ २४ ॥ ब्राह्मणोंका सन्तोष और प्राणियोंका कुछ भी हितसाधन नहीं किया, असावधानीसे [illegible] मैंने [illegible] भी पुण्य न किया ॥ २५ ॥ हे भद्र ! मैंने पातक तो बहुतसे किये ये





[illegible] इसप्रकार बहुत कुछ विलापकरके मैं ॥ २६ ॥ शुद्ध और चैतन्य ज्ञानसंपन्न, दैवज्ञ,

श्रीविष्णुभगवान् का स्मरणतक नहीं किया ॥ २४ ॥





अतएव मेरा मन दग्ध होने लगा, इसविधिसे बहुत कुछ विलापकरके मैं ॥ २६ ॥ शुद्ध और चैतन्य ज्ञानसंपन्न, दैवज्ञ, उसी राजाके ब्राह्मण पुरोहित के निकट में गई, और कहा हे विप्र ! इस पापसे निस्तार होकर मुझे सद्गति किसप्रकार हो सकती है ? मैं भिखारी दीन अपनेही कर्मोंसे सन्तप्त हो रही हूँ ।२७-२८ हे विप्र ! मैं पापकी पंकमें निमग्न हो रही हूँ अतएव केश पकड़कर उसमें से मुझे उबारिये, अथवा हे द्विज ! हर्षकी दृष्टिसे करुणाका जल मेरे ऊपर बरसाइये । २९॥

ब्राह्मणंशरणंगता ॥ २६ ॥ ब्रह्मण्यंवेदविद्वांसंतस्यराज्ञः पुरोहितम् । सोऽपृष्टोमयाप्राज्ञः कथं-मेनिष्कृतिर्भवेत् ॥ २७ ॥ पापस्यास्यद्विजश्रेष्ठकथंयास्यामिसद्गतिम् ॥ स्वेनैवकर्मणातप्तांव-राकींदीनमानसाम् ॥ २८ ॥ पापपङ्कनिमग्नांत्वंमामुद्धरकचग्रहैः ॥ मयिकारुण्यजंवारिवर्ष-हर्षदृशाद्विज ॥ २९ ॥ सज्जनेसाधवःसर्वेसाधुःसाधुरसज्जने । इत्यसौमद्वचः श्रुत्वाचकारानु-ग्रहंमयि ॥ ३० ॥ ऊचेप्रीतिकरंवाक्यंसर्वधर्मसमंद्विजः ॥ द्विजउवाच ॥ निषिद्धाचरणं-

सज्जनोंके लिये तो सभी सज्जन होते हैं, महात्मा लोग असज्जनोंके प्रतिभी दुष्टताका वर्ताव नहीं करते हैं, उन्होंने मेरे ऐसे वचन सुन मेरे ऊपर अनुग्रह किया । ३० ॥ सुतराम् वह द्विज सब धर्मोंसे व्याप्त प्रसन्न करने वाले वाक्य कहने लगा, ब्राह्मण बोला—हे सुमुखि ! मैं तेरे सम्पूर्ण निषिद्ध आचरणोंको जानता हूँ, तू मेरा कहना मानकर प्रजापतिके क्षेत्रमें जा ॥ ३१ ॥ वहाँ जाय स्नान करनेसे तुम्हारे पापोंका क्षय हो जायगा, क्योंकि–हमें तुम्हारे पाप

विनाशका और कोई भी उपाय नहीं सूझता है ॥ ३२ ॥ तीर्थ में स्नान करने को महर्षियोंने सर्वोत्तम प्रायश्चित्त वर्णन किया है, परन्तु हे भीरु ! तीर्थमें जाकर अशुभक्रियाओंका मनसे भी परित्याग कर देना चाहिये ॥ ३३ ॥ प्रयागमें स्नान करनेसे शुद्ध होकर तू अवश्य ही स्वर्गको चली जायगी, कारण कि, प्रयागराजमें स्नान करने से मनुष्योंको निश्चय



जानेसर्वंतेहंवरानने ॥ कुरुपेसत्वरंवाक्यंयाहिक्षेत्रंप्रजापतेः ॥ ३१ ॥ तत्रगत्वाकुरुस्नानंतेन· पापक्षयस्तव ॥ नाहमन्यत्प्रपश्यामियत्तेपापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥ प्रायश्चित्तंपरंतीर्थेस्नानंच ऋषिभिःस्मृतम् ॥ किन्तुतीर्थेत्यजेद्भीरुमनसाप्यशुभक्रियाम् ॥ ३३ ॥ प्रयागस्नानशुद्धात्वं· स्वर्गंयास्यसिनिश्चितम् ॥ प्रयागस्नानमात्रेणनृणांस्वर्गोनसंशयः ॥ ३४ ॥ अन्यदेशकृतंपापं· तत्क्षणादेवभामिनी ॥ प्रयागेविलयंयातिपापंतीर्थकृतं विना ॥ ३५ ॥ शृणुभीरुपुराशक्रो· गौतमस्यमुनेर्वधूम् ॥ दृष्ट्वाकामवशंप्राप्तस्तांगतोगुप्तकामुकः ॥ ३६ ॥ तद्व्रणतेनपापेनतद्व·

ही स्वर्गका लाभ होता है ॥ ३४ ॥ तीर्थस्थानको छोड़ अन्य स्थानमें किये हुए जितने पाप हैं वे सबही हे भामिनी ! प्रयागराजमें तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ हे भीरु ! पूर्व समय में इन्द्र महर्षिगौतमकी पत्नीको देखकर कामके

प्रयागराजमें तत्कालही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ हे भीरु ! पूर्व समय में इन्द्र महर्षिगौतमकी पत्नीको देखकर कामके १२८
वशीभूत हो तथा गमनकरने उस कामसे वे उसके साथ गमन भी किया ॥ ३६ ॥ ऐसा व्यवहार करनेसे उसी समय



ऋषिपत्नीगमनकर्त्ता इन्द्रको उसका फल प्राप्त हो गया ॥३७॥ उस स्त्रीके पतिने जब शाप दिया तो उसीके प्रभावसे
इन्द्रका शरीर सहस्रभगसे चिह्नित कुरूप निन्दित अतएव लज्जाजनक हो गया ॥ ३८ ॥ तब तो सुरराज नीचेको
मुखकरके निकला और वह तिरस्कृत एवं लज्जित होकर अपने किये कर्मकी निन्दा करने लगा ॥ ३९ ॥

जानितं फलम् ॥ ऋषिस्त्रीगंतुमिन्द्रस्यतस्याश्चपुरतस्तदा ॥ ३७ ॥ कुरूपंगर्हितंजातंभीत-
लज्जाकरंवपुः ॥ तद्भर्तुःशापमाहात्म्यात्सहस्रभगचिह्नितम् ॥ ३८ ॥ अधोमुखस्ततोभूत्वा-
देवराजोविनिर्गतः ॥निनिंदस्वकृतंकर्मसोऽभभूनःसलज्जितः ॥३९॥ मेरोःशिरसितोयाढ्येश-
तयोजनविस्तृते ॥ तत्रगत्वाप्रविष्टस्तुहेमाब्जारुहकोरके ॥ तत्रस्थोगर्हयन्नित्यमात्मानंमन्मथं-
तथा ॥ ४० ॥ येनवैनरकंयातिसर्वलोकविगर्हितः ॥ आयुष्कीर्तियशोधर्मध्वंसकारीसदा-

सुमेरुपर्वतके ऊपर जलसे लबालब भरे हुए, सौ योजनपर्य्यन्त विस्तृत एक सरोवरमें सुवर्णकमलकी कलिकामें प्रविष्ट
हो अपनी और कामदेवकी निन्दा करने लगा ॥ ४० । जिस कामना से मनुष्य समस्त लोकमें निन्दित हो नरक-
गामी होता है, कामचेष्टाजनित वह पापवासना आयु कीर्ति यश और धर्मका सत्यानाश करने वाली है ॥ ४१ ॥ दुरा-
चारी आपत्तियोंके अचलस्थानस्वरूप और देहहीमें उपस्थित रहनेवाले विकट शत्रु कामदेवको धिक्कार है, यह दुष्ट

वशमें कभी नहीं होता और न इसे कभी सन्तोष ही होता है ॥४२॥ हे भीरु ! इधर जिस समय इन्द्र कमलमें बैठे २ गुप्तरूप से इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय बिना इन्द्रके इन्द्रलोककी शोभा भी नष्ट हो गई ॥४३॥ तब सब देवता, गन्धर्व, लोकपाल और किन्नर इन्द्राणी के साथ बृहस्पतिजीके पास आकर पूछने लगे ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! हमें



हि सः ॥४१॥ धिङ्मन्मथं दुराचारमापदां नियतं पदम् ॥ देहस्थं दुर्दमं शत्रुमसंतुष्टं सदावशम् ॥४२॥ इत्थं वादिनि प्रच्छन्ने वासवे पद्मसद्मनि ॥ आखण्डलं विना भीरु देवलोको न शोभते ॥४३॥ ततो देवाः सगंधर्वा लोकपालाः सकिन्नराः ॥ शच्या सह समागम्य पप्रच्छुस्ते बृहस्पतिम् ॥ ४४ ॥ भगवन्बह्मि देवं नैव जानीमहे वयम् । क्वातिष्ठति गतः कुत्र कुत्र वा मृगयामहे ॥ ४५॥ न नाकः शोभते तेन विना देवगणैः सह ॥ सुपुत्रेण विना यद्वत्कुलं श्रीमद्गुणान्वितम् ॥ ४६ ॥ उपायश्चिन्त्यतां सद्यः

इन्द्रकी कुछ भी खबर नहीं है, कि–वे कहाँ गये, वे कहाँ हैं ? और हम उन्हें कहाँ ढूँढे ॥ ४५ ॥ जैसे सुपुत्र बिना, लक्ष्मी और गुणसंपन्न कुलकी शोभा नहीं होती, इसी प्रकार इन्द्रके बिना देवगणसहित भी देवलोककी शोभा नहीं है ॥ ४६ ॥ हे नाथ ! ऐसा उपाय सोचना चाहिये कि, जिससे लक्ष्मी और स्वामीसे युक्त होकर स्वर्गलोक





कि इन्द्र अपने किये हुए अपराध को ... जहाँ स्थित हैं उसे मैं जानता हूँ ॥ ४८ ॥ इन्द्रने (बिना

है ॥ ४६ ॥ हे नाथ! ऐसा उपाय सोचना चाहिये कि, जिससे लक्ष्मी और स्वामीसे युक्त होकर स्वर्गलोक 

कि इन्द्र अपने किये हुए अपराध की लज्जासे लज्जित होकर जहाँ स्थित है उसे मैं जानता हूँ ॥ ४८ ॥ इन्द्रने (बिना सोचे समझे) सहसा जो कार्य कर डाला, उसी के फल को भोग रहा है, जब मनुष्य नीति का परित्याग कर देते हैं तब उन्हें बड़े २ भयंकर दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ४९ ॥ आश्चर्य की बात है कि—राज्यपद से उन्मत्त हो उसने कर्तव्य अकर्तव्य का कुछ भी विचार नहीं किया, किन्तु क्षय करनेवाले गुप्त और प्रगट

 

स्वर्लोकोयेनशोभते ॥ सनाथः श्रियायुक्तोनविलंबोऽत्रयुज्यते ॥४७॥ इतितद्वचःश्रुत्वा-गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ जानेहंस्वापराधेनलज्जयायत्रतिष्ठति ॥४८॥ रभसाल्लब्धकार्यस्यभुंक्तसम-घवाफलम् ॥ नृणांनीतिपरित्यागाद्विपाकाःस्युर्भयंकराः ॥ ४९ ॥ अहोराज्यमदेमत्तःकृत्या-कृत्यमचिंतयत् ॥ कृतवान्निंद्यमानंहिदृष्टादृष्टक्षयंकरम् ॥५०॥ कुर्वन्तिबालिशायत्रदैवोपहत-बुद्धयः ॥ अपराधाद्यथाजन्मस्यादिहामुत्रनिष्फलम् ॥५१॥ अधुनातत्रगच्छामोयत्रशक्रःमति-

अनेक निन्दित कर्म करता रहा ॥ ५० ॥ जैसे कि दैवके द्वारा जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है, ऐसे मूर्ख कर्म करते हैं, जिन अपराधों के करने से इस लोक और परलोक दोनों स्थानों में जन्म निष्फल होना है ॥ ५१ ॥ अब वहाँ ही चलते हैं, जहाँ इन्द्र की स्थिति है, यों कहकर बृहस्पति जी आदि को ले सब देवता वहाँ से निकल चले ॥ ५२ ॥ विस्तृत सरोवर में सुवर्ण से शोभायमान कमलों के वन का अवलोकन

कर देवराज इन्द्र की इस प्रकार स्तुति करने लगे जिससे कि, उसे ज्ञान की प्राप्ति हो ॥ ५३ ॥ तब तो गुरुजी महाराजके ज्ञानोपदेशको पाय इन्द्र कमलकी कलीमें से प्रादुर्भूत हुआ, उस समय उसका मुख मलीन एवं रूप कुरूप हो रहा था, अथच लज्जा के मारे उसकी आँखें झपी जाती थीं ॥ ५४ ॥ तब इन्द्रने अग्रजन्मा बृहस्पतिजी महाराज के



श्रुति ॥ इत्युक्त्वानिर्गताःसर्वेबृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ५२ ॥ दृष्ट्वासरसिविस्तीर्णस्वर्णपंकजकाननम् ॥ तुष्टुवुर्देवराजानंप्रबोधोयेनजायते ॥५३॥ ततोगुरोःप्रबोधेननिर्गतःपद्मकुड्मलात् ॥ दीनाननोविरूपस्तुव्रीडाकुंचितलोचनः ॥ ५४ ॥ जग्राहचरणारविन्दौगुरोस्तस्याग्रजन्मनः ॥ त्राहिमांनिष्कृतिंब्रूहिपापस्यास्यबृहस्पते ॥ ५५ ॥ देवराजवचः श्रुत्वाजगौविप्रोबृहस्पतिः ॥ शृणुदेवेन्द्रवक्ष्येऽहमुपायंपापनाशनम् ॥ ५६ ॥ प्रयागस्नानमात्रेणतत्क्षणादेवपातकात् ॥ मुच्यसेदेवराजत्वंतत्रयामः सहैवते ॥ ५७ ॥ अथपुरोधसासार्धमागत्यबलमर्दनः ॥ सस्नौसिता-

चरणोंका स्पर्श किया और कहा—हे बृहस्पते। मेरी रक्षा करिये एवं इस तापसे उद्धार होनेका उपाय बताइये ॥ ५५॥ देवराज इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर द्विजोत्तम बृहस्पति जी बोले—सुनो देवेन्द्र ! हम पापविनाशी उपाय का वर्णन

इसलिये हम तुम्हें साथ लेकर वहाँ ही चलते हैं ॥ ५७ ॥ यह सुनते ही अपने पुरोहित बृहस्पति को साथ ले गंगा यमुनाके संगममें इन्द्रने स्नान किया और उसी समय उसकी पापोंसे मुक्ति हो गई ॥ ५८ ॥ तब देवगुरु बृहस्पतिजीने प्रसन्न होकर इसे वर दिया और कहा हे अनघ ! तुमने प्रयागराजमें स्नान करके अपने पापोंका



सितेतीर्थेसद्योमुक्तोह्यघैस्ततः ॥५८॥ अथदेवगुरुस्तस्मैप्रसन्नस्तुवरंददौ ॥ प्रयागस्नानमात्रेण-क्षीणंपापंत्वयानघ ॥ ५९ ॥ क्षीणपापस्यतेशक्रमत्प्रसादेनसत्त्वरम् ॥ सहस्रमेतद्योनीनांसहस्रं-स्याद्दृशांतव ॥ ६० ॥ तदैवद्विजवाक्येनशुशुभेचशचीपतिः ॥ लोचनानांसहस्रेणपङ्कजैरिव-मानसम् ॥ ६१ ॥ अथवृन्दारकैःसर्वैर्ऋषिभिश्चाभिपूजितः ॥ गंधर्वैःस्तूयमानस्तुगतः शक्रोऽमरावतीम् ॥ ६२ ॥ इत्थंसद्योविपापोऽभूत्प्रयागेपाकशासनः ॥ याहित्वमपिकल्याणि-

नाश कर दिया है ॥ ५९ ॥ हे इन्द्र, इस समय तुम्हारे पापोंका क्षयहो गया है, अतएव हमारी कृपासे इसी समय इन सहस्रयोनियों के तुम्हारे सहस्र नेत्र हुए जाते हैं ॥ ६० ॥ ब्राह्मणके ऐसे वाक्य कहते ही सहस्र नेत्रों से इन्द्रकी ऐसी शोभा होने लगी जैसे कमलोंके द्वारा मानसरोवर की शोभा होती है ॥ ६१ ॥ इसके पश्चात् सब देवताओं और ऋषियों ने इन्द्र की पूजा की तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तुति किये जाने के अनन्तर देवराज अमरावतीको

गये ॥६२॥ इस प्रकार प्रयाग में स्नान करनेसे इन्द्रके पाप शीघ्रही नष्टहो गये, अतएव हे कल्पाणि ! तुमभी देवताओंसे सेवित प्रयाग में जाओ ॥ ६३ ॥ वहाँ जानेसे शीघ्र ही तुम्हारे पापोंका नाश होकर अचल स्वर्गकी प्राप्ति होगी, जब मैंने यह इतिहास और मंगलसहित ऐसे वचन सुने ॥ ६४ ॥ तब मुझे अत्यन्त संभ्रमकी प्राप्ति हुई और मैंने

प्रयागंदेवसेवितम् ॥ ६३ ॥ सद्यःपापविनाशायतथास्वर्गतयेदृढम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा-सेतिहासंसमंगलम् ॥ ६४ ॥ तदैवसंभ्रमापन्नानत्वापादौद्विजस्यतु ॥ त्यक्त्वाबंधुजनं-सर्वंदासदासीगृहंतथा ॥ ६५ ॥ सकलान्विषयान्त्रक्षोविषग्रासानिवस्फुटम् ॥ वपुश्चक्षणविध्वं-सिपश्यंतीनिर्गताह्यहम् ॥ ६६ ॥ नरकार्णवसंपातदारुणांतरवह्निना ॥ हृदयेकुणपव्याप्रत-दातत्तप्यामानया ॥ ६७ ॥ मयागत्वाकृतंस्नानंमाघेमासिसितासिते ॥ तस्यस्नानस्यमाहात्म्यं-शृणुवृद्धनिशाचर ॥ ६८ ॥ त्र्यहात्पापक्षयोजातःसप्तविंशतिभिर्दिनैः ॥ शेषैर्मेयदभूत्पुण्यं-

उक्त ब्राह्मणके चरणोंमें प्रणाम किया, एवं बन्धु बान्धवों, सम्पूर्ण दास दासियों और घर को छोड़ ॥ ६५ ॥ अथच हे राक्षस ! समस्त विषयोंको विषके ग्रासोंके सदृश जान और शरीरको क्षणभंगुर समझके मैं घर से निकल चली ॥ ६६ ॥ नरकमें गिरनेवाली चिन्ताकी दारुण अग्नि से मेरा हृदय उस समय सन्तप्त हो रहा था ॥ ६७ ॥ तब मैंने प्रयाग में जाय गंगा यमुनाके संगममें स्नान किया, हे वृद्ध निशाचर ! उसमें स्नान करने के माहात्म्यको

तब मैंने प्रयाग में जाय गंगा यमुनाके संगममें स्नान किया, हे वृद्ध निशाचर! उसमें स्नान करने के माहात्म्यको

सुनो ॥ ६८ ॥ तीन दिनमें तो मेरे सब पापोंका सत्यानाश हो गया और शेष सत्ताईस दिन स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त हुआ उससे देवयोनि का लाभ हुआ है ॥ ६९ ॥ सुतराम् मैं पार्वतीकी प्रियसखी होकर कैलास पर्वतके





तेनदेवत्वमागता ॥ ६९ ॥ रममाणातुकैलासेगिरिजायाःप्रियासखी ॥ जातिस्मरातथाजाता-प्रयागस्यप्रभावतः ॥ ७० ॥ स्मृत्वाप्रयागमाहात्म्यंमाघेमाघेव्रजाम्यहम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणेउत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे कांचनमालिनीरक्षःसंवादोना-मद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ऊपर क्रीड़ा करती हूँ, और प्रयागराजमें स्नान करनेके प्रभावसे मुझे अपनी जातिका स्मरण बना हुआ है ॥ ७० ॥ अथच प्रयागराजके माहात्म्यको स्मरण कर मैं प्रत्येक माघमें वहाँ जाती हूँ ॥ ७१ ॥ इति श्रीमाघमास माहात्म्य भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कांचनमालिनी बोली--हे राक्षस ! तुमने अपने चित्त में विस्मित होकर जो कुछ पूछा वह समस्त चरित हमने तुम्हारी प्रसन्नताके लिए तुम्हें कह सुनाया ॥ १ ॥ अब हे राक्षस ! मेरी प्रसन्नताके लिये तुम अपना सब चरित्र मुझसे कहो, कि-किस कर्मके करने से तुम्हारा ऐसा भयानक कुरूप हो गया है ॥ २ ॥ तुम्हारी बड़ी २



कांचनमालिन्युवाच ॥ इतिराक्षसयत्पृष्टंत्वयाविस्मितचेतसा ॥ तन्मयाकथितंसर्वंचरितंप्रीतये तव ॥ १ ॥ मत्प्रीतयेचरित्रंस्वंत्वंब्रूहिममराक्षस ॥ कर्मणाकेनजातोसिविरूपोतिभयंकरः ॥२॥ श्मश्रुलोदीर्घदंष्ट्रश्चक्रव्यादोगिरिगह्वरे । राक्षसउवाच ॥ इष्टंददातिगृह्णातिगुह्यंवदतिपृच्छति ॥३॥ प्रीत्याहिसज्जनोभद्रेतच्चसर्वंत्वयिस्थितम् ॥ त्वयासंभावितोनूनंमन्येहंवामलोचने ॥४॥ भाविनीनिष्कृतिःसद्यस्त्वत्तोऽस्यक्रूरकर्मणः ॥ अतोवक्ष्यामितेभद्रेदुष्कृतंयत्स्वयंकृतम् ॥५॥

डाढ़ी मूछे हैं एवं डाढ़ें भी तुम्हारी बड़ी हैं, राक्षस बोला-प्रियवस्तु देना, गुप्त विषयों का पूँछना और कहना ॥३॥ हे भद्रे ! सज्जन इन बातोंको प्रीतिपूर्वक पूँछा करते हैं, सो यह सब बातें तुममें विद्यमान हैं, हे तिर्छीचितवनवाली ! तुमने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥ ४ ॥ हे सुभद्रे ! हमारे क्रूरकर्मकी निवृत्ति तुम्हारे द्वारा होगी, अतएव मैं अपने किये हुए कर्म तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ क्योंकि सज्जनोंके प्रति दुःखका निवेदन करनेसे सुख की प्राप्ति होती है, सुनो सुन्दर नितम्बवाली ! मैं काशी में बहुतसी ऋचाओंका ज्ञाता और वेदपारगामी ब्राह्मण

अपने किये हुए कर्म तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ क्योंकि सज्जनोंके प्रति दुःखका निवेदन करनेसे सुख की



प्राप्ति होती है, सुनो सुन्दर नितम्बोंवाली ! मैं काशी में बहुतसी ऋचाओंका ज्ञाता और वेदपारगामी ब्राह्मण था ॥ ६ ॥ मेरा उत्तमकुलमें जन्म हुआ था, अतएव मैं सबमें उत्तम ब्राह्मण समझा जाता था, हे भीरु ! दुराचारी राजाओं, शूद्रों और वैश्यों के ॥७॥ काशीजी में मैंने बहुत बार कुत्सित दान लिये । ८॥ यहाँ तक कि मैंने चाण्डालोंका



निवेद्यसज्जनेदुःखं ततःसर्वसुखीभवेत् ॥ शृणुसुश्रोण्यहंकाश्यांबह्वृचोवेदपारगः ॥ ६ ॥
जातःपुराद्विजःश्रेष्ठःकुलेमहतिनिर्मले ॥ राज्ञांदुष्कृतिनांभीरुशूद्राणांचतथाविशाम् ॥ ७ ॥
वाराणस्यांकृतोघोरोमयादुष्टप्रतिग्रहः ॥ बहुधाबहुधावारंनिषिद्धःकुत्सितोबहु ॥ ८ ॥
चांडालस्यापिनत्यक्तोमयादुष्टप्रतिग्रहः ॥ अन्यच्चपातकंतत्रममाभून्मूढचेतस ॥ ९ ॥ तन्ना-
स्तिदुष्कृतंकर्ममयातत्रनयत्कृतम् ॥ अन्यच्चश्रूयतांदोषःक्षेत्रस्यवरवर्णिनि ॥१०॥ अविमुक्तोऽ-
णुमात्रंयत्तदघंमेरुतांव्रजेत ॥ नधर्मस्तुमयाकश्चित्संचितस्तत्रजन्मनि ॥ ११ ॥ ततोबहुति-

भी प्रतिग्रह ग्रहण किया, एवं वहाँ मुझ मूर्खने बहुतसे पाप किये ॥ ९ ॥ ऐसा कोई भी पाप (अथवा निषिद्ध कर्म) नहीं था कि, जिसका आचरण मैंने न किया हो और हे सुमुखि ! क्षेत्रके अन्य दोषोंका भी श्रवण करो ॥१०॥ अविमुक्तक्षेत्रमें किया हुआ अणुमात्र भी पाप पर्वतके समान बृहत्काय हो जाता है और मैंने तो उस जन्ममें किसी भी धर्म का संचय ही नहीं किया ॥११॥ इसके अनन्तर प्रभूत समय व्यतीत हो जाने पर वहाँ ही मेरी मृत्यु हो गई,

हे शोभने ! अविमुक्त क्षेत्रके प्रभाव से मुझे नरक में नहीं जाना पड़ा ॥ १२ ॥ अविमुक्त क्षेत्र में चाहे जैसे मनुष्य का मरण हो पर उसे नरकमें जाना नहीं होता और उक्त क्षेत्रमें किया हुआ पाप वज्रके तुल्य दृढ़ हो जाता है ॥१३॥ वज्रलेप पापके कारण इस हिमालय पर्वतके ऊपर भयानक अतिशय दुष्ट और पापशील राक्षस योनिमें मेरा जन्म



थेकालेमृतस्तत्रैवशोभने ॥ अविमुक्तप्रभावेणनचाहंनरकंगतः ॥ १२ ॥ अविमुक्तेमृतःकश्चिन्नरकंनैवगच्छति ॥ अविमुक्तेकृतंकिंचित्पापंवज्रीभवेद्दृढम् ॥ १३ ॥ वज्रलेपेनपापेनतेनमेजन्मराक्षसम् ॥ रौद्रंक्रूरतरंपापंसंभूतंहिमपर्वते ॥ १४ ॥ द्विर्जातोगृध्रयोनौप्राक्त्रिर्व्याघ्रोद्विःसरीसृपः ॥ एकवारमुलूकस्तुविड्वराहस्ततःपरम् ॥ १५ ॥ इदंतुदशमंजन्मराक्षसंममभामिनि ॥ अतीतानिसहस्राणिवर्षाणिममजन्मनः ॥ १६ ॥ नास्तिमेनिष्कृतिर्भद्रेएतस्माद्दुःखसागरात् ॥ अत्रत्रियोजनंसुभ्रू निर्जंतुंहिमयाकृतम् ॥१७॥ अनागसांचभूतानांबहूनांचकृतः

हुआ ॥ १४ ॥ इससे प्रथम दो बार गृध्र, तीन बार व्याघ्र और दो बार सरीसृप ( सर्प ) एक बार उल्लू और नववीं बार नीच सूकर योनि में भी मेरा जन्म हो चुका है ॥ १५ ॥ हे भामिनि ! अब दशवीं बार यह राक्षसयोनि मुझे प्राप्त हुई है, मेरे जन्मके सहस्रों वर्ष व्यतीत हो चुके ॥ १६ ॥ हे सुभद्रे ! इस दुःखके सागरसे मेरा उद्धार

योनि मुझे प्राप्त हुई है, मेरे जन्मके सहस्रों वर्ष व्यतीत हो चुके ॥ १६ ॥ हे सुभ्रु ! इस दुःखके सागरसे मेरा उद्धार



नहीं होता, हे भृकुटिवाली ! यहाँ के स्थान को मैंने तीन योजन पर्यन्त जीवहीन कर दिया है ॥ १७ ॥ हे सुन्दरि ! मैंने बहुत से निरपराधी जीवों का भी विनाश किया है, इन नीच कर्मों के कारण मेरा मन भस्मीभूत होता रहता है ॥ १८ ॥ तुम्हारे दर्शनरूप अमृतके छिड़कावेसे मेरे मनको शान्तिका लाभ हुआ है, तीर्थोंका फल तो समय पाकर मिलता है, पर सज्जन समागम तत्कालही फल देता है ॥ १९ ॥ हे सुभ्रु ! इसीलिये विद्वान् लोग सत्संगति

क्षयः ॥ कर्मणातेनमेसुभ्रु दह्यतेसततंमनः ॥ १८ ॥ त्वद्दर्शनसुधासिक्तंगतशैत्यंमनोमम ॥ तीर्थंफलतिकालेनसद्यःसाधुसमागमः ॥ १९ ॥ अतःसत्संगतिंसुभ्रु प्रशंसंतिमनीषिणः ॥ एत-त्तेकथितंसर्वंत्वदुःखहृद्गतंमया ॥ २० ॥ विरलःसज्जनःसुभ्रु स्वात्मायस्यनखिद्यते ॥ जाना-स्यत्रोचितंत्वंहिकिंचिन्नोवच्म्यतःपरम् ॥ २१ ॥ अस्यदुःखोदधेःपारंकथंयामीतिचिंतयन् ॥ सज्जनानांसमाभूतिःसर्वेषामुपजीवनम् ॥ २२ ॥ क्षीरार्णवःपयोदत्तेहंसायनबकायकिम् ॥

की प्रशंसा किया करते हैं, यह मैंने अपना हार्दिक सब दुःख तुमसे वर्णन किया ॥ २० ॥ हे सुभ्रु ! ऐसा कोई विरलाही सज्जन होगा, जिसकी अन्तरात्मा को खेद न हो, इसके उचित कारण को तुम जानती हो अतएव मैं कुछ नहीं कहता ॥ २१ ॥ मैं सदैव यही विचार करता हूँ कि, इस दुःख के सागर से किस प्रकार पार हो सकूँगा ! सज्जनों का समागम सभी का उपकार करता है ॥ २२ ॥ क्या क्षीरसागर केवल हंसोंही को दुग्धदान करता है,

बंगलोंको नहीं, ( नहीं २ सभीको करता है ) दत्तात्रेयजी बोले—उसके ऐसे वचन सुन उसका चित्त दया से आर्द्र हो गया ॥ २३ ॥ सुतराम् वह कांचनमालिनी धर्मप्रदान करने का निश्चय करके चली गई और अपने मनमें विचारने लगी कि, इस राक्षस का मैं अवश्य उद्धार करूँगी, ॥ २४ ॥ मैं तेरे उद्धार के लिये यत्न करूँगी, उस राक्षस से



दत्तात्रेयउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादयार्द्रीकृतमानसा ॥ २३ ॥ धर्मदानेमतिंकृत्वाजगौ-कांचनमालिनी ॥ करिष्येनिष्कृतिंरक्षइदानींखलुमाशुच ॥ २४ ॥ प्रतिज्ञां तुदृढांकृत्वायतिष्ये-तवमुक्तये ॥ बहवोहिकृतामाघावर्षेवर्षेयथाविधि ॥२५॥ श्रद्धापूर्वंमयाभद्रब्रह्मक्षेत्रेसितासिते ॥ तांवदामितुसंख्यातितस्यधर्मस्यराक्षस ॥ २६ ॥ गूढोधर्मोहिकर्तव्यइत्यूचुर्विबुधाजनाः ॥ आर्तेदानंप्रशंसंतिमुनयोवेदवादिनः ॥ २७ ॥ सागरेवर्षतोभद्रकिंमेघस्यफलंभवेत् ॥ अनु-

ऐसी प्रतिज्ञा करके कहने लगी कि, मैंने प्रतिवर्ष अनेक माघों में यथाविधि स्नान किया है ॥ २५ ॥ हे सौम्य ! यह सब मैंने ब्रह्मक्षेत्र में गंगा-यमुना के संगम में भक्तिभाव पूर्वक किया है, हे राक्षस ! उसकी संख्या और धर्मका मैं वर्णन करती हूँ ॥ २६ ॥ विद्वान् लोग यों कहते हैं कि--धर्मका आचरण गुप्त करना चाहिये और वेदवादी मुनिजन दुःखीको दान देने की प्रशंसा करते हैं ॥ २७ ॥ हे सौम्य ! भला समुद्र में वर्षा होने से क्या फल हो सकता



है ? हे राक्षस ! उस पुण्यके फलको मैंने स्वयं अनुभव किया है ॥ २८ ॥ ... तत्काल पापोंका नाश करने

सज्जन दुःखोंको दीन देन की प्रशंसा करते हैं ॥ २७ ॥ हे सौम्य ! भला समुद्र में वर्षा होने से क्या फल हो सकता



है ? हे राक्षस ! उस पुण्यके फलका मैंने स्वयं अनुभव किया है ॥ २८ ॥ हे मित्र ! तत्काल पापोंका नाश करने वाले उस पुण्यफलको मैं तुम्हें दे दूँगी, यों कहकर उसने वस्त्र निचोड़के उसके जलको कमलसदृश सुन्दर हाथों में लेकर ॥ २९ ॥ माघस्नानका फल वृद्ध राक्षस को दे दिया, हे राजन् ! माघस्नानके विचित्र धर्मको सुनो ॥३०॥







भूतंमयारक्षःस्वयंतत्पुण्यजंफलम् ॥ २८ ॥ तत्तुदास्यामितेमित्रसद्यःपापविनाशनम् ॥
निष्पीड्याथततोवस्त्रंजलंकृत्वाकरांबुजे ॥ २९ ॥ ददौसामाघजंपुण्यंतस्मैवृद्धायरक्षसे ॥
शृणुराजन्विचित्रंहिप्रभावंमाघधर्मजम् ॥ ३० ॥ तदैवंप्राप्यतत्पुण्यंविमुक्ताराक्षसीतनुः ॥
संभूतोदेवताकारस्तेजोभास्करविग्रहः ॥ ३१ ॥ देवयानंसमारूढःसहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥
द्योतमानस्तदाव्योम्निभासयन्प्रभयादिशः ॥ ३२ ॥ दिव्यरूपधरोरेजेद्वितीयइवभास्करः ॥
ततोऽभिनन्दयामासस्तांकांचनमालिनीम् ॥ ३३ ॥ भद्रेवेत्तीश्वरोदेवःकर्मणां यःफलप्रदः ॥

उस पुण्यके पातेही उसने राक्षसी देह का परित्याग कर देवशरीरको धारण कर लिया, अतएव उसका तेज सूर्य के समान हो गया ॥ ३१ ॥ सुतराम् आनन्दसे उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये, जब वह विमानमें आरूढ़ हुआ तब आकाश में उसका तेज व्याप्त हो गया और उसकी प्रभा से दिशाएँ प्रदीप्त हो गईं ॥ ३२ ॥ वह राक्षस दिव्यदेह धारण करके

दूसरे सूर्यके समान विराजमान होने लगा और उस कांचनमालिनीकी प्रशंसा करने लगा ॥ ३३ ॥ हे सुभद्रे ! समस्त कर्मोंके फलको देने वाला ईश्वर इस बात को जानता है कि—जिससे कभी उद्धार नहीं हो सकता था, उसी पाप से तुमने मेरा निस्तार किया है ॥ ३४ ॥ हे देवि ! अभी और कृपा का प्रसाद मुझे दीजिये, अर्थात् समस्त नीतिसे पूर्ण ऐसी शुभ शिक्षा मुझे दीजिये ॥ ३५ ॥ वह तुम्हारी शिक्षा सब धर्मोंका आचरण करनेवाली होनी

तत्त्वयोपकृतंसर्वंयत्रमेनास्तिनिष्कृतिः ॥ ३४ ॥ इदानीमपिकारुण्यात्प्रसीदानुग्रहंकुरु ॥ शिक्षांविधेहिमेदेविसर्वनीतिमयींशुभाम् ॥३५॥ सर्वधर्मकरींनूनंनकुर्वेपातकंयथा ॥ तां श्रुत्वा- त्वदनुज्ञातःपश्चाद्यामिसुरालयम् ॥३६॥ एतंनिशम्यतेनोक्तंप्रियंधर्ममयंवचः ॥ अतिप्रीत्या- ब्रवीद्धर्मं राजन्कांचनमालिनी ॥३७॥ धर्मंभजस्वसततंत्यजभूतहिंसांसेवस्वसाधुपुरुषान्जहि- कामशत्रुम् ॥ अन्यस्यदोषगुणकीर्तनमाशुहित्वासत्यंवदार्चय शिवं भज वासुदेवम् ॥ ३८ ॥

चाहिये, जिससे कि मैं फिर पापका आचरण न करूँ, उसे सुन फिर तुम्हारी आज्ञा पाय सुरलोक को चला- जाऊँगा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! उसके ऐसे बचन सुन प्रीतिपूर्वक कांचनमालिनी धर्मका उपदेश करने लगी ॥ ३७ ॥ धर्मका सेवन करो, प्राणियोंकी हिंसाको छोड़कर निरन्तर साधु महात्माओंकी सेवा और कामदेवरूप शत्रु पर विजय करो, दूसरोंके गुण दोषोंकी चर्चा छोड़कर सत्यसंभाषण, महादेवजीकी पूजा और वासुदेव भगवानका भजन करना कर्त्तव्य है ॥ ३८ ॥ अस्थि, मांस और रुधिर से बने देहमें बुद्धिको मत लगाओ स्त्री पुत्रादिकों में ममता

धर्मका सेवन करो, प्राणियोंकी हिंसाको छोड़कर निरन्तर साधु महात्माओंकी सेवा और कामदेवरूप शत्रु पर विजय करो, दूसरोंके गुण दोषोंकी चर्चा छोड़कर सत्यसंभाषण, महादेवजीकी पूजा और वासुदेव भगवानका भजन करना कर्त्तव्य है ॥ ३८ ॥ अस्थि, मांस और रुधिर से व्याप्त देहमें बुद्धिको मत लगाओ स्त्री पुत्रादिकों में ममता कभी न करनी चाहिये, इस संसार को सदा क्षणभंगुर समझो और योग में अपनी निष्ठा को लगाकर तुम्हें वैराग्य भाव में रसिक होना चाहिये ॥ ३९ ॥ मैंने यह धर्मका मार्ग प्रीति पूर्वक तुम्हारे प्रति वर्णन किया है शीलयुक्त होकर अपने चित्त में इसको अवश्य धारण करो और अब राक्षसी देह का परित्याग कर देवदेह धारण करके प्रकाश,

**देहेऽस्थिमांसरुधिरेस्वमतिंत्यजत्वंजायासुतादिषुसदाममतांविमुञ्च ॥ पश्यानिशंजगदिदंक्षणभंगुरंहिवैराग्यभावरसिकोभवयोगनिष्ठः ॥३९॥ प्रोक्तोमयानिगदितंतवधर्ममार्गं चित्तेनिधेहिसकलंभवशीलयुक्तः । संत्यज्यराक्षसतनुंधृतदेवदेहोज्योतिर्मयोव्रजयथासुखमाशुनाकम् ॥४०॥ श्रुत्वाधर्मंततोहृष्टःसंतुष्टोराक्षसोऽब्रवीत् । भवप्रमुदितानित्यंसर्वदाशिवमस्तुते॥४१॥ आचंद्रार्कंरमस्वत्वंकैलासेशिवसन्निधौ ॥ उमयाऽखंडितंप्रेमतवास्तुवरवर्णिनि ॥ ४२ ॥ धर्मनिष्ठात-**

स्वरूप हो शीघ्र ही सुखपूर्वक स्वर्ग को चले जाओ ॥ ४० ॥ इस धर्मोपदेशको सुन प्रसन्नहो सन्तोष पूर्वक वह राक्षस बोला—तुम्हारा सदा कल्याण हो और तुम नित्य प्रसन्न रहो ॥ ४१ ॥ हे सुमुखी ! जबतक सूर्य चन्द्रमा विद्यमान हैं तबतक तुम कैलास पर्वत के ऊपर महादेवजी के निकट रमण करती रहो और पार्वती के साथ तुम्हारा अखण्ड प्रेम हो ॥ ४२ ॥ हे माता ! तुम्हारी धर्म और तपश्चर्या में नित्य निष्ठा बनी रहे, शरीर में तुम्हारा ममत्व कभी न

हो और दुःखियोंके क्लेश को तुम सदा हरती रहो ॥ ४३ ॥ वह राक्षस यों कहकर कांचनमालिनी को प्रणाम करके स्वर्ग को चला गया और बहुत से गन्धर्व उस समय उसकी स्तुति करने लगे ॥ ४४ ॥ तब देवकन्यायें वहाँ आकर हर्ष से व्याप्त हो उस कांचनमालिनी के ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ४५ ॥ और देवकन्याएँ उसका आलिङ्गन



पोनिष्ठामातस्त्वंभवसर्वदा ॥ मास्तुलोभःशरीरेतेआपन्नार्तिसदाहर ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वातुप्रण-
म्याथसतांकांचनमालिनीम् ॥ जगामराक्षसःस्वर्गंगंधर्वैर्बहुभिःस्तुतः ॥ ४४ ॥ देवकन्यास्त-
दागत्यववर्षुःपुष्पवृष्टिभिः ॥ तस्याः कांचनमालिन्यामूर्ध्निहर्षसमाकुलाः ॥ ४५ ॥ तामा-
लिंग्यततःप्रोचुःकन्यकास्तुप्रियंवचः ॥ कृतं भद्रेत्वयाचित्रंराक्षसस्यविमोक्षणम् ॥ ४६ ॥
दुष्टस्यास्यभयात्कश्चिन्नविशत्यस्मिन्नकानने ॥ अधुनानिर्भयाह्यत्रविचरामोयथासुखम् ॥ ४७ ॥
श्रुत्वातद्वचनंराजंस्तासांकांचनमालिनी ॥ हृष्टातेनैवदानेनकृतकृत्यातदासती ॥४८॥ तंराक्ष-

करके यों प्रिय वचन कहने लगीं कि, हे सुभद्रे ! तूने राक्षस की विचित्र मुक्ति करी ॥४६॥ इस दुष्ट के भय के मारे कोई भी इस बन में नहीं आ सकता था अब हम सुखपूर्वक यहाँ विचरेंगी ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! जब कांचनमालिनी ने उनके ये वचन सुने, तब वह इस दान से सन्तुष्ट होकर कृतार्थ हो गई ॥ ४८ ॥ वह कांचनमालिनी गन्धर्व

ने उनके ये वचन सुने, तब वह इस दान से सन्तुष्ट होकर कृतार्थ हो गई ॥ ४८ ॥ वह कांचनमालिनी गन्धर्व



कन्या उस राक्षस को मुक्त करके क्रीडा करती हुई शिवलोक को चली गई और परोपकार करने से अतिशय प्रीतिको प्राप्ति हुई ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य इस श्रेष्ठ कन्या के इस उत्तम संवाद का श्रवण करता है, वह राक्षसों के द्वारा कदापि बाधित नहीं होता और उसकी सदैव धर्म में मति होती है ॥ ५० ॥ इति माघमासमाहात्म्ये भाषटीकायां-त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



संकांचनमालिनीवरागन्धर्वकन्यापरिमोच्यसत्वरम् ॥ क्रीडन्त्ययसूभिःप्रययौहरालयंप्रीत्यास-पूर्णाचपरोपकारया ॥ ४९ ॥ संवादमेनंवरकन्ययकेरितंभक्त्यापरं यःश्रृणुयाच्चमानवः ॥ नबा-ध्यतेजातुसदासराक्षसैर्धर्मेमतिस्तस्यभृशं हि जायते ॥ ५० ॥ इति श्री प० उ० माघमा० दिलीप० राक्षसमोक्षोनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ कथितंमाघमाहात्म्यंदत्तात्रेयेणभाषितम् ॥ अधुनाहंप्रवक्ष्यामिमाघ-स्नानस्ययत्फलम् ॥ १ ॥ सर्वक्रतुवरिष्ठंतुसर्वदानफलप्रदम् ॥ सर्वव्रततपस्तुल्यंमाघस्नानंपरं-



वसिष्ठजी बोले—दत्तात्रेय के द्वारा वर्णन किया हुआ माघमास माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, अब मैं माघस्नान के फलका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ माघस्नान समस्त यज्ञोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट है, जितने प्रकार के दान हैं उन सभी के देने से जो फल मिलता है, माघस्नान करने से भी उसी फल की प्राप्ति होती, माघस्नान समस्त व्रतों

हैं ॥ २ ॥ हे परन्तप ! महाराज !! दिलीप !!! माघस्नान करनेवाले व्यक्ति एवं तपस्याओं के समान पुण्यदायक अपने पितरों को स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित करके इच्छाचारी सुन्दर २ विमानों में आरूढ़ हो स्वयं स्वर्गको चले जाते हैं और उनके मुखों की कान्ति निर्मल हो जाती है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य सदैव पापी, दुराचारी और कुमार्गगामी होते

तपः ॥ २ ॥ स्नानेनमाघस्यदिलीपमानवःपितॄन्दिविस्थाप्यकुलद्वयस्यवै ॥ स्वर्गं प्रयांति-स्वयमुज्ज्वलाननावरैर्विमानैरुचिरैश्चकामगैः ॥ ३ ॥ येमानवाःपापकृतोपिसर्वदासदादुरा-चाररताविमार्गगाः ॥ स्नात्वाहिमाघेहरिमर्चयन्तिमुंचंतितेपीहमहाघसंचयम् ॥ ४ ॥ सत्येन-हीनाःपितृमातृदुःखदाह्यनाश्रमस्थाःकुलधर्मवर्जिताः ॥ येदांभिकास्तेपिनराःसतांगतिंस्नानैः प्रयांत्यत्रहिमाघसंभवैः ॥ ५ ॥ पुण्येषुतीर्थेषुचमाघमज्जनंस्नानंनराणामतिदुर्लभंभुवि ॥ तस्माद्यतोब्रह्मविदांगतिंवरांसंप्राप्यतेनात्रविचारणामम ॥ ६ ॥ माघेतपोदानजपःप्रसेवनंस्थानंहरेः

हैं, वे भी यदि माघमें स्नान करके हरि की अर्चा (पूजा) करैं तो उनके प्रभूत पापों का संचय नष्ट हो जाता है ॥४॥ जिन्होंने कभी सत्य नहीं बोला, जो अपने माता पिताओंको दुःख देते हैं, जिनकी स्थिति किसीभी आश्रम में नहीं है, जिन्होंने अपने कुलधर्मका परित्याग कर दिया है और जो दम्भी ( पाखंडी ) हैं वे भी यदि माघमास में स्नान करैं तो उन्हें सद्गति की प्राप्ति होती है ॥५॥ भूमिके ऊपर यह बात अत्यन्त ही दुर्लभ है कि—माघके महीनेमें कोई तीर्थ-

स्नान करने को प्राप्त हो जाय, सुतराम् इस विषय में हमलोगों को कोई भी विचार न करना चाहिये कि, माघस्नान करनेवालों को ब्रह्मज्ञानियोंके समान सद्गति मिलती है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! माघमासमें तप, दान, जप, हरिमन्दिरका सेवन और हरिका पूजन करना ये सब कार्य अक्षय होते हैं, इसलिये मनुष्यों को सर्वथा यत्न पूर्वक माघमास में स्नान करके वस्त्र, अग्नि ( अँगीठी आदि ) और सुवर्ण का दान करना कर्त्तव्य है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य माघमासमें

पूजनमक्षयंनृप॥तस्माद्यथाशक्तिनरैःप्रयत्नतःस्नात्वाप्रदेयंवसनाग्निकांचनम्॥७॥ माघेऽन्नदाताऽमृतपःसुरालयेहेम्नश्चदाताबलभित्समीपगः॥ दीपाग्निवासांसिददन्नरःसदासूर्यस्यलोकेवसतिप्रभामयः ॥ ८ ॥ यज्ञैःसुदानैःसुतपोभिरुज्ज्वलैःसुब्रह्मचर्यैर्वरयोगसेवया ॥ शुद्धाभवंतीहतथानपापिनःस्नानैर्यथातीर्थभवैश्चमाघजैः ॥ ९ ॥ दुःखौघसंततमसह्ययातनांयाम्यांनतेयांत्यपिपापकारिणः ॥ येमाघमासेवरतीर्थमज्जनंकुर्वंतिचार्धोदितसूर्यमंडले ॥ १० ॥ स्नात्वा-

अन्नका दान करता है उसे देवलोक में अमृतपान करने को मिलता है, सुवर्णदान करनेवालोंकी इन्द्र के निकट स्थिति होती है और जो व्यक्ति दीपक अग्नि एवं वस्त्रों का दान करता है वह तेजस्वी होकर नित्य ही सूर्य लोक में निवास करता है ॥ ८ ॥ यज्ञ, उत्तमोत्तम दान, उग्र तथा उज्ज्वल तप, ब्रह्मचर्य्य धारण और शुभयोग सेवा करने से मनुष्य इतने शुद्ध नहीं होते जैसे कि माघमास में तीर्थों के जल के द्वारा स्नान करने से शुद्ध होते हैं ॥९॥ जो पापी

उन्हें अनेक दुःखों का सन्ताप और
व्यक्ति माघमास में अर्ध सूर्योदय होने के समय श्रेष्ठतीर्थों में स्नान करते हैं,
असह्य यमयातना नहीं भोगनी पड़ती ॥ १० ॥ जो पुरुष माघमें स्नान कर हरि भगवान् की अर्चना करते हैं, उनकी
जब स्वर्ग से च्युति होती है तब वे भूमण्डल के ऊपर कल्याणमूर्ति, सुन्दर रूपवान् अतएव मनोहर प्रिय संभाषण
करनेवाले धर्मात्मा प्रभूत धनशाली और शतायु राजा होते हैं ॥ ११ ॥ प्रदीप्त अग्नि में निक्षिप्त हुआ काष्ठसमूह जैसे




चमाघेहरिमर्चयंतियेस्वर्गच्युताभूपतयोभवंति ॥ भव्याःसुरूपाःसुभगाःप्रियंवदाधर्मान्विताः
भूरिधनाः शतायुषः ॥ ११ ॥ दीप्तेऽनलेकाष्ठचयोयथाहुतोभस्मावशेषोभवतीहतत्क्षणात् ॥
स्नानेनमाघस्यतथाविलीयतेक्षुद्रोपिपापौघमहाघसंचयः ॥ १२ ॥ कायेनवाचामनसापिपातकं
ज्ञातंयदज्ञातमलंकृतंनरैः ॥ स्नानंचमाघेवरतीर्थमज्जनंसर्वं दहेद्विष्णुरिवासुरंद्रुतम् ॥ १३ ॥
संभुज्यमानाघफलंहिपार्थिवप्रमादतोपीहनृणांकदाचन ॥ स्नानंतुमाघस्ययदिप्रसज्जतेतदवतत्सं-

तत्काल भस्म हो जाता है उसी प्रकार माघस्नान करने से छोटे बड़े पाप सब क्षय हो जाते हैं ॥१२॥ मनुष्यों ने मन
वचन काया से जो पाप ज्ञान अथवा अज्ञान से किया हो उसका नाश माघस्नान इस प्रकार कर देता है जैसे भगवान्
शीघ्रही असुरों का सत्यानाश कर देते हैं ।१३॥ हे भूपाल ! यदि कोई मनुष्य अपने किये पापों का उपभोग कर रहा
हो और उसी समय उससे माघस्नान बन पड़े तो तत्काल ही उसके पापों का क्षय हो जाता है इसमें कोई भी सन्देह



नहीं है ॥ १४ ॥ हे भूमिपाल ! ... उपभोग कर रही थी, जब

हो और उसी समय उससे माघस्नान बन पड़े तो तत्काल ही उसके पापों का क्षय हो जाता है

नहीं है ॥ १४ ॥ हे भूमिपाल ! गन्धर्वों की कन्याएं शापजनित पाप के कठिन फल का उपभोग कर रही थीं, जब उन्हें लोमशजी ने उपदेश दिया तब वे माघस्नान करके पाप से मुक्त हो गईं ॥ १५ ॥ इति माघ मासमाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥





क्षयमेतिनिश्चितम् ॥ १४ ॥ गंधर्वकन्याःपृथिवीश शापजंसंभुज्यमानाघफलंदुरत्ययम् ॥ स्नानाद्विमुक्ताः खलुमाघमासजाद्वाक्यात्पुरालोमशजातमद्भुतम् ॥ १५ ॥ इति श्रीपद्म-पुराणे उत्तरखंडे माघमासमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सूतउवाच ॥ श्रुत्वैतत्पार्थिवःप्रीत्यानत्वातत्पादपंकजम् ॥ श्रद्धयापरयानम्रस्तंपप्रच्छ-पुरोधसम् ॥ १ ॥ भगवन्ब्रूहिकन्याभिःशापोऽधिगतःकुतः ॥ कस्यापत्यानितास्तासांनाम-किंकीदृशंवयः ॥२॥ कथंलोमशवाक्येनविपाकाच्छापसंभवात् ॥ विमुक्ताःकुत्रा ताःसस्नुर्मा-

सूतजी बोले—जब राजा ने उनके ऐसे वाक्य सुने तब उसने प्रीति पूर्वक उनके चरणों में प्रणाम किया और नम्र होकर परम श्रद्धापूर्वक राजा ! पुरोहितजी से प्रश्न करने लगा ॥ १ ॥ हे भगवान् ! आप मुझे यह बताइये कि कन्याओं को शापकी प्राप्ति कैसे हुई वे किसकी सन्तान थीं और उनके नाम एवं अवस्थायें क्या थीं ॥ २ ॥ लोमश

जी के वाक्य से उनके शापका अन्त किस प्रकार हुआ उन्होंने माघ में कहाँ स्नान किया था, अथच वे संख्या में कितनी थीं ?॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले सुनिये राजशार्दूल ! हम धर्मपूर्ण कथा वर्णन करते हैं जैसे अरणीमें अग्नि व्याप्त रहती है, वैसेही धर्म रूपी अग्निको उत्पन्न करनेवाली अरणीके समान ॥४॥ सुखसंगीती गन्धर्व की प्रमोदिनी कन्या थी,

घंयाः कतिसंख्यया ॥ ३ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ श्रूयतांराजशार्दूलधर्मगर्भांकथां पराम् ॥ यथाः रणिर्वह्निगर्भाधर्मसूर्वह्निसूरिव ॥ ४ ॥ गंधर्वःसुखसंगीतिस्तस्यकन्याप्रमोदिनी ॥ सुशीलस्यसुशीलाचसुस्वरास्वरवेदिनः ॥ ५ ॥ सुताराचंद्रकांतस्यचंद्रिकासुप्रभस्यच ॥ इमानिवरनामानिताःसाप्सरसांनृप ॥ ६ ॥ कुमार्यःपंचसर्वास्तावयसासुसमाः पुनः ॥ चंद्रादिवविनिष्कांताश्चंद्रिकेवसमुज्ज्वलाः ॥ ७ ॥ चंद्राननाःसुकेशिन्यश्चंद्रामृतरसाधराः ॥ नेत्रेष्वानंदकारिण्यः कौमुदीकुमुदेष्विव ॥ ८ ॥ लावण्यपिंडसंभूताश्चारुरूपामनोहराः ॥ उद्भिन्नकुचकुंभिन्यःपद्मिन्यः

सुशील की सुशीला, स्वरवेदा की सुस्वरा ॥५॥ चन्द्रकान्तकी सुतारा, सुप्रभकी चन्द्रिका थी, हे राजन् ! उन श्रेष्ठ-अप्सराओंके येही नाम हैं ॥६॥ ये पाँचों कन्याएँ कुमारी थीं और सबकी अवस्था भी समान ही थी और वे सब ऐसी सुन्दरी थीं, जैसे चन्द्रमा में से उज्ज्वल चाँदनी का प्रकाश होता है ॥७॥ उनका मुख चन्द्रमाके समान, केश सुन्दर

और उनके ओंठो का रस चन्द्रमा के समान था, जैसे चन्द्रमा की चाँदनी कुमुदोंमें प्रफुल्लता का संचार करती है ऐसे ही उनके दर्शनसे नेत्रों में आनन्दका संचार होता था ॥८॥ मानों उनका प्रादुर्भाव सुन्दरता के पिण्ड से ही हुआ था, अतएव उनका रूप सुन्दर और मनोहर था, उनके कुच कुम्भ के समान उभरे हुए थे, सुतराम् वे वैशाख मासमें कमलिनीके समान प्रतीत होती थीं ॥ ९ ॥ जैसे नवीन पल्लवों से वनकी बेलिकी नवीनता प्रगट होती

इवमाधवे ॥ ९ ॥ उन्मीलयौवनंकांतंवल्लीवनपल्लवैः ॥ हेमगौराश्चहेमाभाहेमालंकार-
भूषिताः ॥ १० ॥ हेमचंपकमालिन्योहेमच्छविसुवाससः ॥ स्वरग्रामावलीहासविविधामूर्छिना-
सु च ॥ ११ ॥ तालदानविनोदेषुवेणुवीणाप्रवादने ॥ मृदंगनादसंभिन्नलास्यमार्गलवेषुच ॥१२॥
चित्रादिषुविनोदेषुकलासुचविशारदाः ॥ एवंभूतास्तुताःकन्यामुमुहुःक्रीडनेवने ॥ १३ ॥
पितृभिर्लालिताःसत्यश्चेरुश्चधनदालये ॥ कौतुकादेकपादंचमिलित्वामासिमाधवे ॥ कन्या-

है उसी प्रकार उनमें भी नवीन यौवन भरा हुआ था, उनका वर्ण सुवर्ण के समान था, अतएव उनकी प्रभा भी सुवर्ण के समान थी, उन्होंने सुवर्ण के आभूषण धारण कर रक्खे थे ॥ १० ॥ वे सुवर्ण निर्मित चम्पाकी माला को धारण किये हुए थीं, उन्होंने सुवर्ण जैसे चमकीले वस्त्रों का परिधान किया था, एवंच स्वरग्राम हावभाव कटाक्ष और मूर्च्छना ॥ ११ ॥ ताल देने का विनोद, वेणु तथा वीणा का बजाना, मृदंग का बजाना, नृत्य ॥१२॥ चित्र विचित्र

विनोद अथच सब भाँतिकी कलाओं में वे सभी चतुर थीं। ऐसी वे कन्याएँ बन में क्रीडा करती २ मोहको प्राप्त हो गइ॥ १३॥ वे कन्याएँ पिताओंके द्वारा पालित होकर कुबेरके भवनमें विचरती थीं। एक समय कौतुक ही से वे सब वैशाखमें एक वनसे दूसरे बन में जाकर पारिजात ( कल्प वृक्ष ) के पुष्पोंका संचयन करने लगीं॥ १४॥ एक



मंदारपुष्पाणिविचिन्वंत्योवनाद्वनम् ॥ १४॥ गौरींसमाराधयितुंवरांगनाःकदाचिदच्छोदस- रोवरंययुः॥ हेमांबुजानिप्रवराणिताःपुनस्तस्मादुपादायवरोत्पलैःसह॥ १५॥ वैडूर्यशुद्ध- स्फटिकाच्छविद्रुमेस्नात्वातडागेपरिधायचांबरम्॥ मौनेनचस्थंडिलपिंडिकामयींस्वर्णस्यसिक्ता- भिरुमांविनिर्ममुः॥ १६॥ समर्चितांचंदनचंद्रकुंकुमैरभ्यर्च्यगौरींवरपंकजादिभिः॥ नानो- पचारैश्चसुभक्तिभाविताम्ताःक्रमयोगैर्ननृतुःकुमारिकाः॥ १७॥ गांधारमाश्रित्यवरंस्वरंततो-

समय वे शोभनांगी कन्याएँ गौरी की आराधना करनेके लिये किसी स्वच्छ सरोवर में पहुँची, और उन्होंने उनमें से उत्तमोत्तम कमलों को तोड़ा॥ १५॥ वैदूर्य्य और शुद्ध स्फटिकके सदृश स्वच्छ जलवाले मूँगोंसे जटित सरोवर में स्नान करके उन्होंने वस्त्रों का परिधान किया और फिर वे मौन धारण पूर्वक स्वर्णमयी बालुकाकी पार्वती बनाने लगीं॥ १६॥ चन्दन कुंकुम और कमल आदि से गौरी की पूजाकर और भक्तिभाव पूर्वक अनेक उपचारों के द्वारा



पूजन करके वे कुमारिकाएँ गौरी के आगे नृत्य करने लगीं॥ १७॥ [illegible] कन्याओं ने गान्धार स्वर का

पूजन करके वे कुमारिकाएँ गौरी के आगे नृत्य करने लगीं ॥ १७ ॥ मृगनयनी उन कन्याओं ने गान्धार स्वर का उत्थान करके उच्चस्वर से सुन्दर गान का प्रारम्भ किया, उस समय उनके गान का वाक्य विन्यास स्वर और प्रबन्ध अत्यन्त ही उत्तम था ॥ १८ ॥ इस विधि से जिस समय वे कन्यायें उस रसको बरसाने वाला अतएव आह्लाद जनक गान करने में मत्तहो रही थीं, उसी समय निर्मल तीर्थ में स्नान करनेके लिये महामुनि वेदनिधि के पुत्र अग्निप ऋषि

गेयंसुतारध्वनिभिःसुमूर्छितम् ॥ एणीदृशस्ताःप्रजगुःकलाक्षरंचारुप्रबंधंगतिभिस्तुसुस्वरम् ॥ १८ ॥ तस्मिन्नसुनादेरसवर्षहर्षदेकन्यास्वलंनिर्भरनृत्यवृत्तिषु ॥ अत्रोदतीर्थप्रवरेतदागतः स्नातुंमुनेर्वेदनिधेःसुतोग्निपः ॥ १९ ॥ रूपेणनिःसीमतरोवराननःसरोजपत्रायतलोचनोयुवा ॥ विशालवक्षाःसुभुजोतिसुन्दरःश्यामच्छविःकामइवापरोह्यसः ॥२०॥ सब्रह्मचारीसशिखोविराजतेदंडेनयुक्तोधनुषेवमन्मथः ॥ एणाजिनप्रावरणःसुसूत्रधृग्धेमाश्ममौंजीकटिसूत्रमेखलः ॥२१॥

आनकर उपस्थित हुए ॥ १९ ॥ उसका रूप मानों सीमा का उल्लंघन कर डाला था, उसका मुख अत्यन्त सुन्दर था उस युवा के नेत्र कमलपत्रके समान विस्तृत थे, उसकी भुजायें लम्बी २ और वक्षस्थल विशाल था, उसकी छवि श्याम थी अतएव वह अत्यन्त सुन्दर था, विशेष क्या कहैं वह दूसरे कामदेव के समान प्रतीत होता था ॥ २० ॥ उस ब्रह्मचारी के, शिर पर शिखा थी, दण्ड रूपी धनुष से वह कामदेव के समान प्रतीत होता था, उसने मृगचर्म का

वस्त्र धारण कर रखा था, उत्तम यज्ञोपवीत और सुवर्ण जैसी चमकीली मूँजकी कटिमेखला को भी उसने धारण किया था ॥ २१ ॥ जब उन बालिकाओं ने सरोवर के तटपर उक्त ब्राह्मण के दर्शन किये तब कौतुक से व्याप्त होकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कि, हमारे नेत्रों के अतिथि यह महाशय कौन हैं ॥२२॥ नृत्य और गान का परित्याग कर वे कन्यकाएँ उसी के दर्शन करने में निरत हो गईं, जैसे अहेरी हरिणियों को आविद्धकर





तंदृष्ट्वाब्राह्मणंबालास्तास्तत्रसरसस्तटे ॥ जहृषुःकौतुकाविष्टाःकोयंनोनयनातिथिः ॥२२॥ संत्यक्तनृत्यगीतास्तास्तस्यालोकनतत्पराः ॥ हरिण्योलुब्धकेनेवविद्धाःकामेनसायकैः ॥२३॥ पश्यपश्येतिजल्पंत्योमुग्धाःपंचसुसंभ्रमम् ॥ तस्मिन्विप्रवरेयूनिकामदेवभ्रमंययुः ॥२४॥ पुनः पुनस्तमभ्यर्च्यनयनैःपंकजैरिव ॥ पश्चाद्विचारयामासुस्ताश्चकन्याःपरस्परम् ॥ २५ ॥ यद्ययं कामदेवोहिरतिहीनः कथं व्रजेत् ॥ अथायमश्विनौदेवौतोनूनंयुग्मचारिणौ ॥ २६ ॥ गंधर्वः

लेता है इसी प्रकार वे भी सब कामबाणों से पीड़ित हो गईं ॥२३॥ उन पाँचों को उक्त युवा ब्राह्मण में कामदेव की भ्रान्ति हो गई, अतएव वे संभ्रम पूर्वक परस्पर देख २ कहने लगीं ॥ २४ ॥ प्रथम तो कमल जैसे नेत्रों से उसकी बार २ अर्चना कर पीछे वे कन्याएँ परस्पर विचार करने लगीं ॥ २५ ॥ कि यदि यह कामदेव हैं तो रति रहित होकर क्यों विचर रहे हैं ? और यदि इन्हें अश्विनी कुमार समझा जाय तो वे दोनों साथही रहते हैं ॥ २६ ॥



अथवा किसी गन्धर्व, किन्नर किंवा सिद्ध ... है, अथवा यह कोई ऋषि कुमार है वा कोई

रहित होकर क्यों विचर रहे हैं ? और यदि इन्हें अश्विनी कुमार समझा जाय तो वे दोनों साथ ही रहते हैं ॥ २६ ॥



अथवा किसी गन्धर्व, किन्नर किंवा सिद्ध ने कामरूप धारण किया है, अथवा यह कोई ऋषि कुमार हैं वा कोई पुरुषोत्तम ही हैं ॥२७॥ यह चाहें कोई भी क्यों न हों, किन्तु विधाता ने इन्हें हमारे हितके लिये ही निर्माण किया है जिस प्रकार सौभाग्यशालियों को अपने पूर्व कर्मानुसार अर्थ निधि ( खजाने ) की प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ इसी प्रकार करुणा के जलकी तरङ्गों से जिसका चित्त आर्द्र हो गया है, ऐसी पार्वती ने हम कुमारिकाओं के लिये यह उत्तम वर



किन्नरोवाथसिद्धोवाकामरूपधृक् ॥ ऋषिपुत्रोथवाकश्चित्कश्चिद्वामानुषोत्तमः ॥ २७ ॥
अस्तुवाकश्चिद्देवोयंधात्रासृष्टोहिनःकृते ॥ यथाभाग्यवतामर्थेनिधानंपूर्वकर्मभिः ॥ २८ ॥
तथास्माकंकुमारीणां गौर्यानीतोवरोत्तमः ॥ करुणाजलकल्लोलप्लावार्द्रीकृतचित्तया ॥ २९ ॥
मयावृतस्त्वयाचायंत्वयावृतस्तथामया ॥ एवंपंचसुकन्यासुवदंतीषुनृपोत्तम ॥ ३० ॥ श्रुत्वा-
तद्वचनंतत्रकृत्वामाध्याह्निकींक्रियाम् ॥ आलोच्यहृदयेसोपिविघ्नमेतदुपस्थितम् ॥ ३१ ॥

भेजा है ॥ २९ ॥ हे नृपसत्तम ! जिस समय वे पाँचों कन्याएँ परस्पर यों कह रहीं थीं कि इसको मैंने वरा, तूने वरा, हम तुम दोनों हो ने इसको वरण किया ॥३०॥ तब महर्षि कुमार ने मध्याह्न की क्रियासे निवृत्त हो उनके वाक्योंको सुनकर अपने हृदय में यह विचार किया कि, यह बड़ा भारी विघ्न उपस्थित हो गया ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि जितने देवता हैं वे सब एवं योगबलशाली प्राचीन सिद्ध और मुनीश्वर गण भी स्त्रियों की अद्भुत लीलाओं

के द्वारा मोहित किये जा चुके हैं ॥ ३२ ॥ जब कामदेव धनुष धारी स्त्रियों के नेत्ररूप तीक्ष्णबाणोंको भृकुटिरूप दृढ़ धनुष से परित्याग करता है तब भला किसका मन रूप मृग निपतित नहीं हो जाता ॥३३॥ नीति और धीरज तभी तक दृढ़ रह सकता है तभी तक मनुष्योंको भय बना है, तभी तक चित्त भी दृढ़ है, और तभी तक कुल की गणना तथा ॥३४॥

ब्रह्मविष्णुगिरिशादयःसुरायेचसिद्धमुनयःपुरातनाः ॥ तेपियोगबलिनोविमोहिता लीलयात-दबलाभिरद्भुतम् ॥ ३२ ॥ योषितांनयनतीक्ष्णसायकैभ्रू लतासुदृढचापनिर्गतैः ॥ धन्विनाम-करकेतुनाहतःकस्यनोपततिहामनोमृगः ॥ ३३ ॥ तावदेवनयधीर्विराजतेतावदेवजनताभयं-भजेत् ॥ तावदेवदृढचित्तताभृशंतावदेवगणनाकुलस्यच ॥ ३४ ॥ तावदेवतपसःप्रगल्भता-तावदेवयमधारणंनृणाम् ॥ यावदेववनितेक्षणबाणैर्मोहमेत्युरुमदैर्नमानुषाः ॥ ३५ ॥ मोहयं-तुमदयंतुरागिणांयोषितःसुललितैर्मनोहरैः ॥ मोहयंतिमदयंतिमामिमांधर्मरक्षणपरंहिकै-

तप की धृष्टताभी उसी समय तक है, मनुष्य यमनियमोंको भी तभीतक धारण कर सकते हैं कि, जबतक स्त्रियोंकी दृष्टिके तीव्र बाण पुरुषों को मोहित नहीं करते हैं ॥ ३५ ॥ विषयी जीवों के मन स्त्रियों के द्वारा मोहित हो जाते हैं, सुतराम् ये मुझे भी मोहित कर लेंगी तब भला कौन से गुणों के द्वारा धर्मकी रक्षा हो सकेगी ॥३६॥ मांस वीर्य बल

सुतराम् ये मुझे भी मोहित कर लेंगी तब भला कौन से गुणों के द्वारा धर्मकी रक्षा हो सकेगी ॥३६॥ मांस वीर्य बल



मूत्र से निर्मित हुए, अपवित्र अतएव घिनौने स्त्रियोंके शरीरमें सुन्दरताकी कल्पना करके मूर्ख कामियों को उनमें रमण नहीं करना चाहिए ॥ ३७ ॥ निर्मल बुद्धिवाले महात्माओं ने स्त्रियों के संसर्ग ही को बड़ा दारुण कहा है, अतएव ये जबतक मेरे निकट न आवें तभी तक मैं घरको चला जाऊँ ॥ ३८ ॥ वे स्त्रियें जबतक उन महात्माके

र्गुणैः ॥ ३६ ॥ मांसशुक्रमलमूत्रनिर्मितेयोषितांवपुषिनिर्घृणेऽशुचौ ॥ कामिनश्चपरिकल्प्य- चारुतामारमन्तुसुविमूढचेतसः ॥३७॥दारुणोहिपरिकीर्तितोऽगनासन्निधिर्विमलबुद्धिभिर्बुधैः॥ यावदत्रनसमीपगाइमास्तावदेवहिगृहंव्रजाम्यहम् ॥ ३८ ॥ समीपंतस्ययावद्धिनागच्छंतिवरां- गनाः वैष्णवेनप्रभावेणतावदंतर्दधेद्विजः ॥ ३९ ॥ तस्य योगबलाद्भूपतस्यादर्शनंतदा ॥ दृष्ट्वाद्द्भुतंकर्मऋषिपुत्रस्य धीमतः ॥४०॥ वित्रस्तनयनाबालाःकुरंग्यइवकातराः॥ संभ्रांतन- यनाःशून्यादद्दशुस्तादिशोदश ॥४१॥ इंद्रजालंस्फुटंवेत्तिमायाजानातिवापुनः॥ दृष्टोप्यदृष्टरू-

निकट न आने पाईं इतनेमें वे स्वयं ही वैष्णव प्रभावसे अन्तर्धान हो गये ॥३९॥ हे राजन् ! योगके बलसे अदर्शन को प्राप्त हुए ऋषिकुमार के इस अद्भुत कर्मका अवलोकन करके ॥४०॥ वे अबलाएँ मृगी की भाँति व्याकुल हो गईं अतएव उनके नेत्रों की चपलता से भी भय प्रतीत होने लगा, उनके ठगेसे नेत्रों को दशों दिशायें सूनी प्रतीत

होने लगीं ॥ ४१ ॥ वे परस्पर यों कहने लगीं कि—वह व्यक्ति यातो इन्द्रजाल जानता है, अथवा उसे कोई माया विदित है, जिससे कि वह दीव्रता २ ही अदृश्य हो गया ॥४२॥ उनका हृदय वियोग की अग्नि से इस प्रकार सदैव व्याप्त रहने लगा, जैसे प्रचण्ड दावानल घने बनको व्याप्त कर लेता है ॥४३॥ हे कान्त ! ऐन्द्रजालिक मायाको छोड़कर

पोऽभूदित्यूचुश्चपरस्परम् ॥४२॥ व्याप्तंतुहृदयंतासांसदैवविरहाग्निना ॥ ज्वलद्दावानलेनेवक्षुस्नि- ग्धंसांद्रकाननम् ॥४३॥ त्यक्त्वैंद्रजालिकींविद्यांकांतदर्शयसत्वरम् ॥ स्वात्मानंनोमनोयुक्तंप्राग्ग्रा- सेमक्षिकोपमम् ॥४४॥ हाकष्टंदर्शितःकस्माद्धात्रात्वंघटितःपुनः ॥ ज्ञातं महानुसंतापहेतोर्नस्त्वं- विनिर्मितः ॥४५॥ कच्चित्तेनिर्दयंचेतःकच्चिदस्मासुनोमनः ॥ कच्चिद्धूर्तोसिहेकांतकच्चि- न्मुष्णासिनोमनः ॥४६॥ कच्चिन्नप्रत्ययोऽस्मासुकच्चिदस्मान्परीक्षसे ॥ कच्चिन्नर्मकलाशीलः

हमारे अभीष्ट अपने दर्शन हमें दीजिये, प्रथम ग्रासहीमें मक्षिका-पात हो जाना ठीक नहीं ॥ ४४ ॥ हाय !!! बड़े दुःखकी बात है कि, विधाताने तुम सुघड़ के हमें दर्शन ही क्यों कराये, हाँ समझ गईं हमारे सन्तापही के लिये ईश्वरने तुम्हें निर्मित किया है ॥४५॥ क्या तुम्हारे चित्तमें दया नहीं है, अथवा हमारे ऊपर तुम्हारी इच्छा नहीं है ? क्या तुम धूर्त्त हो ? वा हमारे मनहीको ठगते हो ॥४६॥ क्या हमारा आपको विश्वास नहीं है, या आप हमारी परीक्षा कर

रहे हैं, अथवा तुम कलाओं के ज्ञाता या मायावी हो ॥४७॥ अथवा यह बात है कि—आप किसीके चित्तमें प्रवेश के लिये अपने में कमीका होना समझते हैं और उसमें से निकलनेका उपाय आपको विदित नहीं है ॥४८॥ अथवा विनाही अपराध आप हमारे ऊपर क्रोधित हो गये हैं ? अथवा यह हो सकता है कि, आप दूसरोंको धोखा देकर उनको

कच्चिन्मायाविशारदः ॥४७॥ कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं चवेत्सिविज्ञानलाघवम् ॥ कच्चिन्निष्क्रमणोपायंनजानासिकुतःपुनः ॥ ४८ ॥ कच्चिद्विनापराधंतुत्वमस्मासुप्रकुप्यसे ॥ कच्चित्त्वद्दुःखंविजानासिपरेषांविप्रलंभनम् ॥ ४९ ॥ त्वद्दर्शनंविनानूनंहृदयेश्वरसांप्रतम् ॥ नजीवामोथजीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाशया: ॥ ५० ॥ अस्मांश्चनीयतांतत्रयत्रशीघ्रंगतोभवान् ॥ त्वद्दर्शनहरोधाताव्यदधाद्दंकुरच्छिदम् ॥ ५१ ॥ सर्वथादर्शनंदेहिकारुण्यंभजसर्वथा ॥ पर्यंतंनप्रपश्यंतिसर्वथासज्जनाजनाः ॥ ५२ ॥ इत्थं विलप्यता कन्या प्रतीक्ष्यबहुलक्षणम् ॥ पितुर्भियागृहंगंतुंशीघ्र-

दुःख देना ही जानते हैं ॥४९॥ हे हृदयेश ! संप्रति आपके दर्शन पाये बिना हम जीवित नहीं रह सकतीं, और यदि जीवित रहीं भी तो आपके दर्शनोंकी आशाही से रहेंगी ॥५०॥ जहाँ आप हैं, हमें भी शीघ्रही वहाँ ले चलिये, विधाताने आपके दर्शन को हरकर हमें बड़ा दुःख दिया है ॥ ५१ ॥ जैसे बने तैसे हमारे ऊपर दया करके हमें दर्शन दीजिये, क्योंकि सज्जन जन अन्तावस्थाका अवलोकन नहीं करते हैं ॥५२॥ इस प्रकार रुदन करती २ वे कन्याएँ बहुत

देरतक तो वहाँ बाट देखती रहीं, फिर पिताके भयसे शीघ्रही घरको चल दीं ॥५३॥ प्रेमकी बेड़ियोंसे जकड़ी हुई, विरहकी वेदनासे अत्यन्त व्याकुल जैसे-तैसे धीरज धरकर वे अबलाएँ अपने घरको चली आईं ॥५४॥ बस जातेही जलयन्त्र (फुहारे) के निकट गिर पड़ीं तब उनकी माताओं ने पूछा कि, यह क्या हुआ ? और तुम्हें इतना विलम्ब क्यों हो गया ॥ ५५ ॥ इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

भारेभिरेगतिस्म ॥ ५३ ॥ तत्प्रेमनिगडैर्बद्धाभृशंविरहविक्लवाः ॥ कथंचिद्धैर्यमालंब्यताः स्वंस्वंगृहमागताः ॥५४॥ आगत्यपतिताः सर्वाजलयंत्रसमीपतः ॥ किमेतन्मातृभिःपृष्टाःकुतः कालात्ययोऽभवत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीपद्मपुराणेउत्तराखंडेमाघमाहात्म्ये दिलीपवसिष्ठसंवादे गंधर्वकन्याविरहप्राप्तिर्नामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कन्या ऊचुः ॥ क्रीडंत्यः किन्नरीभिस्तुसार्धंसंगीतकंमुदा ॥ संस्थितास्तेननज्ञातंदिव-सादिसरोवरे ॥ १ ॥ पथिःश्रांतावयंमातःसंतापस्तेननस्तनौ ॥ मोहेनमहतांचक्तुंनकेना-

कन्याएँ बोलीं—किन्नरीगणके साथ सरोवर पर संगीतकी क्रीड़ा करते २ हमें समयका कुछ बोध न हुआ ॥१॥ और हे माता ! मार्गमें हम सब थक गईं, इसलिये हमारे स्तनोंमें कम्प हो रहा है, और मोह विशेष होने के कारण

और हे माता ! मार्गमें हम सब थक गईं, इसलिये हमारे स्तनोंमें कंप हो रहा है,



हम कुछ भी वर्णन नहीं कर सकती हैं ॥ २ ॥ यों कहकर वे कुमारियें मणिभूमि में लोटने लगीं और वे मुग्धाएँ अपने आकार को छिपाकर माताओं से संभाषण करने लगीं ॥ ३ ॥ कोई प्रसन्न हो क्रीडामयूर को नहीं नचाती थीं और कोई पींजरे में पड़े हुए तोने को कौतूहल से नहीं पढ़ाती थीं ॥ ४ ॥ न कोई नकुल का लालन करतीं और न कोई



प्युत्सहामहे ॥ २ ॥ इत्युक्त्वालुलुठुस्तत्र मणिभूमौ कुमारिकाः ॥ आकारं गोपयंत्यस्ता मुग्धा-
जल्पंति मातृभिः ॥ ३ ॥ काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा ॥ न पाठयति तं कीरं पंजरेऽन्या-
कुतूहलात् ॥ ४ ॥ लालयेन्न कुलं नान्या नोल्लापयति सारिकाम् ॥ अपरातीव संमुग्धा नैव क्री-
डति सारसैः ॥ ५ ॥ भेजिरे न विनोदांस्ता रेमिरे नैव मंदिरे ॥ ऊचिरे बांधवैर्नालं वीणावाद्यं न-
चक्रिरे ॥ ६ ॥ कल्पद्रुमप्रसूनं यद्रसवत्तु सुधोपमम् ॥ मंदारकुसुमामोदि न पपुर्मधुरं मधु ॥ ७ ॥
योगिन्य इव ताः कन्या नासाग्रन्यस्तलोचनाः ॥ अलक्ष्यध्यानसंतानाः पुरुषोत्तममानसाः ॥ ८ ॥

सारिका ( मैंना ) ही को खिलाती थीं और अत्यन्त मुग्ध होने के कारण न कोई हंसों के साथ ही क्रीड़ा करती थीं ॥ ५ ॥ न विनोद करें और न मन्दिर में रमण ही करती थीं, न बन्धु बान्धवों से यथेष्ट संभाषण करें और न वीणा ही बजाती थीं ॥ ६ ॥ सुधा ( अमृत ) के समान सुन्दर रससे परिपूर्ण कल्पवृक्षके पुष्पों और मन्दारके पुष्पों के गन्धसे महकते हुए मधुर मधुको भी वे नहीं पीती थीं ॥ ७ ॥ उन कन्याओं ने योगिनियों के समान अपनी नासि-

काके अग्रभाग में नेत्र लगा रक्खे थे, वे अदृष्ट व्यक्तिका ध्यान करतीं और उनके मनमें पुरुषोत्तम भगवान् की उप-
स्थिति थी ॥ ८ ॥ कभी तो वे झरोखों में छणभर बैठकर जलयन्त्रका निरीक्षण करती थीं, उनके झरोखों के सम्मुख
जलविन्दु बरसते थे और उनके आँगन में चन्द्रकान्त मणियें जड़ रही थीं ॥ ९ ॥ कभी सरोवर में उत्पन्न हुए कमल-
दलों से शय्या का निर्माण करती थीं और कभी सखियें शीतल केलेके दलों से उनको वायु करती थीं ॥ १० ॥ उन

चंद्रकांतमणिच्छन्नेस्रवद्वारिकणद्रवे ॥ क्षणंवातायनेस्थित्वाजलयंत्रेणइक्षणात् ॥ ९ ॥ रच-
यंतिक्षणंशय्यांदीर्घिकांभोजिनीदलैः ॥ वीज्यमानाःसखीभिस्ताःशीतलैःकदलीदलैः ॥ १० ॥
इत्थंयुगसमांरात्रिंमन्वानास्तावराङ्गियः ॥ कथंचिद्धीरतांकृत्वाविह्वलासज्वराइव ॥ ११ ॥ प्रात-
र्व्योममणिंदृष्ट्वामन्यमानाः स्वजीवितं ॥ विज्ञाप्यमातरंस्वांगौरींपूजयितुंगताः ॥ १२ ॥
स्नात्वातेनविधानेनपुष्पैर्धूपैर्यथातथा ॥ विधायपूजनंदेव्यागायंत्यस्तत्रताःस्थिताः ॥ १३ ॥

वरांगनाओं को इस प्रकार वह रात्रि युग के समान प्रतीत हुई, अतएव ज्वर से पीड़ित हुई सी उन अबलाओं ने विह्वल
होते २ भी ज्यों-त्यों करके धीरज धारण किया ॥११॥ जब प्रभात हुआ तब सूर्यनारायण के दर्शन करने से उन्हें अपने २
जीवनकी आशा हुई, तब अपनी २ माताओं से निवेदन करके गौरीका पूजन करने को गईं ॥ १२ ॥ उन्होंने उसी
विधि से स्नान करके धूपदीप से देवी का पूजन किया और फिर वे गान करतीं २ वहाँ ही बैठ गईं ॥१३॥ उसी समय

विधि से स्नान करके धूपदीप से देवी का पूजन किया और फिर वे गान करतीं २ वहाँ ही बैठ गईं ॥१३॥ उसी समय

वह ब्राह्मण भी अपने पिता के आश्रम से अच्छोद सरोवरमें स्नान करने को आया ॥ १४ ॥ अपने परममित्र उक्त ब्रह्मचारी का अवलोकनकर उन कन्याओंके नेत्र ऐसे प्रफुल्लित हो गये, जैसे रात्रिके अन्तमें कमलिनियें खिल जाती है ॥१५॥ उसी समय उन कन्यायों ने ब्रह्मचारी के समीप जाय हाथमें हाथ बाँधकर चारों ओर से उसको घेर लिया ॥ १६ ॥





एतस्मिन्नंतरेविप्रः स्नातुंसोपिसमागतः ॥ पित्राश्रमपदात्तस्मादच्छोदेत्रसरोवरे ॥१४॥ मित्रंदृष्ट्वाशात्र्यंतेनलिन्यइवकन्यकाः ॥ उत्फुल्लनयनाजातास्तंदृष्ट्वाब्रह्मचारिणम् ॥१५॥ गत्वातदैवताःकन्याःसमीपंब्रह्मचारिणः ॥ सव्यापसव्यबंधेनभुजपाशंप्रचक्रिरे ॥१६॥ गतासिधूर्तपूर्वेद्युर्गंतुमद्यनशक्ष्यसे ॥ वृतस्त्वंनूनमस्माभिर्नात्रतेऽस्तुविचारणा ॥ १७ ॥ इत्युक्तोब्राह्मणःप्राहप्रहसन्बाहुपाशगः ॥ युष्माभिरुच्यतेभद्रमनुकूलंप्रियंवचः ॥ १८ ॥ प्रथमाश्रमनिष्ठस्यकिंतुनाद्यापिमेव्रतम् ॥ वेदाभ्यसनशीलस्यपारंयातिगुरोःकुले ॥ १९ ॥ आश्रमेयत्रयोधर्मो

हे धूर्त्त ! कल तुम चले गये थे, पर आज नहीं जा सकते कारण कि, अब हमने तुम्हें घेर लिया है अतएव तुम्हें इसमें कुछ भी विचार न करन चाहिये ॥ १७ ॥ उक्त ब्राह्मण से जब इस प्रकार उन्होंने कहा तब उनकी भुजाओं के जाल में फँसे हुए उस विप्रने कहा कि, तुम शुभ अनुकूल और प्रिय वचन कह रही हो ॥१८॥ परन्तु मैं सबसे पहिले

ब्रह्मचर्य्याश्रम में उपस्थित रहकर गुरुकुल में वेदका अभ्यास कर रहा हूँ और अभी वह मेरा व्रत समाप्त नहीं हुआ है ॥१९॥ जिस आश्रम का जो धर्म है, पण्डितों को उसकी रक्षा करनी चाहिये, सुतराम् हे कन्याओं ! इस समय विवाह करना धर्म नहीं है ॥ २० ॥ उसके ऐसे वचन सुन सब मनोहर ध्वनि से इस प्रकार कहने लगीं। जैसे वैशाख में कोकिला बोलती हैं ॥ २१ ॥ विद्वान् लोग कहते हैं कि-धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम और कामसे धर्मफलका उदय



रक्षणीयःसपंडितैः ॥ विवाहोऽयमतोमन्येनधर्मइतिकन्यकाः ॥ २० ॥ आकर्ण्यतस्यवाक्यानि- तमूचुस्तावचस्ततः ॥ सकलध्वनिसोत्कण्ठाः कोकिलाइवमाधवे ॥ २१ ॥ धर्मादर्थोर्थतःकामः कामाद्धर्मफलोदयः ॥ इत्येवंनिश्चितंशास्त्रेवर्णयंतिविपश्चितः ॥ २२ ॥ स कामोधर्मबाहु- ल्यात्तुरस्तेसमुपागतः ॥ सेव्यतांविविधैर्भोगैःस्वर्गभूमिरियंततः ॥ २३ ॥ श्रुत्वातद्वचनंता- सांप्राहगंभीरयागिरा ॥ तथ्यंवोवचनंकिंतुसमाप्येहंस्वकंव्रतम् ॥ २४ ॥ प्राप्यानुज्ञांगुरोःसर्व-

होता है, लोगों का यही निश्चय है ॥ २२ ॥ धर्म की अधिकता के कारण वही काम तुम्हारे संमुख उपस्थित हो है, अतएव विविध भोगों सहित उसका उपभोग करना चाहिये, तब यह भूमि स्वर्ग के समान प्रतीत होगी ॥२३॥ उनके ऐसे बचन सुन वह गंभीर वाणीसे बोला कि, यद्यपि तुम्हारा कथन सत्य है, तथापि मैं अपने व्रतको समाप्तकर गुरु की आज्ञा पाय विवाह करूँगा, अन्यथा नहीं, इस प्रकार कहने पर वे फिर बोलीं कि हे सुन्दर ! सचमुच

तुम मूर्ख हो ॥ २४-२५ ॥ दिव्य औषधि, दिव्य रसायन, निधिकी सिद्धि, उत्तम कलाएँ, सुन्दरी स्त्रियें, मन्त्र और धर्म की सिद्धि, ये जब प्राप्त हों तब किसीको इसका निषेध न करना चाहिये ॥ २६ ॥ दैववशात् यदि कार्य्य-सिद्धिको प्राप्त होता हो तो नीतिज्ञ व्यक्तिको चाहिये कि, उसमें उपेक्षा न करे, कारण कि, उपेक्षा करनेसे फिर फलका

वैवाहंकर्मनान्यथा । इत्युक्ताःपुनरूचुस्ताःस्फुटंमूढोऽसिसुन्दर ॥ २५ ॥ दिव्यौषधंब्रह्मरसा-यनंचसिद्धिर्निधेः साधुकलावरांगनाः । मंत्रस्तथासिद्धिरसश्चधर्मतोनेमानिषेध्याःसुधियासमा-गताः ॥२६॥ कार्यंहिदैवाद्यदिसिद्धिमागतंतस्मिन्नुपेक्षां न च यातिनीतिगः ॥ यस्मादुपेक्षा-न पुनःफलप्रदातस्मान्नदीर्घीकरणंप्रशस्यते ॥ २७ ॥ सांद्रानुरागाःकुलजन्मनिर्मलाःस्नेहार्द्र-चित्ताःसुगिरःस्वयंवराः ॥ कन्याःसुरूपाखलुचारुयौवनाधन्यालभंतेऽत्रनरास्तुनेतरे ॥ २८ ॥

लाभ नहीं होता, अतएव आलस्य ( अथवा टालमटोल ) करना अच्छा नहीं समझा जाता ॥ २७ ॥ गाढ़ अनुराग करनेवाली, निर्म्मलकुल में प्रादुर्भूत हुई, स्नेह से जिसका चित्त आर्द्र है, जिनका संभाषण उत्तम है, जो अपने आप वरनेकी इच्छा करती हों, सुन्दरी और उत्तम यौवनवाली कन्याएँ अहोभाग्य पुरुषों को ही मिलती हैं, अन्य प्राणियों को नहीं ॥ २८ ॥ कहाँ तो हम उत्तम सुन्दरियें और कहाँ यह वटुक तपस्वी ? अर्थात्-इनमें और हम में परस्पर

वड़ा अन्तर है, यह बात सच मालूम होती है कि, दुर्घटका विधान करने में विधाता वड़ा चतुर है ॥ २९ ॥ इस हेतु संप्रति आप हमें स्वीकार करें तभी कल्याण हो सकता है, अन्यथा यदि आप हमारे साथ गान्धर्व विवाह न करेंगे तो हम जीवित नहीं रह सकतीं ॥ ३० ॥ जब उस धर्मज्ञ ब्राह्मण ने ऐसे वाक्य सुने तब वह कहने लगा कि, हे

क्ववयंवरसुंदर्यःक्वचायंतापसोवटुः ॥ दुर्घटस्यविधानेहिमन्येधातातिपंडितः ॥ २९ ॥ तस्मा-
दस्मादिदानींतुस्त्रीकुर्यान्मंगलंभवान् ॥ गांधर्वेणविवाहेनह्यन्यथानोपजीवितम् ॥ ३० ॥
श्रुतवाक्यस्ततः प्राहब्राह्मणोधर्मवित्तमः ॥ भोमृगाक्ष्यःकथंत्याज्योधर्मोधर्मधनैर्नरैः ॥ ३१ ॥
धर्मश्चार्थश्चकामश्चमोक्षश्चैतच्चतुष्टयम् ॥ यथोक्तंसफलंज्ञेयंविपरीतंतुनिष्फलम् ॥ ३२ ॥ नाका-
लेहंव्रतीकुर्यामतोदारपरिग्रहम् ॥ नक्रियाफलमाप्नोतिक्रियाकालं न वेत्तियः ॥३३॥ यतोधर्म-

मृगनयनियों ! जो मनुष्य धर्म को ही अपना धन समझते हैं वे धर्मको परित्याग कैसे कर सकते हैं ॥ ३१ ॥ धर्म अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंको, यदि यथोक्त विधिसे सेवन किया जाय तभी सफल हो सकते हैं, अन्यथा निष्फल समझना चाहिये ॥ ३२ ॥ मैंने व्रत धारण कर रक्खा है, अतएव मैं कुसमय में स्त्री का पाणिग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि-जो मनुष्य क्रिया के समय को नहीं जानता उसकी क्रिया सफल नहीं हो सकती ॥३३॥ सुनो कन्याओं ! हमारा मन धर्मका विचार करनेमें निरत है, अतएव तुम्हें वरने की इच्छा नहीं करता ॥ ३४ ॥ उस ब्राह्मण को ऐसा

क्योंकि—जो मनुष्य क्रिया के समय को नहीं जानता उसकी क्रिया सफल नहीं हो सकती ॥३३॥ सुनो कन्यकाओं !





हमारा मन धर्मका विचार करनेमें निरत है, अतएव तुम्हें वरने को इच्छा नहीं करता ॥ ३४ ॥ उस ब्राह्मण का ऐसा आशय जान हाथ जोड़े को छोड़ वे स्त्रियें परस्पर एक दूसरी की ओर अवलोकन करने लगीं और प्रमोदनी ने उसके चरणोंको पकड़ लिया ॥ ३५ ॥ एवं सुशीला और सुस्वराने उसकी दोनों भुजायें पकड़लीं, इस प्रकार वे आलिंगन और

विचारेस्मिन्प्रसक्तंममानसम् ॥ तस्माच्छृणुतहेकन्यानसमीहेस्वयंवरम् ॥ ३४ ॥ एवंज्ञात्वा-
शयंतस्यसमीक्ष्यैताःपरस्परम् ॥ करात्करंविमुच्याथजग्राहांघ्रीप्रमोदिनी ॥ ३५ ॥ भुजौजगृ-
हतुस्तस्यसुशीलासुस्वरातथा ॥ आलिलिंगसुताराचचुचुम्बे चन्द्रिकामुखम् ॥ ३६ ॥ तथा-
पिनिर्विकारोसौप्रलयानलसन्निभः ॥ शशापब्रह्मचारीताःक्रोधेनात्यंतमूर्छितः ॥ ३७ ॥ पिशा-
च्यइवमांलग्नास्तत्पिशाच्योभविष्यथ ॥ एवंतेनाशुशप्तास्तास्तंसंत्यज्यपुरःस्थिताः ॥३८॥
किमेतच्चेष्टितंपापह्यनागःसुजनेत्वया ॥ प्रियंकृत्येऽप्रियंकृत्वाधिक्तांधर्मज्ञतांतव ॥३९॥ अनु-

उसके चन्द्रवदन का चुम्बन करने लगीं ॥३६॥ यद्यपि यह सब कुछ हुआ तथापि उस ब्राह्मणमें किसी प्रकारका विकार नहीं हुआ और प्रलयकाल की अग्निके समान उस ब्रह्मचारीने क्रोधसे मूर्छित हो उन सबको शाप दे दिया । ३७ ॥ चूँकि पिशाचिनियों के समान तुम मुझे चिपट गई हो अतएव तुम पिशाचिनी ही हो जाओ, इस प्रकार उससे शापित होकर वे स्त्रियें उसका परित्याग कर उसके आगे खड़ी हो गईं ॥३८॥ अरे पापी ! हम निरपराधिनियोंके प्रति तूने यह

क्या किया ? प्रियकार्य्य के परिवर्तनमें अप्रिय आचरण किया तुम्हारे इस धर्मज्ञान को धिक्कार है ॥३९॥ जो मनुष्य अपने अनुरागी भक्त और मित्रों के प्रति द्रोहका आचरण करते हैं, हमने सुना है उन पुरुषों का दोनों लोक में सुख नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ अतएव हमारे शाप से तू भी शीघ्र ही पिशाच हो जा, यों कहने के अनन्तर वे अबलाएँ



रक्तेषुभक्तेषुमित्रेषुद्रोहकारिणः ।। पुंसोलोकद्वयेसौख्यंनाशंयातीतिनःश्रुतम् ॥ ४० ॥ तस्मा-
त्त्वमपिनःशापात्पिशाचोभवसत्वरम् ॥ इत्युक्त्वोपरताबालानिःश्वसंत्यःक्षुधाकुलाः ॥ ४१ ॥
तदाचान्योन्यसंरंभाच्चस्मिन्सरसिपार्थिव ॥ ताःकन्याब्रह्मचारी सःसर्वे पैशाचमागताः ॥ ४२ ॥
पिशाच्यःसपिशाचश्चक्रंदमानाः सुदारुणम् ॥ क्षपयंतिविपाकंतंपूर्वोपात्तस्यकर्मणः ॥ ४३ ॥
स्वकालेतुफलंत्येवपूर्वोपात्तंशुभाशुभम् ॥ स्वच्छायाइवदुर्वारंदेवानामपिपार्थिव ॥४४॥ क्रंदंति-

लम्बी २ साँस लेने लगीं, एवं मारे भूखके व्याकुल हो गईं ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! तब परस्पर शाप देनेके कारण उसी सरोवर में वे स्त्रियें और ब्रह्मचारी पिशाचिनी–पिशाच हो गये ॥ ४२ ॥ पिशाच और पिशाचिनियें, पूर्वकर्म के दारुणकर्मको रुदन कर २ के दिन व्यतीत करती थीं ॥४३॥ हे राजन् ! पूर्वजन्मार्जित शुभाशुभ अपनी छाया के समान निवारण नहीं किया जा सकता, अतएव वह समय पाकर अवश्य ही फल प्रदान करता है ॥ ४४ ॥ उनके माता

पिता जहाँ-तहाँ रोदन करते फिरते थे, उन अबलाओं को प्रमोद नहीं था, किन्तु प्रारब्धों का भोग अमिट होता है ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर वे पिशाच दुःखित हो भोजन के लिये सरोवर के तटपर इधर-उधर विचरने लगे ॥४६॥ इस प्रकार जब बहुतसा समय व्यतीत हो गया, तब मुनिसत्तम लोमशजी पौषमास की चतुर्दशी के दिन अच्छोदमें



पितरस्तासांमातरस्तत्रतत्रच ॥ अप्रमादश्चबालानांदैवंहिदुरतिक्रमम् ॥ ४५ ॥ ततऊर्ध्वंपिशा-चास्तेआहारार्थेसुदुःखिताः । इतस्ततश्चधावंतोवसंतिसरसस्तटे ॥ ४६ ॥ एवंबहुतिथेकाले-लोमशोमुनिसत्तमः ॥ पौषमासिचतुर्दश्यामच्छोदेस्नातुमागतः ॥ ४७ ॥ दृष्ट्वा तंब्राह्मणंसर्वे पिशाचाःक्षुत्समाकुलाः ॥ धावंतोहंतुकामास्तेमिलित्वायूथवर्तिनः ॥४८॥ दह्यमानास्तुतीव्रेण-तेजसालोमशस्य च ॥ असमर्थाःपुरःस्थातुंसर्वेतेदूरतःस्थिताः ॥ ४९ ॥ तत्रवेदनिधिर्विप्रस्त-दैवहिसमागतः ॥ समीक्ष्यलोमशंराजन्साष्टांगंप्रणिपत्यसः ॥ ५० ॥ उवाचमुनृतांवाचंबद्ध्वा-



स्नान करने को आये ॥४७॥ क्षुधा से व्याकुल हुए उन पिशाचों ने जब उन ब्राह्मण को देखा तब उनका बध करने की कामना से सब जुड़ मिलकर दौड़े ॥४८॥ परन्तु जब लोमशजी के तीव्र तेज से वे सब भस्म होने लगे तब उनके सम्मुख खड़े होनेकी शक्ति न हुई किन्तु दूर जाकर खड़े हो गये ॥४९॥ इतने ही में वहाँ वेदनिधि ब्राह्मण आया

और हे राजन्! उसने लोमशजी के दर्शन करते ही उनके चरणों में प्रणाम कर ॥५०॥ हाथ जोड़ शिर नवाय मनोहर वाणी से बोला कि—हे विप्र! जब बड़े भाग्यका उदय होता है तभी साधुसमागम होता है ॥५१॥ जो मनुष्य गंगा आदि सब तीर्थों में नित्य स्नान करता है और जो साधुसमागम करता है, उन दोनोंका संग करना बहुत उत्तम समझा जाता है ॥५२॥ हे विप्र! गुरु ( महात्माओं ) का समागम दृष्ट और अदृष्ट फल प्रदान करता

शिरसिचांजलिम् ॥ महाभाग्योदयेविप्रसाधूनांसंगतिर्भवेत् ॥ ५१ ॥ गंगादिसर्वतीर्थेषुयोनरः स्नातिसर्वदा ॥ यःकरोतिसतांसंगंतयोःसत्संगतिर्वरा ॥५२॥ गुरूणांसंगमोविप्रदृष्टादृष्टफलो- भुवि ॥ स्वर्गदोरोगहारीचकिंतुसोपद्रवीमतः ॥५३॥ इत्युक्त्वाकथयामासपूर्ववृत्तांतमद्भुतम् ॥ इमागंधर्वकन्यास्तावटुःसोयंममात्मजः ॥५४॥ सर्वेपिशाचरूपेणमिथःशापविमोहिताः ॥ दीना- ननास्तुतिष्ठंतितवाग्रेमुनिसत्तम ॥५५॥ त्वद्दर्शनेनबालानांनिस्तारोऽद्यभविष्यति ॥ सूर्योदयेत-

है, स्वर्ग प्रदान करने और रोगोंका हरनेवाला भी है किन्तु—इसमें उपद्रव बहुत हैं ॥५३॥ यों कहकर उक्त महात्माने पहिले के अद्भुत वृत्तान्तको कह सुनाया कि, ये सब गन्धर्व कन्याएँ हैं और यह बटुक हमारा पुत्र है ॥५४॥ ये सब परस्पर एक दूसरे के शापसे मोहित हो पिशाचयोनि को प्राप्त हो गये हैं, सो हे मुनिसत्तम! ये सब अपने मुख की आकृति को दीन बनाके आपके अगाड़ी खड़े हैं ॥५५॥ अब आपका दर्शन करने से बालाओं का उद्धार हो जायगा,

आकृति को दीन बनाके आपके अगाड़ी खड़े हैं ॥५५॥ अब आपका दर्शन करने से बालाओं का उद्धार हो जायगा,



सूर्योदय होने पर क्या अन्धकार गुफाओं में नहीं जा छिपता है ? ॥५६॥ हे राजन् ! यह सुन लोमशजी का चित्त दयासे आर्द्र हो गया, अतएव वे पुत्रके दुःखसे दुःखित हुए उक्त मुनिके प्रति बोले ॥५७॥ हमारी कृपासे शीघ्र ही

मस्तोमः किं न लीयेतगह्वरे ॥५६॥ श्रुत्वातल्लोमशोराजन्कृपार्द्रीकृतमानसः ॥ प्रत्युवाचमहा- तेजास्तंमुनिंपुत्रदुःखितम् ॥५७॥ मत्प्रसादाच्चबालानांस्मृतिःसपदिजायताम् ॥ धर्मंत्ववच्मि- तंयेनमिथःशापोलयंव्रजेत् ॥५८॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमासमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीप- संवादे गंधर्वकन्याशापप्रदानंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इन बालकों को स्मृति प्राप्त होगी और अब हम उस धर्म का वर्णन करते हैं जिससे कि परस्परका शाप नष्ट हो जायेगा ॥५८॥ इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

वेदनिधि बोले—हे महर्षे ! उस धर्म को शीघ्र बतलाइये जिसके करने से बालकों की मुक्ति हो, अब यह विलम्ब करने का समय नहीं है, क्योंकि शापकी अग्नि बड़ी प्रबल है ॥१॥ लोमशजी बोले—ये लोग हमारे साथ विधिपूर्वक माघस्नान करें तब माघ के अन्त में इनकी शाप से मुक्ति हो जायगी, अन्यथा इनका उद्धार नहीं हो सकता





वेदनिधिरुवाच ॥ महर्षेकथ्यतांधर्मोमुच्यंतेयेनबालकाः ॥ नायंकालोविलंबस्यशापाग्निर्दारुणोयतः ॥१॥ लोमश उवाच ॥ मयासार्धंप्रकुर्वंतुमाघस्नानंविधानतः ॥ शापान्मुच्यंतिमाघांतेनान्यथानिष्कृतिर्भवेत् ॥ २ ॥ शापःपापफलं विप्र पापनाशोभवेन्नृणाम् ॥ माघस्नानेनतीर्थेचइतिमेनिश्चितामतिः ॥ ३ ॥ सप्तजन्मकृतंपापंवर्तमानंचपातकम् ॥ माघस्नानंदहेत्सर्वंपुण्यतीर्थेविशेषतः ॥४॥ प्रायश्चित्तंनपश्यंतियस्मिन्पापेमुनीश्वराः ॥ पातकंपुण्यतीर्थेषुनश्येत्तदपिमाघतः ॥ ५ ॥ ज्ञानकृन्मानसेमाघस्तस्मान्मोक्षफलप्रदः ॥ हिमवत्पृष्ठतीर्थेषुसर्व-

॥२॥ हे विप्र ! शाप और पापका फल तीर्थ में माघस्नान करनेसे नष्ट हो जाता है, हमारी समझमें यह निश्चय बात है ॥३॥ पहिले सात जन्मका किया हुआ और वर्त्तमान पाप माघस्नान एवं विशेषकर पुण्य तीर्थमें माघस्नान करनेसे नष्ट हो जाता है ॥४॥ मुनीश्वरोंको जिस पापका कोई प्रायश्चित नहीं दीखता, पुण्यतीर्थमें माघस्नान करनेसे वह पाप

भी नष्ट हो जाता है ॥५॥ ज्ञानकृत पाप भी माघस्नानसे दूर हो जाते हैं, और हिमालयके ऊपर तीर्थोंमें स्नान करनेसे सब पापों का नाश हो जाता है ॥६॥ वेदवादी महात्माओंने माघस्नान अच्छोदमें करनेसे इन्द्रलोक प्रदान करने वाला और सब पापों का हरनेवाला कीर्त्तन किया है, एवं बदरिकाश्रममें माघस्नान करनेसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥७॥ यदि नर्मदामें माघस्नान किया जाय तो सब पाप-दुःखोंका नाश, समस्त कामनाओंके फलकी प्राप्ति,

पापप्रणाशनः ॥६॥ इन्द्रलोकप्रदोच्छोदेनिर्दिष्टोवेदवादिभिः ॥ सर्वपापहरोमाघोमोक्षदोबदरी- बने ॥७॥ पापहादुःखहारीचसर्वकामफलप्रदः ॥ रुद्रलोकप्रदोमाघोनार्मदेपापनाशनः ॥ ८ ॥ यामुनःसूर्यलोकायभवेत्कल्मषनाशनः ॥ सारस्वतोऽघविध्वंसीब्रह्मलोकफलप्रदः ॥९॥ विशाल फलदोमाघोविशालायांद्विजोत्तम ॥ पातकेन्धनदावाग्निर्गर्भहेतुक्रियापहः ॥१०॥ विष्णुलोका- यमोक्षायजाह्नवःपरिकिर्तितः ॥ सरयूगंडकीसिंधुश्चंद्रभागाचकौशिकी ॥११॥ तापीगोदावरी-

अथच रुद्रलोक का लाभ होता है ॥८॥ यमुनामें माघस्नान करनेसे सूर्यलोक की प्राप्ति और पापों का नाश होता है और सरस्वतीमें माघस्नान करनेसे पापों का नाश होकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥९॥ हे द्विजराज ! विशालामें माघस्नान करनेसे प्रभूत फलों का लाभ होता है, जिस प्रकार दावाग्नि बनको भस्म कर देता है, उसी प्रकार माघस्नान पापों और गर्भवास को नष्ट करता है अर्थात्—माघस्नान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है ॥१०॥

गंगाजीमें माघस्नान करनेसे विष्णुलोक अथवा मुक्ति की प्राप्ति होती है, सरयू, गंडकी, सिन्धु, चन्द्रभागा और कौशिकी ॥११॥ तापी, गोदावरी, पयोष्णी, कृष्णवेणिका, कावेरी और तुङ्गभद्रा अथवा अन्य जो समुद्र गामिनी नदियें हैं ॥१२॥ उनमें स्नान करनेसे मनुष्य शीघ्र ही निष्पाप हो स्वर्गलोक को चला जाता है; नैमिषारण्यमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् का सायुज्य और पुष्करमें माघस्नान करनेसे ब्रह्मा का समीप्य प्राप्त होता है ॥१३॥ कुरुक्षेत्रमें

भीमापयोष्णीकृष्णवेणिका । कावेरीतुंगभद्राच अन्यायाश्च समुद्रगाः ॥१२॥ आशुमाघोनरो-
यातिस्वर्गलोकंविकल्मषः ॥ नैमिषेविष्णुसायुज्यंपुष्करेब्रह्मणोन्तिकम् ॥१३॥ आखंडलस्यलो-
कोहिकुरुक्षेत्रेतुमाघतः ॥ माघोदेवह्रदेविप्रयोगसिद्धिफलप्रदः ॥ १४ ॥ प्रभासेमकरादित्ये-
स्नानाद्रुद्रगणोभवेत् ॥ देवकयांदेवतादेहोनरोभवतिमाघतः ॥ १५ ॥ माघस्नानेनभोविप्रगो-
मत्यांनपुनर्भवः ॥ हेमकूटेमहाकालेओंकारेअमरेश्वरे ॥ १६ ॥ नीलकंठेवुदेमाघाद्रुद्रलोके-

माघस्नान करनेसे इन्द्रलोक मिलता है, देवसरोवरमें माघस्नान करनेसे हे विप्र ! योगसिद्धिके फलकी प्राप्ति होती है ॥१४॥ मकरके सूर्य अर्थात् माघमासमें प्रभास क्षेत्रमें स्नान करनेसे रुद्रगण हो जाता है एवं देवकीमें माघस्नान करनेसे मनुष्यको देवदेहका लाभ होता है ॥१५॥ हे विप्र ! माघमें गोमतीमें स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, हेमकूट, महाकाल, ओंकार, अमरेश्वर ॥१६॥ नीलकंठ अर्बुदमें माघस्नान करनेसे रुद्रलोकमें ऐश्वर्योंका

नहीं होता, हेमकूट, महाकाळ, ओंकार, अमरेश्वर ॥१६॥ नीलकंठ अर्बुदमें माघस्नान करनेसे रुद्रलोकमें ऐश्वर्योंका



उपभोग करना होता है, मकरके सूर्य्यमें मनुष्य चाहे जिस नदीमें स्नान करे ॥१७॥ उसको समस्त कामनाओंके फलकी प्राप्ति होती है, हे द्विजराज! जिनको प्रयागमें माघस्नान करने को मिल जाय उनके अहोभाग्य हैं, क्योंकि गंगा यमुनाके स्नान करनेसे फिर जन्म नहीं होता ॥१८॥ स्वर्गलोकमें स्थित हुए देवता नित्य यह गान करते हैं कि, प्रयागमें माघस्नान बहुत दुर्लभ है, क्योंकि वहाँ माघस्नान करनेसे गर्भवेदना नहीं भोगनी पड़ती,



महीयते ॥ सर्वासांसरितांविप्रसंगमेमकरेरवौ ॥ १७ ॥ स्नानेनसर्वकामानामवाप्तिर्जायते-
नृणाम् ॥ माघस्तुप्राप्यतेधन्यैःप्रयागेद्विजसत्तम ॥ अपुनर्भवदंतत्रसितासितजलंयतः ॥१८॥
गायंति देवाः सततंदिविस्था माघःप्रयागेकिलनोभविष्यति ॥ स्नानान्नरायत्रनगर्भवेदनांपश्यं-
तितिष्ठंतिचविष्णुसन्निधौ ॥ १९ ॥ मज्जंतियेपित्र्यहमत्रमानवास्तीर्थप्रयागेबहुपापकंचुकाः ॥
व्रजंतितेनोनिरयेषुधर्मिणः स्वर्गेशुभेचारुचरंतिदेववत् ॥ २० ॥ तीर्थैर्व्रतैर्दानतपोभिरध्वरैः

और विष्णुभगवान्‌के समीप स्थितिका लाभ हो जाता है ॥१९॥ अतिशय पापका आचरण करनेवाले भी यदि केवल तीन ही दिन प्रयागमें माघस्नान करें तो उन्हें भी नरकमें नहीं जाना होता, किन्तु वे देवताओंके समान स्वर्गमें विचरते हैं ॥२०॥ पूर्वकालमें ब्रह्माजीने तीर्थ, व्रत, दान, तप और यज्ञोंके साथ प्रयागके माघस्नानको तुलामें

धारण किया तो माघस्नान ही भारी उतरा अतएव उसीको सबसे अधिक समझना चाहिये ॥२१॥ पवन, जल अथवा पत्तोंका भोजन कर देहको सुखाके चिरकाल संचित उग्र तपस्याओं का आचरण करने और योगाभ्यास करने से भी मनुष्योंको उस गति का लाभ नहीं होता, कि—जो गति माघस्नान करनेसे मिलती है ॥२२॥ जो मनुष्य



सार्धंविधात्रातुलयाधृतंपुरा ॥ माघेप्रयागस्यतयोर्द्वयोरभून्माघोगरीयानतएवसोधिकः ॥२१॥
वातांबुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ॥ योगैश्चसंयांतिनरानतांगतिंस्नानेन-
माघस्यहियांतियांगतिम् ॥ २२ ॥ स्नाताश्चयेमकरभास्करोदयेतीर्थेप्रयागेसुरसिंधुसंगमे ॥
तेषांगृहद्वारमलंकरोतिकिंभृङ्गावलिःकुंजरकर्णताडिता ॥ २३ ॥ योराजसूयाद्धयमेधयज्ञतः
स्नानात्फलंसंप्रददातिचाधिकं ॥ पापानिसर्वाणिविलोप्यलीलयानूनंप्रयागःसकथंनसेव्यते॥२४॥

मकरके सूर्यमें प्रभात समय प्रयागराजमें गंगा यमुनाके संगममें स्नान करते हैं उनके द्वारपरहस्तिकर्णताडिता भ्रमरावली क्या करेगी अर्थात् वे असामान्य धनाढ्य होंगे ॥२३॥ जिस प्रयागराजमें माघस्नान करनेसे राजसूय अथवा अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक फलकी प्राप्ति होती है, जो तनिक देरमें पापों का लोप कर देता है, उस प्रयागका सेवन क्यों न किया जाय ॥२४॥ प्राचीनकालमें अवन्तिमें वीरसेन नाम एक राजा हुआ था, उसने





नर्मदा के तटपर आकर राजसूययज्ञ किया ॥२५॥ उसने सोलह अश्वमेध यज्ञ किये उनके मार्ग सुवर्णसे सुशोभित थे,

नर्मदा के तटपर आकर राजसूययज्ञ किया ॥२५॥ उसने सोलह अश्वमेध यज्ञ किये उनके मार्ग सुवर्णसे सुशोभित थे, एवं सुवर्णके आभूषणों एवं यूपों से वे यज्ञ मंडप शोभायमान थे, ॥२६॥ उस राजाने पर्वतके समान अन्नकी राशियें ब्राह्मणों को दान करके दीं, वह दाता देवताओंका भक्त गौ और सुवर्ण का दानी था ॥२७॥ भद्रक नाम एक ब्राह्मण



अवंतिविषये राजावीरसेनोऽभवत्पुरा ॥ नर्मदातीरमागत्यराजसूयंचकारसः ॥२५॥ षोडशै-रश्वमेधैश्चस्वर्णवाटविराजितैः ॥ स्वर्णभूषणयूपाढ्यैरीजेसोपियथाविधि ॥२६॥ प्रददौधान्य-राशींश्चद्विजेभ्यःपर्वतोपमान् ॥ वदान्योदेवताभक्तोगोप्रदःससुवर्णदः ॥२७॥ ब्राह्मणोभद्रकोनाम मूर्खोहीनकुलस्तथा ॥ कृषीवलोदुराचारःसर्वधर्मबहिष्कृतः ॥२८॥ कृषिकर्मसमुद्विग्नोबन्धु-भिश्चाप्यसंस्कृतः ॥ इतस्ततःपरिभ्रम्यनिर्गतःक्षुत्प्रपीडितः ॥२९॥ दैवज्ञैः सार्धमावेश्य प्रयागं-ससमाहितः ॥ महामाघींपुरस्कृत्यसस्नौतत्रदिनत्रयम् ॥ ३० ॥ अनघः स्नानमात्रेणभूत्वेह-

मूर्ख और हीनकुलका था, वह दुराचारी खेती करता और अन्य सब धर्मोंसे बहिष्कृत था ॥२८॥ वह कृषिकर्मसे उद्विग्न हो गया तब उसके बन्धुबान्धवोंने भी उसे निकाल दिया, अतएव वह इधर-उधर घूमता २ क्षुधासे पीड़ित हो निकल चला ॥२९॥ और ज्यौतिषियोंके साथ प्रयागराजको चला आया और माघकी एकादशीसे तीन दिन-

तक उसने स्नान किया ॥३०॥ प्रयागमें स्नानमात्र करनेसे वह निष्पाप हो सब ब्राह्मणोंमें उत्तम हो गया, तब प्रयागसे चलकर फिर वहाँ ही आया जहाँसे गया था ॥३१॥ वह राजा और वह ब्राह्मण दोनों ही एक साथ मृतक हो गये, मैंने इन्द्रके निकट उन दोनोंकी गति देखी ॥३२॥ तेज, रूप, बल, स्त्रियें, विमान, आभूषण, कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला, नृत्य और गीत ये सब सामग्री उन दोनोंकी समान ही थीं ॥३३॥ प्रयागक्षेत्रका यह माहात्म्य

सद्विजोत्तमः ॥ प्रयागाच्चलितस्तत्रपुनर्यस्मात्समागतः ॥३१॥ सराजासोपिविप्रश्चविप-न्नवेकदातदा ॥ तयोर्गतिःसमादृष्टामयाशक्रस्यसन्निधौ ॥३२॥ तेजोरूपंबलंस्त्रैणंदेवयानं-विभूषणम् ॥ पारिजातप्रसूनमालानृत्यगीतंतयोःसमम् ॥ ३३ ॥ इतिदृष्टंहिमाहात्म्यंक्षेत्रस्य-कथमुच्यते ॥ माघःसितासितेविप्रराजसूयैःसमोमतः ॥३४॥ धनुस्त्रिशतविस्तीर्णेसितनी-लांबुसंगमे ॥ अपुनरावृत्तिमर्घोराजसूयोपुनर्भवेत् ॥३५॥ माघमासीथवातोपिसितासित-

हमने देखा कि, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है, सुतराम् हे विप्र ! गंगायमुनाके संगममें माघस्नान करनेसे राजसूययज्ञके समान फलका लाभ होता है ॥३४॥ जिसके विस्तारका प्रमाण तीन सौ धनुषका है, ऐसे गंगा-यमुनाके संगममें जो मनुष्य माघस्नान करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता, बल्कि राजसूययज्ञ करनेवालेका पुनर्जन्म भी होता है ॥३५॥ [illegible]

यमुनाके संगममें जो मनुष्य माघस्नान करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता, बल्कि राजसूययज्ञ करनेवालेको पुनर्जन्म भी होता है ॥३५॥



अधर्म उसके शरीरका स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि—यह वायु महापातकोंका भी नाश करनेवाला है ॥३६॥ हे द्विज ! विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन निश्चित बात सुनो अन्य तीर्थोंमें किये हुए पापोंका फल भी माघस्नान नष्ट कर देता है ॥३७॥ इस विषयमें पिशाचमोचन नामक प्राचीन इतिहास तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, तुम सावधान हो



जलंस्पृशेत् ॥ अधर्म्यंनस्पृशेन्नूनंमहापातकहाह्यसः ॥३६॥ किमत्रबहुनोक्तेनश्रूयतांद्विजनिश्चितम् ॥ समुद्भूतफलंपापंतीर्थेमाघःप्रणाशयेत् ॥३७॥ अत्रतेकथयिष्यामिसावधानमतिःशृणु ॥ पिशाचमोचनंनामइतिहासंपुरातनम् ॥३८॥ शृण्वंत्यप्सरसोबालाःशृणोतुत्वत्सुतस्तथा ॥ मत्प्रसादात्स्मृतिर्लब्ध्वापैशाच्यान्मुक्तिभागिनः ॥३९॥ पुरादेवद्युतिर्विप्रोवैष्णवोवेदपारगः ॥ पिशाचंमोचयामासकरुणानीरसागरः ॥४०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

श्रवण करो ॥३८॥ अप्सराओंकी कन्यायें तथा तुम्हारा पुत्र ये सब श्रवण करें, हमारी कृपासे स्मृतिका लाभ कर पिचाशयोनिसे मुक्तिलाभ करेंगे ॥३९॥ पूर्वकालमें दयासागर देवद्युति नामके वैष्णवने पिशाचोंको मुक्त किया था ॥४०॥

इति श्रीमाघ० माहात्म्ये भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

वेदनिधि बोला—देवद्युति कहाँ रहता था, वह किसका पुत्र था, उसका नियम और जप क्या था ? वह वैष्णव कैसे हुआ और उसने किस पिशाचको मुक्त किया था ॥१॥ हे महामुने ! यह सब वृत्तान्त विस्तार पूर्वक हमारे प्रति वर्णन करिये, आपकी कृपासे अतीव पुण्यदायक इस कौतूहलको हम सुनेंगे ॥२॥ लोशमजी बोले-प्लक्षके



वेदनिधिरुवाच ॥ कुत्रस्थितः कस्यपुत्रो नियमःकोस्य वा जपः ॥ केनवावैष्णवोवृत्तः कःपिशाचःसुमोचितः ॥१॥ एतद्विस्तरतःसर्वंकीर्तयस्वमहामुने ॥ कौतूहलंमहापुण्यंशृणु-मस्त्वत्प्रसादतः ॥ २ ॥ लोमशउवाच ॥ प्लक्षप्रस्रवणेपुण्येसरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ तत्राश्रम-पदंतस्यशैलमाश्रित्यशोभने ॥ ३ ॥ शालैस्तालैस्तमालैश्चबिल्वैर्बकुलपाटलैः ॥ तिंतिडीचि-रिबिल्वैश्चचूतचम्पककाननैः ॥४॥ करंजैःकोविदारैश्चकेसरैःकुंजराशनैः ॥ तिलकैःकर्णिका-रैश्चकुंभैःखादिरतिंदुकैः ॥५॥ वानीरैःसाल्दजंबीरैर्बृहदुंबरवेतसैः ॥ साकोटैरटरूपैश्चकर-

पवित्र स्रोत सरस्वतीके शुभ्र तटपर पर्वतके ऊपर उसका सुन्दर निवासस्थान था ॥३॥ शाल, ताल, तमाल, बिल्व (बेल), बकुल, पाटल, तिंतिड़ी (इमली), चिरबिल्व (नखमल), आम और चम्पेके वृक्ष ॥ ४ ॥ करंज (कंजुए) कोविदार (बिजौरा), केसर, तिलक, कर्णिकार (कनेर), कुम्भ, खदिर (खैर) और तेंदू ॥ ५ ॥ वानीर,

लालव, जंबीर ( जँभीरीनींबू ), गुलर, वेत, शाखोट, आडू, करहाट, और वटवृक्ष ॥ ६ ॥ कुटज, पलाश, अशोक, जामुन, नीम, कदम्ब, दूधिया, करौंधा ॥ ७ ॥ विजौरा, नारंगी और केलेकी श्रेणी, बढ़हल और सदा फलनेवाले नारियल ॥ ८ ॥ सप्तच्छद, त्रिपत्र, सिरस, उत्तम आँवले, कर्कन्धू, लकुच, पारिभद्र और वचादिक ॥ ९ ॥ केतकी,

हाटैर्वटद्रुमैः ॥ ६ ॥ घोंटाकुटजपालाशैरशोकैःशोकहारकैः ॥ जंबूनिंबकदंबैश्चक्षीरिकाकरमर्दकैः ॥७॥ बीजपूरैःसनारंगैरंभाराजिविराजितैः ॥ पनसैरसवद्भिश्चनारिकेलैःसदाफलैः ॥ ८ ॥ सप्तच्छदैस्त्रिपत्रैश्चशिरीषामलकैः शुभैः ॥ कर्कंधूलकुचैरक्षैः पारिभद्रैर्वचादिभिः ॥ ९ ॥ केतकैः शिशुमारैश्च तगरैः कुंदमल्लिकैः ॥ पद्मैंदीवरकह्लारमालतीयूथिकादिभिः ॥ १० ॥ मालतीमोगरैश्चैवजातीफलैर्विराजितैः ॥ पुन्नागैःकिंशुकैश्चैववर्बरीतुलसीद्रुमैः ॥ ११ ॥ आश्रमोरमणीयःसद्रुमैर्नानाविधैर्द्विज ॥ वनमध्येनदीयातिपुण्यतोयासर-

शिशुमार, तगर, कुंदमल्लिका, कमल, नीलकमल, कल्हार, माल्ती, और पूथिका आदि ॥ १० ॥ मालती-मोगर, जातीफल ( जायफल ), पुन्नाग ( नागकेसर ), किंशुक ( सूआटेसू ), बर्बरी, और तुलसी के वृक्ष ॥ ११ ॥ इत्यादि अनेक वृक्षोंसे वह आश्रम खूबही रमणीय हो रहा था और उसी वनके बीचमें पवित्र जलवाली सरस्वती नदी

बह रही थी ॥ १२ ॥ मदभीनी कोमलध्वनिसे सारस वहाँ नित्यही कूजते रहते थे, कोयलें कूकती और भौंरे गुंजारते रहते थे ॥ १३ ॥ हे विप्र ! तोतेमैनाओंके शब्दसे उस वनमें बड़ा कोलाहल होता था, अथच उस उत्तम वनमें भाँति २ जंगली जीव विचरते थे ॥ १४ ॥ वहाँके वृक्ष सदाही फूले फले रहते थे, अथच वह वन रजके कणोंसे

स्वती ॥१२॥ कूजंतिसारसास्तत्रमदस्निग्धकलंसदा ॥ नदंतिकोकिलाःशब्दंगुंजंतिचमधुव्रताः ॥ १३ ॥ बहुकोलाहलंविप्रतद्वनंशुकसारिभिः ॥ चरंतिश्वापदास्तत्रत्रिविधाःकाननोत्तमे॥१४॥सदाफलंसदापुष्पंपरागकणधूसरम् ॥ आच्छन्नंकाननंसर्वंमधुवृक्षैःसमंततः ॥१५॥
नवपल्लवसंजातमञ्जरीभरवल्लिभिः ॥ आश्लिष्टमभितोरम्यंप्रियाभिरिववल्लभः ॥ १६ ॥
तस्यशापभयात्त्रस्तोवातोवातिसमंततः ॥ नवर्षंत्यश्मभिर्मेघानशोषयतिभास्करः ॥ १७ ॥
वनंनोपद्रवंतद्धिसदासिद्धनिषेवितम् ॥ आह्लादजनकंनित्यंवनंचैत्ररथंयथा ॥१८॥ तस्मिन्व-

सदैव धुँधला रहता था ॥ १५ ॥ जिनमें नई मंजरी और नवपल्लव उगे हैं ऐसी बेलें वृक्षोंसे इसप्रकार लिपटी रहतीथीं, जैसे अपने पतिको स्त्रियें आलिंगन करती हैं ॥ १६ ॥ उसके शापसे भयभीत हो, चारों ओर वायु चलता रहता था, पाषाणवृष्टि कभी नहीं होती थी, और सूर्य्यनारायण उसे शुष्क नहीं करते थे ॥१७॥ उस वनमें कोई भी उपद्रव नहीं था,

किन्तु—वहाँ नित्यही सिद्ध निवास करते थे, विशेष क्या कहैं वह वन चैत्ररथ वनके समान आनन्द जनक था ॥१८॥ उसी वनमें द्विजोत्तम धर्मात्मा देवद्युति निवास करते थे, यह सुमित्रविप्रके पुत्र थे, और उन्हें लक्ष्मीपति भगवान्से वरका लाभ हुआ था ॥१९॥ सदैव आत्मनिग्रह करनेवाले उस महात्माका नियम सुनो, ग्रीष्म ऋतुमें वह सूर्य्यमें दृष्टि लगाकर पंचाग्निसे तपा करता था ॥२०॥ मेघमाला जिस समय वर्षा करती थी उस समय मैदानमें बैठकर तप करता

सतिधर्मात्मादेवद्युतिर्द्विजोत्तमः ॥ पुत्रःसुमित्रोविप्रस्यलब्धोलक्ष्मीपतेर्वरः ॥ १९ ॥ नियमः श्रूयतांतस्यसर्वदानियतात्मनः ॥ ग्रीष्मेपञ्चतपानित्यंसूर्यन्यस्तविलोचनः ॥२०॥ वर्षत्स्वादंबिनीजालेवर्षास्वभ्रावकाशगः ॥ वातेप्रवातेनिष्कंपोदुःसहोहिमवानिव ॥२१॥ वसत्यप्सु-स हेमंतेहदेसारस्वतेद्विज॥ उपस्पृशत्त्रिकालेसत्रिवारंवारिनिर्मलम् ॥२२॥ वितृन्देवानृषीन्नित्यं सतर्पयतिश्रद्धया॥ब्रह्मयज्ञपरोनित्यंसत्यवादीजितेन्द्रियः ॥२३॥ भूमौविश्राम्यविश्रान्तःप्रद-

था और पवन चलने से हिमालय के समान अचल रहता था ॥ २१ ॥ हे द्विज ! हेमन्तऋतु ( पौष—माघ ) में सारस्वत सरोवरमें बैठके तप करता था और तीनों समय निर्मल जलका स्पर्श करता था ॥ २२ ॥ वह सत्यवादी और नित्य जितेन्द्रिय ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहकर सदैव पितरों देवताओं और ऋषियोंको सन्तुष्ट किया करता था ॥२३॥ भूमिके ऊपर विश्राम लेकर वह भगवान्की प्रार्थना किया करता था, वनकी वस्तुओंसे अग्निहोत्र करता और श्रद्धा-

पूर्वक अतिथियोंकी पूजा किया करता था ।। २४ ।। वह महात्मा नित्य ही चान्द्रायण व्रतकी विधिसे अपने समयको व्यतीत किया करता था, और अपने आप पतित हुए फल तथा पत्तोंका भक्षण किया करता था ।। २५ ।। उद्वेग परित्याग पूर्वक वह वेदवेदांगपारगामी तपश्चर्यामें निमग्न रहता था, उसके शरीरमें नसें और अस्थियें ही शेष रह गई

ध्यौप्रार्थयन्हरिम् ।। वन्यैर्जुहोत्यग्निहोत्रंश्रद्धयातिथिपूजकः ।।२४।। चांद्रायणविधानेनकालं
नयतिसर्वदा ।। स्वयंविगलितैःपत्रैःफलैर्वृत्तिसमीहते ।।२५।। अनुद्विग्नस्तपोनिष्ठोवेदवेदांग-
पारगः । धमनीविकरालोऽसावस्थिमात्रकलेवरः ।।२६।। इत्थंजगामवर्षाणांसहस्रंतस्यका-
नने ।। तदाज्वालशैलोऽसौतपसस्तस्यतेजसा ।। २७ ।। सोढुंनशक्यतेभूतैस्तेजस्तस्य-
महात्मनः ।। वैश्वानरइवाभातिप्रज्वलंस्तपसाद्विज ।। २८ ।। गतवैराणिभूतानिसमजायं-
तातद्वने ।। मृगव्याघ्राखुमार्जारामिथःक्रीडंतिनिर्भयाः ।।२९।। अन्योऽपिनियमस्तस्यश्रूयता-

थीं ।। २६ ।। उस वनमें इस प्रकार तप करते-करते उसके एक हजार वर्ष व्यतीत होगये, तब उस तपस्वीके तपके तेजसे पर्वत प्रदीप्त हो गया ।। २७ ।। सुतराम् उस महात्माके तेजको किसी प्राणीमें सहनकरनेकी शक्ति नहीं रही, हे द्विज ! उस समय वह तप के द्वारा अग्निके समान प्रदीप्त हो रहा था ।। २८ ।। उस वनमें प्राणियोंने परस्पर वैर त्याग दिया था, सिंह और मृग, बिलाव और मूसे निर्भय हो साथ-साथ क्रीड़ा करते थे ।। २९ ।। उसका अत्यन्त दुर्लभ एक और

भी नियम था, उसे सुनो! वह नित्य तीनों समय श्रीमन्नारायणका पूजन किया करता था ॥३०॥ श्रीविष्णुभगवान्के ध्यानमें निरत हो महकते हुए अछूते सहस्र पुष्पोंसे वेदसूक्तकी विधिके अनुसार भगवान्को पूजता था ॥३१॥ विशेष क्या कहें विष्णुभगवान्को प्रसन्न करनेके लिये वह ब्राह्मण ये सम्पूर्ण कर्म करता था, और दधीचिके वरदानसे वह

मतिदुर्लभः ॥ नारायणंत्रिकालंससंपूजयतिनित्यशः ॥ ३० ॥ पुष्पाणांतुसहस्रेणविकचेन-सुगंधिना ॥ वेदसूक्तविधानेनविष्णुध्यानपरायणः ॥३१॥ विष्णोःसंप्रीतयेविप्रःकुरुतेकर्मचा-खिलम् ॥ दधीचेर्वरदानात्ससंजातोवरवैष्णवः ॥ ३२ ॥ एकदा मासिवैशाखेएकादश्यांमुदा-न्वितः ॥ पूजांकृत्वाहरेरम्यांविचित्रामकरोत्स्तुतिम् ॥ ३३ ॥ तदेवखगमारुह्यदेवदेवोहरिः स्वयम् ॥ आजगामपुरस्तस्यतयास्तुत्याऽतिहर्षितः ॥ ३४ ॥ तंदृष्ट्वागरुडारूढंप्रत्यक्षंजल-दच्छविम् ॥ चतुर्बाहुंविशालाक्षंसर्वालंकारभूषितम् ॥ ३५ ॥ उद्भूतपुलकोविप्रःआनंदजल-

उत्तम वैष्णव भक्त होगया था ॥ ३२ ॥ एकबार वैशाखकी एकादशीके दिन आनन्दमें मग्न हो हरिभगवान्की पूजाकर वह विचित्र स्तुति करने लगा ॥ ३३ ॥ तब उसकी स्तुतिसे प्रसन्न हो देवाधिदेव श्रीविष्णुभगवान् गरुड़जीके ऊपर आरूढ़ हो स्वयं उसके समक्ष आकर उपस्थित हुए ॥ ३४ ॥ जब उस ब्राह्मणने गरुड़के ऊपर आरूढ़, मेघके समान

नीली छविवाले चतुर्भुज और बड़े २ नेत्रोंवाले, समस्त आभूषणोंसे अलंकृत भगवान्को प्रत्यक्ष देखा, ॥ ३५ ॥ तब उसके शरीरमें रोमांच होगया, नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये, अतएव वह अपने आपको कृतकृत्य मानके भूमिके ऊपर शिर रखकर प्रणाम करने लगा ॥ ३६ ॥ ब्रह्मांडभरमें उसके हर्ष की सीमा न रही और वह साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपही होगया, अतएव उसे देहकी भी सुधि न रही ॥ ३७ ॥ तब भगवान् वैष्णवमुनिसे प्रेमपूर्वक कहने लगे कि,





लोचनः ॥ जगामशिरसाभूमौकृतकृत्यमनास्तदा ॥३६॥ नममौतेनहर्षेणसब्रह्माण्डदरेपिहि ॥
न सस्मारनिजंदेहंब्रह्मीभूतइवाभवत् ॥ ३७ ॥ ततः संभाषितः प्रीत्याहरिणावैष्णवोमुनिः ॥
देवद्युतेविजानामिमद्भक्तस्त्वंमदाश्रयः ॥३८॥ संन्यस्ताखिलकर्मासिमद्भावोमन्मनाः सदा ॥
वरंब्रूहिप्रसन्नोस्मिस्तोत्रेणानेनचानघ ॥ ३९ ॥ इति श्रुत्वाहरेर्वाक्यंप्रत्युवाचसतापसः ॥ देव-
देवारविंदाक्षस्वमायाधृतविग्रह ॥४०॥ त्वद्दर्शनात्सदादेवदुर्लभोनापरो वरः॥ ब्रह्मादयःसुराः
सर्वेयोगिनःसनकादयः ॥ त्वांसाक्षात्कर्तुमिच्छन्तिसिद्धाश्चकपिलादयः ॥ ४१ ॥ अहंममेति-

हे देवद्युति ! मैं जानता हूँ तुम हमारे भक्त अतएव हमारे ही आश्रित हो ॥ ३८ ॥ तुमने अखिलकर्मोंका परित्याग कर दिया है तुम्हारे सब भाव मेरेही लिये हैं, तुम्हारा मन सदैव मुझमें ही लगा रहता है, हम तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न हैं अतएव हे निष्पाप ! तुम हमसे वर माँगो ॥ ३९ ॥ हरिके ऐसे वाक्य सुन वह तपस्वी कहने लगा, हे देवाधिदेव ! हे कमलनयन ! आपने अपनी मायासे देह धारण किया है ॥ ४० ॥ आपके दर्शन से अधिक

और कुछ भी वर दुर्लभ नहीं है, ब्रह्मादिक देवता, सनकादिक योगी, एवं कपिलादिक सिद्ध महात्मा ये सबही आपके दर्शन करने की अभिलाषा करते हैं ॥ ४१ ॥ मैं अथवा हम इत्यादि ममत्वकी फाँसी, शुभाशुभ कर्म-बन्धन ये सब अपने-अपने साधनों सहित आपके दर्शन होतेही दग्ध हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ सो जन्म, कर्म और बुद्धिका



पाशायेमोहलोभाःशुभाशुभाः ॥ सहेतुकाश्चदह्यंतेदृष्टेत्वयिपरावरे ॥४२॥ जन्मनःकर्मणो-बुद्धेराविर्भूतंफलंमम ॥ यद्दृष्टोसिजजगन्नाथवांछितंकिमतःपरम् ॥ ४३॥ न वरार्थंहिदेवेशत्व-त्पादपंकजंहृदि ॥ चिंतयामिसदाभक्त्यात्वद्गतेनांतरात्मना ॥ ४४॥ इममेववरंयाचेत्वद्भक्ति-रचलामम । अस्तुवैकमलानाथप्रार्थयेनापरं वरम् ॥ ४५॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यप्रसन्नवदनो-हरिः ॥ प्रत्युवाचप्रसन्नात्माएवमस्तुद्विजोत्तम ॥ ४६ ॥ अन्यस्तेतपसःकश्चित्प्रत्यूहोनभवि-

फल हमें प्राप्त होगया कि- आपके दर्शन मिल गये, हे जगन्नाथ ! इससे अधिक और क्या मागूँ ॥ ४३ ॥ मेरे हृदयमें आपके चरणकमल उपस्थित हैं अतएव अन्य वरकी आवश्यकता नहीं केवल यह अभिलाषा है कि, आपके प्रति मन लगाय सदैव भक्तिसे आपहीका ध्यान करता रहूँ ॥ ४४ ॥ हे लक्ष्मीकान्त ! मैं केवल यही वर माँगता हूँ कि आपकी अचलभक्ति हो, बस और कुछ भी मैं नहीं चाहता ॥ ४५ ॥ उसके ऐसे वचन सुन भगवान् प्रसन्न हो बोले

कि–हे द्विजराज ! ऐसाही होगा ॥४६॥ अब तुम्हारे तपमें कोई विघ्न भी किसी प्रकारका उपस्थित न होगा ॥४७॥ और तुम्हारे निर्माण किये इस स्तोत्रको जो मनुष्य पढ़ेंगे, उनके हृदयमें हमारी दृढनिश्चल भक्ति होगी ॥ ४८ ॥ और उनके संपूर्ण धर्मकृत्य भी अंगोंसहित परिपूर्ण हो जायँगे, और ज्ञानमें उनकी निश्चल निष्ठा होगी ॥ ४९ ॥ यों कहकर





ष्यति ॥ ४७ ॥ एतच्चत्वत्कृतंस्तोत्रंयेपठिष्यंतिमानवाः ॥ तेषांमद्विषयाभक्तिर्निश्चलाचभविष्यति ॥ ४८ ॥ धर्मकार्यंचयत्किंचित्सांगंसर्वंभविष्यति ॥ ज्ञानेचपरमानिष्ठातेषांस्थास्यतिनिश्चला ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वांतर्हितस्तत्रदेवदेवोजनार्दनः ॥ देवद्युतिस्तदारभ्यनारायणपरोभवत् ॥ ५० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे देवद्युतिवरप्रदानंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

देवाधिदेव श्रीजनार्दन भगवान् वहाँही अन्तर्धान होगये, उसी दिनसे देवद्युति भी नारायणकी भक्तिमें तत्पर होगया ॥५०॥
इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

वेदनिधि बोला—हे महर्षे ! आपने आज मुझे गंगाजीके समान इस विष्णु संगतिसे कृपा पूर्वक पवित्र कर दिया ॥ १ ॥ उस निष्पाप ब्राह्मणके द्वारा किया हुआ वह कौन-सा स्तोत्र है, जिससे श्रीविष्णुभगवान् प्रसन्न हुए थे, वह मुझे सुनाइये, कारण कि, मुझे अतीव कौतूहल है ॥ २ ॥ मैं समझता हूँ कि आपकी कृपासे मेरा मनोरथ पूर्ण हो



॥ वेदनिधिरुवाच ॥ महर्षेऽनुगृहीतोऽस्मिकथयापावनीकृतः ॥ अनयाविष्णुसंगत्या-गंगयेवाहमद्यवै ॥ १ ॥ किंतत्स्तोत्रंसमाख्याहिप्रसन्नोयेनमाधवः ॥ तस्यानघस्यविप्रस्यमह-त्कौतूहलंमम ॥ २ ॥ त्वत्प्रसादादहंविप्रमन्येप्राप्तंमनोरथम् । महतांसंगतिःकस्यमहत्त्वाय न कल्पते ॥ ३ ॥ कथयस्वप्रसादेनविष्णोः स्तोत्रमनुत्तमम् ॥ येन तुष्टः स भगवान्ददौतस्यच-दर्शनम् ॥ ४ ॥ लोमशउवाच ॥ कथयामिरहस्यंतेयज्जाप्यंस्तोत्रमुत्तमम् ॥ प्राग्गृहीतं-सुपर्णेनगरुडान्मयिचागतम् ॥ ५ ॥ अध्यात्मगर्भसारंतन्महोदयकरंशुभम् ॥ सर्वपापहरंविप्र-



जायगा, भला बड़ोंकी संगति किसको बड़ा नहीं बना देती है ॥ ३ ॥ अब आप कृपाकरके विष्णुभगवान् का सर्वोत्तम वह स्तोत्र सुनाइये जिससे सन्तुष्ट होकर नारायणने उस महात्माको दर्शन दिये ॥ ४ ॥ लोमशजी बोले—अब हम गुप्तभेद वर्णन करते हैं, जप करनेके योग्य उस उत्तम स्तोत्रको प्रथम तो गरुड़जीने प्राप्त किया था और उनसे मुझे

उपलब्ध हुआ ॥ ५ ॥ वह स्तोत्र वेदान्तके गूढ़तत्वोंका सार है, अथच वह शुभ और महान् उदयका करनेवाला है, उससे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तथा हे विप्र! उससे परम आत्मज्ञानका भी लाभ होता है ॥ ६ ॥ हे वासुदेव! आप विश्वस्वरूप और चक्रधारी हैं, हे कृष्ण! आपको भक्ति प्यारी है, आप जगत्के स्वामी और धनुषधारी हैं सुतराम् हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ आप सर्व साधारणरूपसे स्तुति करनेवाले, सर्व साधारणके द्वारा

ह्यात्मज्ञानकरंपरम् ॥ ६ ॥ ॐनमोवासुदेवायनमोविश्वायचक्रिणे ॥ भक्तिप्रियायकृष्णाय-जगन्नाथायशार्ङ्गिणे ॥ ७ ॥ स्तोतास्तुत्यःस्तुतिः सर्वंजगद्विष्णुमयंयदा ॥ तदाकःस्तूयते-केनभक्तिर्मोदकरीनृणाम् ॥ ८ ॥ यस्यदेवस्यनिः श्वासोवेदाःसांगाः ससूत्रकाः ॥ कास्तुतिः प्रमुदेतस्यभक्त्याऽहंमुखरोभवम् ॥ ९ ॥ वेदोनवक्तियंसाक्षान्नचवाग्वेत्तिनोमनः ॥ मद्विधस्तं कथंस्तौतिभक्तिमान्वा न किंवदेत् ॥ १० ॥ ब्रह्मादिब्रह्मविष्णुस्त्वंत्वमेवसकलाश्रयः ॥ स्रष्टा-

स्तुति किये जाने के योग्य, अथच स्वयंही स्तुति स्वरूप हैं, जब समस्त जगत् ही साक्षात् विष्णुस्वरूप है तब कौन किसकी स्तुति करै, केवल भक्ति ही मनुष्यों को आनन्दित करनेवाली है ॥ ८ ॥ जिस परमेश्वरके श्वाससे अङ्गों और सूत्रों सहित वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है तो एक छोटी-सी स्तुति भला उन्हें क्या प्रसन्न कर सकती है, केवल भक्तिके कारण मैंने वाचालता स्वीकार की है ॥ ९ ॥ साक्षात् वेद ही जिसका वर्णन नहीं कर सकते, वाणी और मन जिसको जानते

नहीं है, मेरे जैसा मनुष्य उसके विषय में क्या कह सकता है, अथवा भक्त क्या नहीं कह सकता ॥ १० ॥ ब्रह्मा के आदि तथा ब्रह्म और विष्णु स्वरूप भी आपही हैं, आपही सबको आश्रय देनेवाले हैं, सबको रचनेवाले ब्रह्माजी को भी उत्पन्न करनेवाले एवं शुद्ध ब्रह्मस्वरूप भी आपही हैं ॥ ११ ॥ हे सर्वव्यापक! आपका यह कार्य्य क्या है ? जो देहधारी को भेदकर स्पर्श करता है, काया संबन्धी दोष आपको सूँघ तक भी नहीं पाये हैं, ऐसे आप योगी को

ब्रह्मनिदानं चशुद्धंब्रह्मत्वमेवच ॥ ११ ॥ कोयंकायस्तवविभोभित्वास्पृशतिकायिनम् ॥ काय-
दोषैर्नचाघ्रातस्तस्मैनमोस्तुयोगिने ॥ १२ ॥ देवभावेन जागर्तिननिद्रातिनिजात्मनि ॥ सुख-
संदोहबुद्धिर्यासात्वंविष्णोनसंशयः ॥ १३ ॥ महदादयोमहाभावास्तथावैकारिकागुणाः ॥
त्वमेवनाथतत्सर्वंनानात्वंमूढकल्पना ॥ १४ ॥ केशकेशवरूपाभिःकल्पनाभिस्त्रिभिस्तथा ॥
त्वमेवकल्पसेब्रह्मपुमानिवसुतादिभिः ॥ १५ ॥ विदोषंविगुणंचैकंचिन्मूर्तिरखिलंजगत् ॥

नमस्कार है ॥ १२ ॥ आप देवभावसे सदैव जागते रहते हैं, निज आत्मा में कभी निद्रा नहीं लेते हैं, हे विष्णो ! सुख उत्पन्न करनेवाली जो बुद्धि है वह निस्सन्देह साक्षात् आपही हैं ॥ १३ ॥ महत् आदि महाभाव, तथा पंचभूतों के विकार जनित गुण हे नाथ ! ये सब आपही हैं, नाना प्रकार की कल्पना करना तो केवल मूढ़कल्पना है ॥ १४ ॥ केश केशवरूप तीन कल्पनाओं से हे ब्रह्मन् ! आपही सबको इस प्रकार उत्पन्न करते हैं, जैसे मनुष्य

पुत्रादिकों को उत्पन्न किया करते हैं ॥ १५ ॥ जिसमें कोई दोष नहीं, जिसमें मायाजनित गुण नहीं हैं, जो अद्वि-
तीय है, जो समस्त जगत्में व्यापक है और चैतन्य स्वरूप है, और जो कवीश्वरों को तत्त्वस्वरूप से प्रतीत होता है,
ऐसे निर्मल विष्णुभगवान् की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६ ॥ जिसका ज्ञान होनेसे श्रुतिप्रोक्त कर्म किए जाते हैं ऐसे शुद्ध
ब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं ॥१७॥ जो चैतन्य स्वरूप है और जिसकी उपासना ज्ञानके द्वारा होती है अथच समस्त

**कवीनांभातियत्तत्त्वंतंविष्णुंनौमिनिर्मलम् ॥ १६ ॥ यस्यज्ञानेनकुर्वंतिकर्माणिश्रुतिभाषितम् ॥**
**निरीषणाजगन्मित्राःशुद्धब्रह्मनमामितम् ॥ १७ ॥ ध्वस्तेतरच्चसन्मात्रंयत्प्रबोधादुपासते ॥**
**योगिनः सर्वभूतेषुसद्रूपंनौमितंहरिम् ॥ १८ ॥ ब्रह्माहमितिगायंतियंज्ञात्वैकंनराद्विजाः ॥**
**पश्यंतोहित्वयातुल्यंदेहंतंनौमितंहरिम् ॥ १९ ॥ माययामोहवैचित्र्यंतथाहंममतांनृणाम् ॥**
**योनाशयतिपापौघान्नमस्तस्मैचिदात्मने ॥ २० ॥ प्रयाणेवाप्रयाणेचयन्नामस्मरतांनृणाम् ॥**

प्राणियों में योगी जिसकी उपसना कर सकते हैं सत्यस्वरूप ऐसे हरिको प्रणाम करते हैं ॥१८॥ श्रेष्ठज्ञानीपुरुष जिनको
जानकर अपने आपको ब्रह्म प्रतिपादन करते हैं, अतएव अपने आपको आपके समान अवलोकन करते हैं उन्हीं हरि-
भगवान् को मेरा नमस्कार है ॥ १९ ॥ जो माया जनित अज्ञानकी विचित्रता तथा मनुष्यों के अहं आदि ममत्व को
नाश कर देते हैं, एवं जो पापराशिका को भी विनाश कर देते हैं, उन्हीं सच्चिदानन्द को प्रणाम है ॥ २० ॥ यात्रा

नाश कर देते हैं, एवं जो पापराशिको को भी विनाश कर देते हैं, ...

अथवा स्थिति के समय ही जिनके नाम का स्मरण करनेसे मनुष्यों के पापपुंज विनष्ट हो जाते हैं, उन्हीं चिदात्मा को नमस्कार है ॥ २१ ॥ मोहरूप अग्निकी ज्वाला संसारमें चारों ओर प्रदीप्त है, परन्तु जो मनुष्य आपके चरणकमल की छाया में प्रविष्ट होते हैं, उन्हें उस ज्वाला में भस्म नहीं होना होता ॥ २२ ॥ जिनका स्मरण करनेसे अज्ञान

सद्योनश्यंतिपापौघानमस्तस्मैचिदात्मने ॥२१॥ मोहानलल्लसज्ज्वालाज्वलल्लोकेषुसर्वदा ॥
यत्पादांभोरुहच्छायांप्रविष्टश्चनदह्यते ॥ २२ ॥ यस्यस्मरणमात्रेणनमोहोनैवदुर्गतिः ॥
नश्रमोनैवदुःखानितमनंतंनमाम्यहम् ॥ २३ ॥ कामयंतेप्रजानैवधिषणाभ्यः समुत्थिताः ॥
लोकमात्मैवपश्यंतियंबुद्ध्वैकचरानराः ॥ २४ ॥ शब्दार्थःसंविदर्थश्चविष्णोर्नामप-
रोयदि ॥ सत्येनतेनसंसारोमासंस्पर्शतुमाधव ॥ २५ ॥ नारायणोजगद्व्यापीयदिवेदादि-

और दुर्गति नहीं होती, श्रम और दुःख भी नहीं होते उन्हीं अनन्त भगवान् को हम प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ जिनका ज्ञान होजानेपर फिर किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती, किन्तु मनुष्य चराचर को अपना स्वरूप ही देखने लगते हैं ॥ २४ ॥ शब्दार्थ अथवा ज्ञान के अर्थ में विष्णु नाम हो तो हे माधव ! संसार उसे अवश्य ही स्पर्श नहीं कर सकता है ॥ २५ ॥ यदि जगत्में सर्वव्यापक विष्णुभगवान् वेद आदिके द्वारा संमत हैं तो विघ्नरहित विष्णुभक्ति

मुझे प्राप्त हो ॥ २६ ॥ जो बीज अथवा अबीज नहीं हैं, और जो बीज भावित बीजस्वरूप हैं, वेही विष्णुभगवान् हमारे सांसारिक बीजको ज्ञानके खड्ग से छेदन करें ॥ २७ ॥ जो प्रभु इस संसार के निर्माण पालन और संहार करने के निमित्त नटके समान तीन रूप धारण करते हैं, और जो गुणोंके द्वारा कार्य्यों में प्रतीत होते हैं, वे हरि




संमतः ॥ सत्येनतेननिर्विघ्नाविष्णुभक्तिर्ममास्तुवै ॥२६॥ योनबीजंनचाबीजंबीजंयोबीजभावितम् ॥ सविष्णुर्भवबीजंमेसितविद्यासिनाद्यतु ॥ २७ ॥ त्रितनुर्नटवद्यस्तुसृष्टिस्थितिलये-षुच ॥ गुणैर्भवतिकार्येषुसप्रसीदतुमेहरिः ॥ २८ ॥ दशधेहावतीर्णोयोधर्मत्राणायकेवलम् ॥ अभ्यर्थितःसुरैस्सर्वैःसप्रसीदतुमेहरिः ॥ २९ ॥ ब्रह्मादिस्तंम्बपर्यंतंप्राणोहन्मंदिरेऽमलः ॥ एकोवसतियोदेवःसप्रसीदतुमेहरिः ॥ ३० ॥ इच्छांचक्रेसदेवाग्रएकश्चैवबहुस्तथा ॥ प्रविष्टो-देवताःस्रष्टासप्रसीदतुमेहरिः ॥३१॥ हृत्खगःखसमःखादिःखातीतःखक्रियःखगः ॥ खंब्रह्म-

हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २८ ॥ जब सब देवताओंने प्रार्थना की तब धर्मकी रक्षा करने के लिये जिन्होंने दश अवतार धारण किये थे वेही हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २९ ॥ ब्रह्मा से लेके स्तम्भ पर्य्यन्त जितने प्राणी हैं उनके हृदयमन्दिर में जो निर्मल एक देव निवास करते हैं वेही नारायण हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥ जिन्होंने

मा.मा. १९५

पहले यह इच्छा की कि, मैं एक हूँ तथापि बहुत सा रूप धारण करूँ, तब देवताओं को निर्माण कर उनमें जो प्रविष्ट हुए वे हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३१ ॥ जो हृदयाकाश में व्याप्त हैं, सो आकाश के समान सूक्ष्म हैं, आकाश से भी प्रथम जिनकी सत्ता विद्यमान थी, जिन्होंने आकाश को अतिक्रमण कर लिया है, आकाश में जो क्रिया करते और जो आकाश ही में विचरते हैं, जो खं ब्रह्मस्वरूप और आकाश के समान ही शून्य मूर्तिधारी हैं,

खादिभूक्त्वन्तेखमूर्तिस्त्वंमखाशनः ॥ ३२ ॥ यद्भासायन्मुदायस्यमाययासृज्यतेजगत् ॥
जाड्यंदुःखमसत्यंचसभवानेवतन्मयः ॥ ३३ ॥ त्वत्सृष्टंमोदतेविश्वंत्वत्त्यक्तमशुचिर्भवेत् ॥
तत्संगतोप्यसंगस्त्वंविकारस्तेनतेनहि ॥ ३४ ॥ भूतयोगजचैतन्यंचार्वाकायमुपासते ॥ सौग-
ताब्रुवतेतर्कैस्त्वांबुद्धिक्षणभंगुरम् ॥ ३५ ॥ शरीरपरिमाणंत्वांमन्यंतेनिजदेवताः ॥ ध्यायं-

और जो यज्ञीयभाग का भोजन करते हैं ॥ ३२ ॥ जिनके प्रकाश और प्रमोद से माया जगत् की सृष्टि करती है, और जिनकी माया जड़ता से और असत्यता से दुःख देती है, ऐसे आप हमारी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ आपका रचा जगत् आनन्द मनाता और आपके त्यागते ही अशुद्ध हो जाता है, उसके संग रहकर भी आप संग और विकार रहित हैं, चार्वाक लोग पंचभूतों के योग से उत्पन्न हुए जिन चैतन्यप्रभुकी उपासना करते हैं, और सौगत तर्कद्वारा क्षणभंगुर बुद्धि मानते हैं ॥ ३४–३५ ॥ 'जिन' देवताको पूजनेवाले शरीर का परिमाण स्वरूप मानते हैं और

मा.टी. म.१९

सांख्य योगवाले आपही को प्रकृति से परे पुरुष मानते हैं ॥ ३६ ॥ जो प्रथम ही से जन्म आदि रहित और आनन्द स्वरूप हैं उन्हीं आपको उपनिषद्वाले ब्रह्मनाम से विचार करते हैं ॥ ३७ ॥ आकाशादि पंचभूत, देह, मन बुद्धि, इन्द्रियें, विद्या अथवा अविद्या जो कुछ हो, सब तुम तुम्ही हो, तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥३८॥ आपही






तिपुरुषंसांख्यास्त्वामेवप्रकृतेः परम् ॥ ३६ ॥ जन्मादिरहितःपूर्वंयःस्यादानंदलक्षणम् ॥
त्वामेवोपनिषद्ब्रह्मचिंतयंतिपरस्परम् ॥ ३७ ॥ खादिभूतानिदेहश्चमनोबुद्धीन्द्रियाणिच ॥
विद्याविद्येत्वमेवात्रनान्यत्त्वत्तोऽस्तिकिंचन ॥ ३८ ॥ त्वंधातासर्वभूतानांत्वमेवशरणंमम ॥
त्वमग्निस्त्वंहविःशक्रोहोतामंत्रःक्रियाफलम् ॥ ३९ ॥ त्वमस्तिनास्तिवैकुंठत्वामहंशरणंगतः ॥
त्वमर्कःफलदाताचदीक्षितानांक्रियाफलम् ॥ ४० ॥ त्वंहेतुःसर्वभूतानांत्वमेवशरणंमम ॥

सब प्राणियों को धारण और पोषण करनेवाले हैं, मुझे शरण देनेवाले भी आपही हैं, अग्नि, हवनकी वस्तु, इन्द्र, होता ( होम करने वाले ) मन्त्र और क्रिया का फल ये सब कुछ आपही हैं ॥ ३९ ॥ हे विष्णो ! आपही अस्ति और नास्ति स्वरूप हैं, अतः मैं आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ, आप सूर्य हैं, दीक्षितों की क्रिया का फल और उसके देनेवाले भी आपही हैं ॥ ४० ॥ समस्त प्राणियों के कारण आपही हैं सुतराम् मुझे शरण देनेवाले भी आपही

हैं, जिस प्रकार युवापुरुषोंका चित्त युवतियोंमें और युवतियोंका युवापुरुषोंमें ॥ ४१ ॥ रमण करता है इसी प्रकार मेरी प्रीति भी तुम्हारे विषे रमण करे, हे हरे ! आपकी शरणमें आया हुआ मनुष्य चाहे जैसा पापी और दुराचारी हो तथापि उसको यमराजके दूत उसी प्रकार नहीं देख सकते जैसे उल्लूकों को सूर्यके दर्शन नहीं होते, दैहिक दैविक और भौतिक तीनों प्रकारके ताप और अन्य पाप तभीतक मनुष्यको पीड़ा देते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे नाथ !

युवतीनांयथायूनियूनांचयुवतौतथा ॥ ४१ ॥ मनोभिरमतेतद्वत्प्रीतिर्मेरमतांत्वयि ॥ अपि-पापंदुराचारंनरंत्वत्प्रणतंहरे ॥ ४२ ॥ नेक्षंतेकिंकरायाम्याउलूकास्तपनंयथा ॥ तापत्रयम-घौघश्चतावत्पीडतेजनम् ॥ ४३ ॥ यावत्स्मरतिनोनाथभक्त्यात्वत्पादपंकजम् ॥ ४४ ॥ यंनस्पृशंतिगुणजातिशरीरधर्मायंनस्पृशंतिगतयस्त्वखिलेंद्रियाणाम् ॥ यंचस्पृशंतिमुनयोग-तसंगमोहास्तस्मैनमोभगवतेहरयेप्रकरोमि ॥ ४५ ॥ स्थूलंविलाप्यकरणेकरणंनिदानेतत्कारणं

जबतक वह भक्तिसे आपके चरणकमलोंका स्मरण-नहीं करता ॥ ४४ ॥ गुण और जाति आदि शरीरके धर्म जिनका स्पर्श नहीं करते, अखिल इन्द्रियोंकी गति भी जिनका स्पर्श नहीं करती, एवं संग और मोह (अज्ञान) रहित मुनीश्वर जिनका स्पर्श करते हैं, उन्हीं हरिभगवान्को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ स्थूलको उसके करणमें कारणको उसके निदानमें और उसके भी कारणको करण तथा कारणसे रहितमें लय करके मुनीश्वर लोग जिसमें

प्रवेश करते हैं उन्हीं ज्ञानस्वरूप हरिको हम नमस्कार करते हैं ।। ४६ ।। जिनका ध्यान करनेसे अन्तःकरण वशमें की हुई, जिनके ऐश्वर्यरूप उत्तम गुण हैं, ऐसा आत्मसुख और मोक्षकी लक्ष्मीका आलिंगन करके आत्मसुखका उपभोग करनेवाले महात्मालोग शयन करते हैं मुनीश्वरोंके द्वारा सेवन किये हुए उन्हीं हरिको नमस्कार है ।। ४७ ।। जिनका स्वभाव जन्ममरण आदि भावोंके विकारसे शून्य है, काम क्रोध लोभ मद मत्सर यह छः वर्ग जिनमें पहुँचकर



करणकारणवर्जितेच।।इत्थंविलाप्यमुनयःप्रविशंतितत्रतंत्वांहरिंविशतिबोधतनुंनमामि ।।४६।। यद्ध्यानसंवहनघूर्णवशीकृतांतामैश्वर्यचारुगुणिनींसुखमोक्षलक्ष्मीम् ।। आलिंग्यशेरतइहात्म-सुखैकभाजस्तस्मैनमोस्तुहरयेमुनिसेविताय ।। ४७ ।। जन्मादिभावविकृतेर्विरहस्वभावेय-स्मिन्नयंपरिचिनोतिषड्डूर्मिवर्गः ।। यंतापयंतिनसदामदनादिदोषास्तंवासुदेवममलंप्रणतोस्मिहा-दम् ।।४८।। यद्भावनागतमलंविजहात्यविद्यांयद्ध्यानहिपतितंजगदेतिनाशम् ।। यद्भावमुख

शान्त हो जाते हैं, काम आदि दोष जिन्हें सता नहीं सकते उन्हीं निर्मल वासुदेव भगवान्को हम नित्य हार्दिक प्रणाम करते हैं ।। ४८ ।। ४९ ।। जिनका भाव उदय होनेसे अविद्याका नाश हो जाता है, और जिनके ध्यानरूप अग्निके निपतित होतेही जगत्का नाश हो जाता है और जिनके भावका खड्ग संदेहरूप शत्रु का विनाश कर देता है ऐसे स्वच्छ ज्ञान स्वरूप हरि भगवानको हम नमस्कार करते हैं। चर-अचर स्वरूप प्राणी ईश्वरका ही शरीर है, सुतराम्

सत्यस्वरूपसे हरिभगवान् मेरे समक्ष उपस्थित हों ॥ ५० ॥ जैसे नारायणही का स्वरूप समस्त स्थावर और जंगम है, केशव भगवान् उसी सत्यस्वरूपके दर्शन मुझे दें ॥ ५१ ॥ उसकी ऐसी २ सत्यशपथोंके द्वारा उसकी भक्तिका विचार करके भगवान् प्रसन्न हो अपने दर्शन दिये ॥ ५२ ॥ स्तुति करके ब्राह्मणके द्वारा सन्तुष्ट हुए, भगवान्

सदसिद्यतिसंशयारितंत्वांहरिविशदबोधघनंनमामि ॥४९॥ चराचराणिभूतानिसर्वाणिचहरे- र्वपुः ॥ यथात्रतेनसत्येनपुरस्तिष्ठतुमेहरिः ॥ ५० ॥ यथानारायणःस जगत्स्थावरजंग- मम् ॥ तेनसत्येनमेरूपंप्रदर्शयतुकेशवः ॥५१॥ तस्यैवंशपथैःसत्यैर्भक्तिंतस्यानुचिंतयन् ॥ दर्शयामासचात्मानंसप्रीतःपुरुषोत्तमः ॥ ५२ ॥ ततोदत्त्वावरंतस्यपूरयित्वामनोरथम् ॥ जगामकमलाकांतःस्तुत्याविप्रेणतोषितः ॥५३॥ कृतकृत्योद्विजःसोऽपिवासुदेवपरायणः ॥ शिष्यैःसार्धंजपन्स्तोत्रंतस्मिन्नास्तेतपोवने ॥५४॥ कीर्तयेद्यइदंस्तोत्रंशृणुयाद्योऽपिमानवः ॥



वरद उसके मनोरथोंको पूरा करके अन्तर्हित हो गये ॥ ५३ ॥ वह ब्राह्मण भी कृतार्थ हो वासुदेवभगवान् में मन लगाया शिष्योंसहित उसी वनमें बसकर स्तोत्र का जप करने लगा ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रका कीर्त्तन अथवा श्रवण करेंगे, उन्हें अश्वमेध यज्ञ के प्रभूत फल का लाभ होगा ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणोंको सदा आत्मविद्याका लाभ होता

है, और न पापमें बुद्धि लगती अथच न उन्हें अमंगलहीके दर्शन होते हैं ॥ ५६ ॥ इस स्तोत्रका संग्रह करनेसे समस्त मनुष्योंको मन बुद्धि और इन्द्रियोंका स्वास्थ्य अधिगत होता है ॥ ५७ ॥ और जो मनुष्य अर्थोंका विचार कर श्रद्धापूर्वक इसका जप करेगा, उसके समस्त पाप दूर हो जायेंगे, अतएव उसको विष्णुधामकी प्राप्ति होगी ॥ ५८ ॥



अश्वमेधस्ययज्ञस्यप्राप्नोतिविपुलंफलम् ॥ ५५ ॥ आत्मविद्याप्रबोधंचलभतेब्राह्मणःसदा ॥ नपापेजायतेबुद्धिर्नैवपश्यत्यमंगलम् ॥ ५६ ॥ बुद्धिस्वास्थ्यंमनःस्वास्थ्यंस्वास्थ्यमैन्द्रिय-कंतथा ॥ नृणांभवतिसर्वेषामस्यस्तोत्रस्यसंग्रहात् ॥ ५७ ॥ विचार्यार्थंजपेद्यस्तुश्रद्धयातत्परोनरः ॥ सविधूयेहपापानिलभतेवैष्णवंपदम् ॥ ५८ ॥ लभतेवांछितान्कामान्पुत्रपौत्रान्पशूंस्तथा ॥ दीर्घ-मायुर्बलंवीर्यंलभतेससदापठन् ॥ ५९ ॥ तिलपात्रसहस्रेणगोसहस्रेणयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नो-तियइमांकीर्तयेत्स्तुतिम् ॥ ६० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयंयंकामयतेसदा ॥ अचिरात्तमवाप्नोति-



एवं सदैव पाठ करनेवाले मनुष्यको अभिलषित कामनाओं, पुत्र-पौत्र और पशुओं, दीर्घ आयु और बलवीर्यकी नित्य प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ सहस्र तिलपात्र और इतना ही गोदान करनेसे जिस फल को प्राप्ति होती है, स्तुति का कीर्तन करनेवाले व्यक्तिको भी उसी फल का लाभ होता है ॥ ६० ॥ धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष–इनमेंसे जिस २ की

कामना करेगा, भविष्योंका इस स्तोत्रके द्वारा तत्काल ही सब कुछ प्राप्त होगा ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस स्तुति का
 श्रवण करते हैं उनकी बुद्धि, आचार, विनय, धर्म, ज्ञान, तप और शुभ नीतिमें निरत रहती है ।।६२।। जो मनुष्य 
महापातकों अथवा उपपापों से युक्त हो वह भी यदि इस स्तोत्रका एकही बार पाठ करले तो शीघ्रही उसकी आत्मा
 शुद्ध हो जाती है ॥ ६३ ॥ बुद्धि, लक्ष्मी, यश, कीर्ति, ज्ञान और धर्मको बुद्धि दुष्टग्रहोंकी शान्ति और अशुभोंका 

स्तोत्रेणानेनमानवः ॥६१॥ आचारेविनयेधर्मेज्ञानेतपसिसन्नये ॥ नृणांभवतिनित्यंधीरिमांसं शृण्वतांस्तुतिम् ॥६२॥ महापातकयुक्तोवायुक्तोवाप्युपपातकैः ॥ सद्योभवतिशुद्धात्मास्तोत्रस्यपठनात्सकृत् ॥ ६३ ॥ प्रज्ञालक्ष्मीयशःकीर्तिज्ञानधर्मविवर्धनम् ॥ दुष्टग्रहोपशमनंसर्वाशुभविनाशनम् ॥ ६४ ॥ सर्वव्याधिहरंपथ्यंसर्वारिष्टनिषूदनम् ॥ दुर्गतेस्तरणंस्तोत्रंपठितव्यंद्विजातिभिः ॥ ६५ ॥ नक्षत्रग्रहपीडासुराजचौरभयेषुच ॥ अग्निचौरनिपातेषुसद्यःसंकीर्त्तयेदिदम् ॥ ६६ ॥ सिंहव्याघ्रभयंनास्तिनाभिचारभयंतथा ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्योराक्षसेभ्यस्त-

विनाश होता है ॥ ६४ ॥ द्विजातियोंको इस स्तोत्र को पाठ अवश्य करना चाहिये, क्योंकि--यह सब व्याधियोंका 
नाश करनेवाला हितकारी, सम्पूर्ण अरिष्टोंका उन्मूलन करनेवाला और दुर्गतिसे उद्धार करनेवाला है ॥ ६५ ॥
नक्षत्र और ग्रह इनकी पीडायें, राजा अथवा चोरोंके भयमें और अग्नि लगने में तत्काल ही इस स्तोत्र का कीर्त्तन

करना चाहिये ॥ ६६ ॥ इस स्तुति का पाठ करने से सिंह व्याघ्र अभिचार ( टोटका ) भूत प्रेत पिशाच और राक्षसों का भय नहीं होता ॥ ६७ ॥ एवं उन मनुष्योंको पूतना जंभक और अन्य विघ्नों से भी भय नहीं होता जो इस स्तोत्र का कीर्त्तन करते हैं ॥ ६८ ॥ वासुदेव भगवान्की पूजा करके जो मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करता है उसको पाप इस प्रकार लिप्त नहीं कर सकते जैसे कमलपत्र जलसे लिप्त नहीं होता ॥ ६९ ॥ गंगा आदि तीर्थों में स्नान

थैवच ॥६७॥ पूतनांजृंभकेभ्यश्चविघ्नेभ्यश्चैवसर्वदा ॥ नृणांकश्चिद्भयंनास्तिस्तवेह्यस्मिन्प्र-कीर्तिते ॥ ६८ ॥ वासुदेवस्यपूजांयःकृत्वास्तोत्रमुदीरयेत् ॥ लिप्यतेपातकैर्नासौपद्मपत्रमिवांभसा ॥६९॥ गंगादिसर्वतीर्थेषुयास्नानैर्नाप्यतेगतिः ॥ तांगतिंसमवाप्नोतिपठन्पुण्यामिमांस्तुतिम् ॥ ७० ॥ एककालंद्विकालंवात्रिकालंवापियःपठेत् ॥ सर्वदासर्वकालेषुसोक्षयंसुख-मश्नुते ॥ ७१ ॥ चतुर्णामपिवेदानांत्रिरावृत्त्याचयत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेस्तोत्रमधीयानः सकृन्नरः ॥७२॥ अक्षय्यंधनमाप्नोतिस्त्रीणांभवतिवल्लभः ॥ ७३ ॥ पूजांविंदतिलोकेस्मि-

करनेसे जिस गतिका लाभ नहीं होता है उस गति का लाभ पवित्र स्तुतिका पाठ करनेवाले को होता है ॥ ७० ॥ जो व्यक्ति एक दो अथवा तीन समय इसका पाठ करता है उसे सदैव अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ७१ ॥ चारों वेदोंका तीन २ बार पाठ करनेसे जो फल उपलब्ध होता है, इस स्तोत्रका केवल एकही बार पाठ करनेसे उस फल

की प्राप्ति हो जाती है ॥ ७२ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले व्यक्तिको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है और वह स्त्रियोंको प्रिय हो जाता है ॥ ७३ ॥ सदैव हरिस्मरण करनेसे लोकमें उसकी पूजा होती है, वह सदा धनाढ्य रहता है, एवं उसे विपत्तिकी प्राप्ति कभी भी नहीं होती ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य नित्य इस स्तोत्रका कीर्त्तन करता है, उसे इन्द्रियोंके वशंभूत नहीं होना होता ॥ ७५ ॥ जो भक्तजन इस स्तोत्रका श्रवण करते हैं, उनका दरिद्र जालकर्णी (अमङ्गल्य)





त्नुद्ध्यासंस्मरन्हरिम् ॥ सर्वदासम्पदायुक्तोविपदंनैवगच्छति ॥ ७४ ॥ गोभिर्नह्रियतेस्तोत्रं-नित्यंयःकीर्तयेद्धिप्रत् ॥ ७५ ॥ अलक्ष्मीजालकर्णीचदुःस्वप्नंदुर्विचिन्तितम् ॥ सद्योनश्यंति भक्तानामेतंसंशृण्वतांस्तवम् ॥ ७६ ॥ प्रातरुत्थाययोधीते शुचिर्विष्णुपरायणः ॥ अक्षय्यं-लभतेसौख्यमिहलोकेपरत्रच ॥ ७७ ॥ देवद्युतिप्रणीतंवैविष्णुदर्शनकारकम् ॥ योगसारमि-दंनामस्तोत्रंपरमपावनम् ॥ ७८ ॥ यःपठेत्सततंभक्त्याविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ७९ ॥ इति-

दुःस्वप्न और दुष्टचिन्ताएँ इन सबका शीघ्रही नाश हो जाता है ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य शौच धारणपूर्वक विष्णुभक्तिमें निरत प्रातःकालही इस स्तोत्रका पाठ करता है उसे इसलोक और परलोकमें अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ देवद्युति के निर्माण किए हुए इस स्तोत्रका योगसार नाम है, और यह परमपवित्र स्तोत्र विष्णुभगवान्‌का दर्शन करानेवाला है ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य नित्य भक्तिभावपूर्वक इसका पाठ करता है, वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ७९ ॥ इस

प्रकार परमगोपनीय अतएव बड़े-बड़े पापों का विनाश करनेवाले इस स्तोत्रको हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसके पश्चात् पिशाचकी मुक्तिका वर्णन करते हैं ॥८०॥ इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

लोमशजी बोले—सुनो! उस वनमें जिस पिशाचकी मुक्ति हुई थी, प्रथम द्राविड़देशमें चित्रनाम एक राजा



तेकथितंस्तोत्रंगुह्यंपापप्रणाशनम् ॥ अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिपिशाचस्यविमोचनम् ॥८०॥ इति-श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्येवसिष्ठदिलीपसंवादेयोगसारस्तोत्रकथनंनाम एकोन-विंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

लोमशउवाच। श्रूयतांयःपिशाचःसमोचितोयेनतद्वने ॥ आसीद्राजाचित्रनामा-द्राविडेविषयेपुरा ॥ १ ॥ सोमान्वयेमहावीरःशूरशास्त्रार्थपारगः ॥ गजवाजिरथौघैश्चसंपन्नो-विक्रमीसदा ॥ २ ॥ स्वर्णैर्नानाविधैरत्नैःपूर्णकोशोमहाधनः ॥ न करोतिवचधर्म्मंसचिवैः



था ॥ १ ॥ उसका चन्द्रवंशमें जन्म हुआ था, वह महावीर शूर एवं शास्त्रपारगामी था, उसके पास रथ और हाथी घोड़े प्रभूत थे, अथच वह पराक्रमी भी था ॥ २ ॥ सुवर्ण, अनेक प्रकारके रत्न और प्रभूत धनसे उसका कोष (खजाना) पूर्ण रहता था, एवं सहस्रों स्त्रियोंमें वह नित्य क्रीड़ा किया करता था ॥ वह राजा बड़ा कामी



अतएव स्त्रियों में आसक्त, अतीव लोभी और अतिशय क्रोधी था और वह ...

अतएव स्त्रियों में आसक्त, अतीव लोभी और अतिशय क्रोधी था, और वह मन्त्रियोंके कहे हुए धर्मयुक्त वचन को भी नहीं मानता था ॥ ४ ॥ यह दुष्ट विष्णुभगवान् की अत्यन्त निन्दा करता, नित्य वैष्णवोंसे द्वेष करता और यों कहा करता था कि–विष्णु कहाँ है और कौन है, किसने उन्हें देखा और कौन उनका कीर्तन करता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार वह राजा दैव (प्रारब्ध) से मोहित हो विष्णुभगवान् को सहन नहीं करता था, अतएव जो प्राणी नारायण का भजन

समुदीरितम् ॥ ४ ॥ विष्णुं निंदति लोऽत्यर्थं वैष्णवान्द्वेष्टि सर्वदा । कोसौ विष्णुः क्व दृष्टोऽसौ क्व चास्ते केन कीर्त्यते ॥ ५ ॥ इत्थं न सहते विष्णुं स राजा दैवमोहितः ॥ नारायणं भजंते ये तान्पीडयति कोपितः ॥ ६ ॥ न ब्राह्मणान्न वेदांश्च वैदिकं कर्म न व्रतम् ॥ न दानं मन्यते दातुं पाखंडस्थितिसंस्थितः ॥ ७ ॥ अनीत्या चंडदंडैश्च प्रजापीडां करोति सः ॥ निष्ठुरो निर्दयः क्रूरः पुण्यकार्यपराङ्मुखः ॥ ८ ॥ च्युताचारोऽच्युतद्वेष्टा च्युताग्निश्च्युतक्रियः ॥ सानुशास्ति जनं भूपः

करते उन्हें वह क्रोधकर पीड़ा देता था ॥ ६ ॥ उसने पाखण्डियों की स्थिति का अवलंबन कर लिया था, अतएव वह ब्राह्मण, वेद, वेदोक्तकर्म, व्रत और दान किसी को भी कुछ नहीं मानता था ॥ ७ ॥ उस कठोर के हृदय में दया नहीं थी, एवं वह कुटिल पुण्यके कर्मोंसे विमुख था, अतएव अनीति से उग्रदण्ड देकर नित्य प्रजा को पीडित करता था ॥ ८ ॥ उसके सभी आचरण नष्ट हो गये थे, वह विष्णुभगवान् से द्वेष करता था, उसकी अग्निहोत्र की अग्नि और

अन्यसत्क्रियाएँ नष्ट हो गई थीं, सुतराम् वह राजा दूसरे यमराज के समान प्रजा का शासन करता था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर बहुत समय व्यतीत हो जानेपर उस राजाकी मृत्यु होगई तब भी उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया वैदिक विधिके अनुसार नहीं हुई ॥ १० ॥ तब तो यमराज के दूतोंने उसे अतीव पीड़ा दी, जिस मार्ग में लोहे की कीलें लग रही हैं,

कालरूपइवापरः ॥ ९ ॥ ततोबहुतिथेकालेसराजापंचतांगतः ॥ वैदिकेनविधानेनलेभेनैवौर्ध्वदैहिकम् ॥ १० ॥ अथकिंकरयूथेनपीड्यमानोभृशंतदा ॥ अयःकीलमयेमार्गेतप्तसिकताप्रपूरिते ॥ ११ ॥ चंडार्करश्मिसंतप्तेवृक्षच्छायाविवर्जिते ॥ तप्तांगारप्रकीर्णेचवह्निज्वालासमाकुले ॥ १२ ॥ लोहतुण्डैश्चकाकोलैर्हन्यमानःसदारुणैः ॥ वृकैर्दंष्ट्राकरालैश्चश्वभिर्घोरैश्चभक्षितः ॥ १३ ॥ शृण्वन्नक्रन्दितमन्येषांनृणांकिल्बिषकारिणाम् ॥ जगामपार्थिवोलोकमन्तकस्यभयावहम् ॥ १४ ॥ शृणुद्विजगतितस्यतस्मिँल्लोकेसुदुःसहाम् ॥ निरयान्निरयंयातः

जहाँ भरपूर तपती बालू है ॥ ११ ॥ जहाँ प्रचंड सूर्य की कीरणें जल रही हैं और वृक्षों की छाया नहीं है और अग्नि ज्वाला से व्याप्त जिस मार्ग में दहकते हुए अङ्गारे बिछ रहे हैं ॥ १२ ॥ लोह निर्मित दारुण आयुधों से पीड़ित, तीव्र दाँतोंवाले वृक और घोर भेड़ियों से भक्षित ॥ १३ ॥ वह जाता और अन्यान्यपापियों के रोदन को सुन रहा था, इसी

विधिसे वह राजा यमराज के भयप्रद लोक में गया ॥ १४ ॥ हे द्विज ! उस यमपुरी में जो उसकी दुर्गति हुई उसको सुनो, उस राजा को क्रमानुसार एक नरक से दूसरे नरक में इस प्रकार सर्वत्र पहुँचाया गया ॥ १५ ॥ सबसे प्रथम वह दारुण और घोर दुःखदायक तामिस्र नरक में भेजा गया, इसके पश्चात् उसे निरन्तर दुःख देनेवाले अन्धतामिश्र में





पर्यायेणसभूपतिः ॥ १५ ॥ आदौभयातस्तामिस्रे दारुणेभूरिदुःखदे ॥ पुनश्चैवांधतामिस्रे-यत्रदुःखंनिरंतरम् ॥ १६ ॥ गतोऽनंतरमत्युग्रंमहारौरवरौरवम् ॥ नरकंकालसूत्रंचमहानरक-मेवच ॥ १७ ॥ पश्चान्मग्नःसभूपालोदुस्तरेदुःखमूर्छितः ॥ संजीवनेमहावीचौतापनेसंप्रता-पने ॥ १८ ॥ प्रतापनरकंराजादुःखाग्निप्लुष्टमानसः ॥ संपातंचसकाकोलंकुड्मलंपूतिमृत्ति-कम् ॥ १९ ॥ लौहशंकुंमृगीयंत्रंपंथानंशाल्मलिंनदीम् ॥ प्रविष्टोथमहाभीमंदुर्दर्शंदुर्गमंपुनः ॥ २० ॥

भेजा गया ॥१६॥ फिर बड़े उग्र रौरवमहारौरव कालसूत्र और महानरक में वह गया ॥ १७ ॥ तदनन्तर दुस्तर दुःखमें मग्न होने के कारण वह राजा मूर्छित हो गया। फिर जब उसे चेत हुआ तब वह तापन और संप्रतापन नरक में गया ॥१८॥ प्रताप नरक में राजा का मन दुःखसे अत्यन्त व्याकुल होगया, संताप, काकोल, कुड्मल, पूतिमृत्तिक इन नरकों में फिर वह भेजा गया ॥ १९ ॥ लोहशंकु, मृगीयन्त्र, शाल्मली मार्ग में जाकर फिर दुर्गम मार्ग में प्रविष्ट

हुआ ॥ २० ॥ असिपत्रवन, लोहतारक, इसी प्रकार क्रमशः इन सब नरकों में वह पापी राजा निपतित हुआ ॥ २१ ॥ विष्णुभगवान् से द्वेष करने के कारण उसे इक्कीस युग पर्यन्त घोर नरकों में दुस्सह यातना भोगनी पड़ी ॥ २२ ॥ यमकी यातना भोग चुकने के अनन्तर उस राजा का जब नरक से उद्धार हुआ तब समय पाय वह गिरिराज के



असिपत्रवनं चैव लोहतारकमेव च ॥ एवमेतेषु सर्वेषु पतित्वा पापकृन्नृपः ॥ २१ ॥ अविंदन्नरके घोरे संतापं यातनामयम् ॥ विष्णुप्रद्वेषघोषेण युगानामेकविंशतिः ॥ २२ ॥ भुक्त्वा च यातनां याम्यां निस्तीर्णनरको नृपः ॥ समयाद्गिरिराजे तु पिशाचोऽभूत्तदा महान् ॥ २३ ॥ सभ्राम्यति दिशः सर्वा वने तस्मिन्बुभुक्षितः ॥ न पश्यत्यशनं तोयं मेरावपि सदा गिरौ ॥ २४ ॥ कदाचित्पर्यटन्सोऽथ पिशाचः शोकपीडितः ॥ प्लक्षप्रस्रवणारण्यं प्रविष्टो भाविसत्फलम् ॥ २५ ॥ बिभीतकतरुच्छायां समाश्रित्य सुदुःखितः ॥ हा हतोस्मीति चाक्रन्दद् घोरमुच्चैः पुनः पुनः ॥ २६ ॥ क्षुत्तृड्भ्यां

ऊपर बड़ा पिशाच हुआ ॥ २३-२४ ॥ एक समय वह पिशाच शोक से पीड़ित हो विचरता २ होनहार शुभ फल के कारण प्लक्ष प्रस्रवण वनमें प्रवृष्ट हुआ ॥ २५ ॥ वह दुःखित हो बहेड़े के वृक्षकी छाया में बैठगया, और हाय !!! मैं मरा यों कहकर ऊँचे स्वर से बार-बार डकारने लगा ॥ २६ ॥ वह सोचने लगा कि भूख प्यास से व्याकुल हुए मुझ सब

प्राणियों से द्वेष करनेवाले के इस जन्मका अन्त क्योंकर होगा ॥२७॥ जिसमें दुःखकी तरंगे उठ रही हैं ऐसे पापके समुद्र में मुझ डूबते हुए को इस समय कौन हाथका सहारा देके बचा सकता है ॥ २८ ॥ इति माघमास माहात्म्ये भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥



मुह्यमानस्यसर्वभूतद्रुहोमम ॥ जन्मनोऽस्यदुरन्तस्यकथमन्तोभविष्यति ॥ २७ ॥ आदौपाप-समुद्रेस्मिन्दुःखकल्लोलमालिनि॥करावलम्बनं कोद्यनिमग्नस्य प्रदास्यति॥२८॥इति श्रीपद्म-पुराणे उत्तरखण्डेमाघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे पिशाचाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

लोमश उवाच ॥ इत्थंतस्यपिशाचस्यरोदनदीनचेतसः ॥ देवद्युतिरधीयानःशुश्राव-करुणामयम् ॥ १ ॥ समागम्यततस्तत्रतंपिशाचंददर्शसः ॥ विकरालमुखंभीमंपिशंगनयनं-कृशम् ॥ २ ॥ उर्ध्वमूर्धजकृष्णांगंयमद्भुतमिवापरम् ॥ ललज्जिह्वंचलंबोष्ठंदीर्घजंघंशिरा-



लोमशजी बोले-दीनचेता पिशाच के इस प्रकार करुणापूर्ण रोदनको पढ़ते २ देवद्युति ने श्रवण किया ॥१॥ तब उसने वहाँ आकर क्या देखा कि, एक पिशाच बैठा है उसका मुख बड़ा भयङ्कर है और उसके नेत्र भूरे २ तथा देह दुर्बल था ॥ २ ॥ उसका देह श्याम और शिरके बाल ऊपर को थे, उसकी जिह्वा लपलपा रही और वह ओठोंको

चाट रहा था, उसकी जंघाएँ बड़ी और देह नसों से व्याप्त हो रहा था सुतराम् वह दूसरे यमदूत के समान प्रतीत होता था ॥ ३ ॥ उसके चरण बड़े, सूखी नासिका और शरीर पञ्जरमात्र था, उसके नेत्रों में गड्ढे पड़ रहे थे, सुतराम् कौतुकसे व्याप्त हो मुनि उससे पूँछने लगे ॥ ४ ॥ हे भीषण आकृतिवाले व्यक्ति ! तू कौन है, और इस प्रकार अतीव रोदन क्यों कर रहा है एवं तेरी यह अवस्था ऐसी क्यों हो रही है ! बतलाओ कि हम तुम्हारा क्या (उपकार)



कुलम् ॥ ३ ॥ दीर्घांघ्रिशुष्कतुंडंचगर्ताक्षंशुष्कपंजरम् ॥ अथामुंकौतुकाविष्टःपप्रच्छमुनि-पुंगवः ॥ ४ ॥ कोसित्वंभीषणाकारःकुतोरोदिषिदारुणम् ॥ अवस्थेयंकुतोब्रूहिकिंचाहंकरवाणिते ॥५॥ममाश्रमप्रविष्टाहिदुःखभाजोनजन्तवः॥ मोदन्तेकेवलंसर्वे वैष्णवेभवनेयथा॥६॥ वदत्वंसत्वरंभद्रदुःखस्यैतस्यकारणम् ॥ कालक्षेपंनकुर्वंतिप्राप्तेऽर्थेतिमनीषिणः ॥ ७ ॥ श्रुत्वै-तद्वचनंप्रीतःपिशाचस्त्यक्तरोदनः ॥ उवाच दीनयावाचाप्रश्रयावनतस्तदा ॥ ८ ॥ सर्वांग-

करें ॥ ५ ॥ क्योंकि हमारे आश्रम में जीवको दुःख नहीं भोगना पड़ता, किन्तु वे विष्णुलोक के समान आनन्द करते हैं ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! तुम शीघ्र ही अपने इस दुःखके कारण को सुनाओ, कारण कि, बुद्धिमान् लोग अर्थ (प्राप्ति) का समय उपस्थित होने पर कालक्षेप नहीं करते हैं ॥ ७ ॥ ये वाक्य सुन रोदन त्याग पिशाच प्रसन्न हो गया और विनय से मुख नीचाकर दीनवाणीसे कहने लगा ॥ ८ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतु में दावानलसे प्रादुर्भूत हुए पहाड़ोंके संतापको

वर्षा करके मेघ अपहरण कर लेता है, उसीप्रकार हमारे समस्त अंगके सन्ताप को आपके वचनोंने हर लिया है ॥९॥ हे द्विजराज! मेरा कुछ न कुछ पुण्य अवश्य है, इसीकारण आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, कारण कि जिन्होंने पुण्यों का संचय नहीं किया है, उनका महात्माओंके साथ समागम नहीं होता ॥ १० ॥ यों कहकर उसने अपनी पूर्व कथा का वर्णन किया कि, मैं विष्णुभगवान् से द्वेष करने ही के अपराध से इस दशा को प्राप्त हुआ हूँ ॥११॥ प्राणत्याग करने के

ऽथापिसंतापंजहारत्वद्वचोमयि ॥ ग्रीष्मेदावानलोद्भूतंवर्षन्मेघइवाचले ॥ ९ ॥ यन्मेस्तिसुकृतं-किंचित्तेनदृष्टोसिमेद्विज ॥ नह्यसंचितपुण्यानांसद्भिरेकत्रसंगमः ॥ १० ॥ इत्युक्त्वाकथयामास-पूर्ववृत्तांतमात्मनः ॥ विष्णुद्वेषप्रदोषेणदशांमेतामहंगतः ॥ ११ ॥ यन्नामप्राणान्मुक्तोहिस्मृ-त्वाविष्णुपदंव्रजेत ॥ पापिष्ठोपिहरौतस्मिन्ममद्वेषोऽभवद्द्विज ॥ १२ ॥ यःपालयतिभूतानिधर्म-यातिजगत्त्रये ॥ योंतरात्माचभूतानांतस्मिन्द्वेषोममाभवत् ॥ १३ ॥ कर्मणाफलदोयोऽत्रसर्व-

समय जिनके नामका स्मरण करने से बड़े पापी भी विष्णुपद का लाभ करते हैं, हे द्विजराज! उन्हीं नारायणसे मेरा द्वेष था ॥ १२ ॥ जो सब प्राणियों का पालन करता है, जो त्रिलोकीमें धर्म होकर प्राप्त होता है और जो सब प्राणियों का अन्तरात्मा है, उसीसे मेरा द्वेष था ॥ १३ ॥ जिसको सब वेदोंमें कर्मोंका फल देनेवाला वर्णन किया गया है, एवं तपश्चर्याओंके द्वारा ब्राह्मणलोग जिसका भजन करते हैं उसीसे मैंने वैर किया ॥ १४ ॥ जिन्होंने समस्त

क्रियाओं और संगतिका परित्याग कर दिया है, अतएव जो एकाकी विचरते और वनवासके अनुरागी हैं ऐसे यति-लोग वेदान्तज्ञानसे जिनकी चिन्तना करते हैं, वेही हरि मेरे द्वेषी थे ॥ १५ ॥ ब्रह्माआदि सब देवता और सन-कादिक सब योगी मुक्तिकी कामनासे जिसकी अर्चा करते हैं उसी ईश्वरसे मैंने द्वेष किया ॥ १६ ॥ जो आदि मध्य

वेदेषुगीयते ॥ तपोभिरिज्यतेविप्रैःसमेद्वेषवशंगतः ॥ १४ ॥ त्यक्तक्रियैःप्रियारण्यैर्नःसंगै-कचरैश्चयः ॥ वेदांतेर्यतिभिश्चिंत्यःसमेद्वेषीहरिर्द्विज ॥ १५ ॥ ब्रह्मादयःसुराःसर्वेयोगिनः सनकादयः॥ मुक्त्यर्थमर्चयंतीहसविष्णुर्द्वेषितोमया ॥ १६ ॥ आदौमध्येवसानेयोविश्वधाता सनातनः॥ यस्यनैवादिमध्यांतःसमेद्वेषपदंययौ ॥१७॥ यन्मयासुकृतंकर्मकृतंप्राक्तनजन्मनि॥ विष्णुद्वेषाग्निनादग्धंतत्सर्वभस्मसाद्भूत् ॥१८॥ कथंचिदस्यपापस्यसीमांप्रेक्ष्यामिचेदहम् ॥ मुक्त्वानारायणंनान्यमर्चयिष्यामिदेवताम् ॥ १९ ॥ विष्णुद्वेषाच्चिरंभुक्तामयानरकयातनाः ॥



और अन्तमें सदासे जगत्का पालन और धारण करनेवाले हैं और जिनका स्वयं आदि मध्य अन्त नहीं है, उन्हीं भगवान्से मैंने द्वेष किया ॥ १७ ॥ पूर्वजन्ममें मैंने जो कुछ पुण्य किया भी था, वह सब विष्णुभगवान्के द्वेष रूप अग्निसे जलकर भस्म हो गया ॥ १८ ॥ यदि किसीप्रकार मुझे इस पापकी सीमा दृष्टिगत हो तो मैं नारायणको छोड़

अन्य किसी देवता की पूजा न करूं ॥१९॥ विष्णुभगवान् से द्वेष करनेके कारण चिरकालपर्यन्त मैंने नरकोंकी यातना भोगी, अब वहाँ से निकलने पर मुझे पिशाचयोनि प्राप्त हुई है ॥ २० ॥ अब किन्हीं कर्म मन्त्रों से आपके आश्रम में आ पहुँचा, और यहाँ आपके दर्शनरूप सूर्य्य से मेरे दुःखों का अन्धकार मिट गया ॥ २१ ॥ जहाँ मरण, बन्धन, श्री



निरयान्निःसृतःसोहंपैशाचींयोनिमागतः ॥ २० ॥ अधुनाकर्ममंत्रैःकैरथानीतस्त्वदाश्रमम् ॥ यत्त्वदर्शनार्कान्मेनष्टंदुःखमयंतमः ॥ २१ ॥ प्राप्यतेमरणंयत्रबंधनंश्रीःसुखंवधूः ॥ सत्त्रलीयतेस्वेनकर्मणागलहस्तिना ॥२२॥ इदानीमुचितंकर्मब्रूहिपैशाच्यनाशनम् ॥ परोपकारकार्येहिनधन्यामंदगामिनः ॥ २३ ॥ देवद्युतिरुवाच ॥ अहोमुष्णातिमायेयंदेवासुरनृणांस्मृतिम् ॥ ययादेवेष्वपिद्वेषीजायतेधर्मनाशनः ॥२४॥ स्रष्टापालयिताहंताजगतांयोमहेश्वरः ॥



(लक्ष्मी) अथवा सुख और वधूकी प्राप्ति होती है अपने कर्म गले में हाथ डाल वहाँ ही ले जाते हैं ॥ २२ ॥ अब आप पिशाचयोनिसे मुक्त करनेवाले उचित कर्मका उपदेश करिये, क्योंकि सज्जन महात्मा लोग परोपकार करनेमें विलम्ब नहीं करते हैं ॥ २३ ॥ देवद्युति बोला—आश्चर्य है कि, वह माया देवता दैत्य और मनुष्य सभी की स्मृति का अपहरण कर लेती है, अतएव देवताओं के प्रतिमी धर्मका नाश करनेवाले द्वेषका प्रादुर्भाव हो जाता है ॥ २४ ॥ जो

महेश्वर संसार के रचने, पालने और संहार करनेवाले हैं एवं जो सब प्राणियों के आत्मा हैं। अन्यथा कौन मूर्ख उनसे किसी प्रकार द्वेष कर सकता है ? ॥ २५॥ जिनके अर्पण करनेसे समस्त कर्म सफल हो जाते हैं, उन ईश्वरकी भक्तिसे विमुख होकर किस मनुष्यको दुर्गति की प्राप्ति नहीं होती ? ॥ २६ ॥ श्रुति स्मृति और सदाचार विहित कर्मोंकी चारों

आत्माचसर्वभूतानांतंमूढोद्वेष्टिकःकथम् ॥ २५ ॥ भवंतिसर्वकर्माणिसफलानियदर्पणात् ॥
तद्भक्तिविमुखोमर्त्यःकोनयातीदुर्हर्गतिम् ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितंकर्मकेवलम् ॥
सेवितव्यंचतुर्वर्णैर्भजन्नारायणंसदा ॥ २७ ॥ अन्यथानरकंयातिविनाह्यागमसेवनात् ॥
अतोवेदविरुद्धार्थंशास्त्रोक्तंकर्मसंत्यजेत् ॥ २८ ॥ स्वबुद्धिरचितैःशास्त्रैःप्रतार्येहतुबालिशान् ॥
विघ्नंतिश्रेयसोमार्गंलोकनाशायकेवलम् ॥ २९ ॥ निंदंतिदेवतावेदांस्तपोनिंदंतिसद्द्विजान् ॥

वर्णोंको सेवा करनी चाहिये और नारायणका भजन करना कर्त्तव्य है ॥ २७ ॥ यदि ऐसा न करैं और अशास्त्रोक्त कर्मोंका सेवन करैं तो नरक में जाना होता है, अतएव शास्त्रोक्त कर्म यदि वेद विरुद्ध हों तो उनका परित्याग कर देना चाहिये ॥ २८ ॥ जो निजरचित शास्त्रों के आधार से मूर्खों को ठगते हैं वे केवल धर्मका नाश करनेके लिये धर्मपथमें विघ्न डालते हैं ॥ २९ ॥ निकृष्ट शास्त्रों का सेवन करनेसे वे लोग देवताओं, वेदों, तप और ब्राह्मणों की निन्दा करते

हैं और इसी कारण उन्हें नरक में जाना होता है ॥ ३० ॥ बड़े आश्चर्य की बात है कि, सन्मार्ग में निष्ठ हुए सदाचारी राजाकी बुद्धि दैववशात् दुष्ट हो कुमार्ग का अनुसरण करने लगे ॥ ३१ ॥ दुष्टों की संगति भला किसको दुःखदायिनी नहीं होती, श्रुति स्मृति और सदाचार के विधायक सनातन धर्मका ॥ ३२ ॥ यत्नपूर्वक उन





तेनतेनरकंयांतिह्यसच्छास्त्रनिषेवणात ॥ ३० ॥ अहोसन्मार्गनिष्ठस्यसच्चरित्रस्यभूपतेः ॥ जाताविधिवशाद्दुष्टाकुमार्गाकुलिनीमतिः ॥३१॥ असतांसंगतिःकस्यमूलंनविपदांभवेत् ॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितंशाश्वतंपरम् ॥३२॥ स्वस्वधर्मप्रयत्नेनश्रेयोर्थीहसदाचरेत् ॥ स्वबुद्धिरचितैःशास्त्रैर्मोहयित्वाजनंजडाः ॥३३॥ हरिशंकरयोपापायत्रभेदंहिकुर्वते ॥ हरेहरौच-धर्मात्मानभेदंहृदयेचरेत ॥ ३४ ॥ अयमेवयथाराजाद्राविडोनिरयंगतः ॥ द्विषन्नारायणं-देवंदेवदेवंजगत्प्रभुम् ॥३५॥ तस्माद्द्वेषंहिदेवेषुब्राह्मणेषुविशेषतः ॥ संत्यजेत्पुण्यकामोऽत्रवे-



व्यक्तियोंको सेवन करना चाहिये, जो सदा कल्याणकी कामना करते हैं ॥ ३३ ॥ मूर्ख और पापी लोग अपने निर्माण किये हुए शास्त्रोंसे मनुष्यों को मोहित कर विष्णु और महादेव में भेद करने लगते हैं, अतएव धर्माचारी को चाहिये कि, शिव और विष्णु में भेद न समझे ॥ ३४ ॥ क्योंकि यह द्राविड़ देशका राजा देवाधिदेव जगन्नाथ

भगवान्‌से द्वेष करनेके कारण नरकगामी हुआ था ॥ ३५ ॥ अतएव जो मनुष्य अपने पुण्य की कामना करता हो उसे चाहिये कि, देवताओं और खासकर ब्राह्मणोंसे द्वेष न करै, एवं वेदबाह्य क्रियाओंको भी छोड़ दे ॥ ३६ ॥ यों कहकर मुनिराज उस पिशाचसे हितकारी वचन कहने लगे कि, हे सौम्य ! तुम माघमास में प्रयागको जाओ ॥३७॥ वहाँ स्नान करनेसे तुम्हारी पिशाचयोनिसे अवश्य मुक्ति हो जायगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हैं, क्योंकि सनातन की

दबाह्यांक्रियांत्यजेत ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वाकथयामासपिशाचायहितंमुनिः ॥ प्रयागंगच्छभो-भद्रमाघमासंविचारय ॥ ३७ ॥ यत्रतेनिश्चितामुक्तिःपैशाच्यान्नात्रसंशयः ॥ तत्राप्लुतादिवं-यांतिश्रुतिरेषासनातनी ॥ ३८ ॥ विजहातिनरस्तत्रप्राक्तनंकर्मदुष्कृतम् ॥ प्रयागस्नानतो-नास्तिकाप्यन्यदधिकंपरम् ॥ ३९ ॥ प्रायश्चित्तंतपोरूपंदानरूपंक्रियात्मकम् ॥ यागयोगाधिकं-विद्धिप्रयागंपापिनामपि ॥ ४० ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारंतत्पृथिव्यामपावृतम् ॥ सितासितोद्‌वेणी-

यह श्रुति है कि, वहाँ स्नान करनेवाले व्यक्ति स्वर्गगामी होते हैं ॥ ३८ ॥ वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य अपने प्राचीन दुष्कर्मोंका परित्याग कर देते हैं, प्रयाग स्नान की अपेक्षा अधिक पुण्यदायक अन्य कहीं भी कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ तपश्चर्यारूप प्रायश्चित्त दानरूप क्रिया योग और इन सबको अपेक्षा प्रयाग पापियोंको अधिक सिद्धि देनेवाला है ॥ ४० ॥ वह पृथ्वीके ऊपर स्वर्गका खुला हुआ द्वार है, गंगा यमुना और त्रिवेणी को छोड़ भूमिके ऊपर अन्य

मा मा. २१८ १९

कोई स्थान ऐसा पवित्र नहीं है, जो मनुष्य पापकी बेड़ियोंके बन्धनसे जकड़े हुए हैं उनका बन्धन काटनेके लिये यह एक कुल्हाड़ी है ॥४१॥ कहाँ तो विष्णु, सूर्य्यतेज, अग्नि और गंगा यमुनाका संगम और कहाँ मनुष्योंके पापरूप तृणोंकी बेचारी तुच्छ आहुति ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार शरद्ऋतु में घने अन्धकारका नाश हो जाने पर चन्द्रमा सुशोभित होता

यातांहित्वाभुविनापरा ॥ पापनैगडबद्धस्यच्छेदनैककुठारिका ॥ ४१ ॥ क्वविष्णुःसूर्यतेजो-ग्निर्गंगायामुनसंगमः ॥ क्ववराकीनृणांतुच्छापापाराशितृणाहुतिः ॥ ४२ ॥ मलीमसघनध्वंसे यथाशरदिचंद्रमाः ॥ भातिपापक्षयादूर्ध्वंनरोवेणीजलाप्लुतः ॥४३॥ सितासितस्यमाहात्म्य महंवक्तुंनतेक्षमः । यत्तोयकणसंस्पृष्टोमुक्तः केरलकोद्विजः ॥४४॥ इतिवाक्यमृषेः श्रुत्वा पिशाचस्तुष्टमानसः ॥ मुक्तः दुःखइवप्रीतः पप्रच्छप्रणयान्मुनिम् ॥४५॥ कथंकेरलदेशोयोद्वि

है, ऐसे ही त्रिवेणी के जलमें स्नान करने के अनन्तर निष्पाप होजाने के कारण मनुष्यों की भी विशेष शोभा होती है ॥ ४३ ॥ गंगा यमुनाका माहात्म्य वर्णन करनेके लिये मेरी शक्ति पर्याप्त नहीं है, कारण कि उसके जलबिन्दु का स्पर्श करनेसे केरलदेशीय ब्राह्मणकी मुक्ति होगई ॥ ४४ ॥ ऋषिके ऐसे वाक्य सुन पिशाचका चित्त सन्तुष्ट हो गया, और जैसे इसके सब दुःख दूर होगये हैं ऐसा प्रसन्न हो नम्रता पूर्वक ऋषि से पूछने लगा ॥ ४५ ॥ हे महामुने !

मा.टी. ४२२० २१०

केरल देश के ब्राह्मण की मुक्ति किस प्रकार से हुई मेरे ऊपर करुणा करके इस वृत्तान्त का वर्णन करिये ॥ ४६ ॥
इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥



देवद्युति बोला—सुनो पिशाच ! हम पवित्र कथा का वर्णन करते हैं, केरलदेशमें वसु नामवाला एक वेदपार-



जोमुक्तोमहामुने ॥ एतंकथयवृत्तांतंसंसृत्यकरुणांमयि ॥ ४६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तर-
खंडे माघमासमाहात्म्ये वसि० पिशाचाख्यानंनाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥
देवद्युतिरुवाच ॥ पिशाचशृणुपुण्यां मे कथां कथयतः शुभाम् ॥ केरलेवसुनामात्र-
ब्राह्मणोवेदपारगः ॥१॥ दायादैर्हृतवित्तस्तुनिर्धनोबन्धुवर्जितः ॥ जन्मभूमिंपरित्यज्यमहा
दुःखेनदुःखितः ॥२॥ देशाद्देशंपरिभ्राम्यकालेनमहतापुनः॥प्रविश्यसमहारण्यमीषद्व्याधि-
प्रपीडितः ॥३॥ गच्छंस्तीर्थान्तरंश्रांतः क्षुत्क्षामर्विन्ध्यपर्वते ॥ दुर्भिक्षेणमृतिंलेभेनदाहंत्वौर्ध्व



गामी ब्राह्मण था ॥ १ ॥ जब उसके कुटुम्बियों ने उसके धनका अपहरण कर लिया, तब वह निर्धन और निर्जन हो अत्यन्त दुःखित होकर अपनी जन्मभूमि को छोड़ ॥ २ ॥ एक देश से दूसरे देश में घूमता फिरता बहुत दिनोंके पश्चात् कुछ व्याधिसे पीड़ित हो गहरवन में चला गया ॥३॥ अन्तमें तीर्थकी यात्रा करता २ क्षुधासे व्याकुल

हो विन्ध्याचल के ऊपर थककर दुर्भिक्ष के कारण मर गया, परन्तु उसका दाह तथा और्ध्वदेहिक संस्कार कुछ न हुआ ॥ ४ ॥ इसी घोर कर्मफल के कारण उसी पर्वतके गहन एवं निर्जन वनमें प्रेत होकर उसने बहुत दिनों तक निवास किया ॥ ५ । शीत और धूप की पीड़ा से वह बड़ा व्यथित रहता था, उसको भोजन और जल की भी प्राप्ति नहीं होती थी, न उसके पास वस्त्र थे न जूते ही थे, अतएव लंबी-लंबी साँसें लेता और हाय हाय करता





देहिकम् ॥४॥ तेनकर्मविपाकेनतत्रैवगिरिगह्वरे ॥ प्रेतभूतश्चिरं कालमुवासनिर्जनेवने ॥५॥ शीतातपपरिक्लिष्टोनिराहारोनिरूदकः ॥ दिगंबरोव्युपानत्कोगिराहाहेतिनिःश्वसन् ॥६॥ इतस्ततः परिभ्राम्यवायुभूतः सकेरलः ॥ द्विजोनशरणंलेभेनसुखंकुत्रचित्तदा ॥ ७ ॥ संशोचतिस्मदुःखार्तोनैवपश्यतिसद्गतिम् ॥ सर्वदादत्तदानंसभुंक्तेस्वकर्मणः फलम् ॥८॥ हरिर्जुह्वतिनाग्नौयेगोविंदंनार्चयन्तिये ॥ भजंतेनात्मविद्यांयेसुतीर्थविमुखाश्चये ॥९॥ सुवर्णवस्त्र-

फिरता था ॥ ६ ॥ वह केरलदेशीय ब्राह्मण वायुरूप से इधर-उधर घूमता-फिरता था परन्तु न तो उसको कोई शरण देनेवाला ही मिला और न उसे कहीं सुख की ही प्राप्ति हुई ॥ ७ ॥ यद्यपि वह दुःख से व्याकुल हो नित्यही सोचता था, पर उसे सद्गति की प्राप्ति नहीं होती थी, वह कभी भी दान न करने रूप अपने कर्मफल को भोगता था ॥८॥ जो व्यक्ति अग्नि में हवन नहीं करते, जो विष्णु भगवान की पूजा नहीं करते, जो अध्यात्मविद्याका

भजन नहीं करते जो उत्तमोत्तम तीर्थों की यात्रा नहीं करते ॥ ९ ॥ और जो दुःखितों को सुवर्ण, वस्त्र, ताम्बूल, मणि, अन्न, जल एवं वस्त्र नहीं देते उन सबको कृत्यहीन समझना चाहिये ॥१०॥ जो प्राणी ब्राह्मणों का द्रव्य, दूसरों का अथवा स्त्रियोंका धन अपहरण करते हैं, जो द्यूत बल अथवा छलसे दूसरों को ठगते हैं, ॥ ११ ॥ जो पाखण्डी, मायावी, अथवा चोर हैं, जो अग्निकी वृत्तिवाले हैं, एवं जो बालक, वृद्ध, रोगी और स्त्रियोंके ऊपर दया नहीं करते,

तांबूलंमणिमन्नंफलंजलम् ॥ आर्तेभ्योनप्रयच्छंतिसर्वेतेकृतहीनकाः ॥ १० ॥ ब्रह्मस्वंचपरस्वं-चस्त्रीधनानिहरन्तिये ॥ बलेनच्छद्मतावापिधूर्ताश्चपरवंचकाः ॥११॥ दांभिकाःकुहकाश्चौ-रायेचपावकवृत्तयः । बालवृद्धातुरस्त्रीषु निर्दयः सत्यवर्जिताः ॥ १२ ॥ अग्निदागरदायेचये-चान्येकूटसाक्षिणः ॥ अगम्यागामिनः सर्वे ये चान्ये ग्रामयाजिनः । १३ ॥ पितृमातृस्नुषापत्य-स्त्रादारत्यागिनश्चये ॥ येकदर्याश्चलुब्धाश्चनास्तिकाधर्मदूषकाः ॥ १४ ॥ त्यजन्तिस्वामिनं

तथा जो असत्यवादी हैं ॥ १२ ॥ जो अग्नि लगानेवाले, विष देनेवाले अथवा झूठी गवाही देनेवाले हैं, जो अगम्या स्त्रियोंसे गमन करते हैं, /जो ग्रामका यजन करनेवाले हैं)॥१३॥ जो पिता, माता, पुत्रवधू, सन्तान एवं अपनी पत्नीका परित्याग करते हैं, जो कदर्य ( निन्दित धनके स्वामी ) लोभी, नास्तिक, (वेद और ईश्वरको न माननेवाले) और धर्मके निन्दक हैं ॥ १४ ॥ तथा जो संग्राममें स्वामीको त्याग देते हैं और शरणागतका त्याग करते हैं और

गौवोंका वध करते हैं तथा रत्नों को दूषित करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ जो पापी दूसरों को अपवाद लगानेवाले, देवताओं और गुरुकी निन्दा करनेवाले हैं एवं जो सब बड़े-बड़े क्षेत्रोंमें प्रतिग्रह (दान) लेते हैं ॥ १६ ॥ जो परद्रोह करने में निरत हैं, जो प्राणियों को हिंसा करते हैं, और जो निकृष्ट दान लेते हैं, ये सब लोग ॥१७॥ प्रेत राक्षस,

युद्धेत्यजंतिशरणागतम् ॥ गवांभूमेश्चहंतारोयेचान्येरत्नदूषकाः ॥१५॥ परापवादिनःपापा-देवतागुरुनिंदकाः ॥ महाक्षेत्रेषुसर्वेषुप्रतिग्रहरताश्चये ॥ १६ ॥ परद्रोहरतायेचतथाचप्राणि-हिंसकाः ॥ कुप्रतिग्राहिणः सर्वे तेभवंतिपुनः पुनः ॥१७॥ प्रेतराक्षसपैशाचतिर्यग्वृक्षकुयो-निषु ॥ नतेषांसुखलेशोऽस्तिइहलोकेपरत्रच ॥१८॥ तस्मात्त्यक्त्वानिषिद्धार्थंविहितंकर्मचा-चरेत ॥ यज्ञंदानंतपस्तीर्थंमंत्रंदेवंगुरुंभजेत् ॥१९॥ विपाककर्मणांदृष्ट्वायोनिकोटिषुदुस्तरम् ॥ चतुर्भिरपिवर्णैश्चसेव्योधर्मोनिरन्तरम् ॥ २० ॥ इतिप्रेतंगतिंदृष्ट्वापापबीजोत्थितांहिसः ॥



पिशाच, कीट पतंगादिक, वृक्ष एवं अन्य नीच योनियों में बारंबार जन्म लेते हैं और इनको इस लोक और परलोक-में कहीं सुख का लेशमात्र भी प्राप्त नहीं होता ॥ १८ ॥ इस कारण निषिद्धकर्मों का परित्याग करके विहितकर्मों का आचरण करना कर्तव्य है, और यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, मन्त्र देवता तथा गुरु का भजन करे ॥ १९ ॥ कर्मों का

फल करोड़ों योनियों में भी भोग लेना बड़ा कठिन है, ऐसा समझ कर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्णों को निरन्तर धर्मकी सेवा करना कर्त्तव्य है ॥ २० ॥ पापरूप बीज से उत्पन्न हुई उस प्रेत की ऐसी गति देख और उसको धर्मका उपदेश करके वह ब्राह्मण फिर उससे कहने लगा ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह केरल देश का प्रेत पर्वत के ऊपर निवास करते-करते जब कुछ समय व्यतीत कर चुका, तब उसे मार्ग में कोई पथिक दीखा ॥ २२ ॥





कृत्वाधर्मोपदेशंचपुनस्तस्मैद्विजोऽब्रवीत् ॥२१॥ इत्थंसकेरलःप्रेतोवर्त्तमानोगिरौतदा ॥ अतिबाह्यचिरंकालमपश्यत्पथिकंपथि ॥ २२ ॥ वहंतंद्वौकरंडौचत्रिवेणीजलयुतौतथा ॥ गायंतंप्रमुखादेवंपुण्यश्लोकंजनार्दनम् ॥२३॥ तंदृष्ट्वासहसाप्रेतोमार्गरोधंचकारसः । दर्शयामासचात्मानंमाभैषीरित्युवाचसः ॥ २४ ॥ पानीयंपातुमिच्छामित्वत्तःकार्पटिकोत्तम ॥ नपास्यसिजलंचेन्मांप्राणायास्यंतिमेदृढम् ॥२५॥ इतिप्रेतवचःश्रुत्वापांथःप्रत्याहकौतुकात् ॥ कस्त्वंदुः

त्रिवेणिजी के जल की दो कंडियें लिये, पवित्र चरित्र श्रीविष्णुभगवान् का गुण गान करता जा रहा था ॥ २३ ॥ उसे देख तत्काल ही प्रेत ने उसके मार्ग को रोका और अपने शरीर को दिखाके कहा कि, तुम डरना मत ॥ २४ ॥ हे कामार्थी ! मैं तुम्हारे पास से जलपान करना चाहता हूँ, और यदि आप मुझे जल न पिलावेंगे तो हमारे प्राण अवश्य चले जायेंगे ॥ २५ ॥ प्रेत के ऐसे वचन सुन कौतुकपूर्वक पथिकने कहा, दुःख से पीड़ित, दुर्बल, मलिन और

दिगबंर ( नंगा ) तू कौन है ।। २६ ।। तेरे शरीर में केवल प्राण ही शेष रह गये हैं, सुतराम् तू मरने की इच्छा करता है, तेरा रूप बड़ा विकृत है अतएव तुम्हारा अवलोकन करने से भय की वृद्धि होती है, तेरा आकार नवीन धूएँ के समान श्याम है, तू स्वयं चंचल और तेरे नेत्र चंचल हैं ।। २७ ।। तेरे चरण भूमि के ऊपर नहीं ठहरते, तेरे उदर और भुजाओंमें माँसका अभाव है, उस पथिकके ऐसे वाक्य सुन प्रेत कहने लगा ।। २८ ।। सुनो धर्मात्मन् ! जिस-

त्वाभिभूतस्तुकृशोम्लानोदिगंबरः ।। २६ ।। जीवशेषोमुमूर्षुश्चविकृतोभयवर्धनः ।। नवधूममया-
कारश्चंचलश्चलत्लोचनः ।। २७ ।। पद्भ्यामस्पृष्टभूमिस्त्वंनिर्मांसोदरबाहुकः ।। इतितद्वचनंश्रु-
त्वाप्रेतोवाक्यमथाब्रवीत् ।। २८ ।। शृणुधर्मिष्ठतेवच्मियेनाहमीदृशोभवम् ।। ब्राह्मणोऽदत्तदा-
नोहंलोभीचमलिनक्रियः ।। २९ ।। परान्नंचसदाभुक्तमेकाकीमिष्टभोजनः ।। मयादत्तानभिक्षा-
पिहंतकारोनपुष्कलः ।। ३० ।। नकृतोवैश्वदेवस्तुप्रक्षिप्तोनबहिर्बलिः ।। भूतानांतुतृषार्तानांन-

प्रकार मैं ऐसा हो गया सो तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ, मैं ब्राह्मण तो हूँ, पर मैंने कभी दान नहीं दिया, मेरी क्रियायें सब मलिन हैं, एवं मैं अतीव लोभी था ।। २९ ।। मैंने सदैव दूसरों ही के अन्नका उपभोग किया, सदा मिष्ट पदार्थ अकेले ही भोजन करें, मैंने भिक्षा अथवा हन्तकार भी कभी नहीं दिया ।। ३० ।। न तो कभी बलिवैश्वदेव ही किया, अथवा अन्य किसी भाँतिकी बलि भी नहीं निकाली, एवं प्यासे प्राणियों को पानी पिलाकर उनकी प्यास

भी मैंने कभी नहीं बुझाई ॥ ३१ ॥ भूमि के ऊपर विचरने के समय मैंने कभी पितृतर्पण भी नहीं किया, न श्राद्ध किया और न देवताओं की पूजा करी ॥३२॥ वर्षा और धूप से रक्षा करने के लिये छतरी तथा जूते किसी को न दिये, जलपात्र, ताम्बूल और औषधि भी मैंने किस को नहीं दी ॥ ३३ ॥ मैंने किस को अपने घर नहीं ठहराया, किसी का





हृतापयसाचतृट् ॥३१॥ कदाचित्पितरोनैवतर्पिताअटतामहीम् ॥ नचश्राद्धंकृतंक्वापिपूजि-
तानैवदेवताः ॥ ३२ ॥ वर्षातपपरित्राणंनदत्तंपादरक्षणम् ॥ जलपात्रंनदत्तंचतांबूलंनौषधं-
मया ॥ ३३ ॥ नगृहेवसतिर्दत्तानातिथ्यंकस्यचित्कृतम् ॥ अंधवृद्धाधनानाथदीनांपानान्न-
तोषिताः ॥३४॥ गवांग्रासोनदत्तोवैनरोगीपरिमोचितः ॥ नदत्तानहुताविप्रपवित्राश्चतिला-
मया ॥३५॥ पृथिव्यांतिलदातारोनभवंतितुमद्विधाः ॥ व्यतीपातेनदत्तंहिकिंचित्स्वर्णमहा-
फलम् ॥३६॥ संक्रांतावुपरागेचनदत्तंसूर्यचंद्रयोः ॥ पर्वाण्यन्यानिसर्वाणिजग्मुःशून्यानि-



अतिथि सत्कार भी नहीं किया, एवं अंधे वृद्ध निर्धन और दीन दुखियों को भोजन और जल से कभी तृप्त नहीं किया ॥३४॥ गोग्रास नहीं दिया और न किसी रोगी को भी मैंने रोगसे मुक्त किया अथच हे प्रिय! पवित्र तिलों को न तो मैंने कभी दान किया, और न कभी उनका हवन किया ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य भूमि के ऊपर तिल दान करते हैं, वे मेरे समान दुःखित नहीं होते, अभूत फल देनेवाला सुवर्ण भी मैंने व्यतीपात में दान करके कभी नहीं

हैं, वे मेरे समान दुःखित नहीं होते, प्रभूत फल देनेवाला सुवर्ण भी मैंने व्यतीपात में दान करके कभी नहीं दिया ॥ ३६ ॥ संक्रान्ति एवं सूर्य्य चन्द्रमा के ग्रहण में भी मैंने कभी दान नहीं किया, और हे द्विज! अन्यान्य पर्व दिन भी बिना दान किये ही शून्य व्यतीत हो गये ॥ ३७ ॥ कार्तिकमास की मुख्य-मुख्य तिथियें भी वन्ध्या (शून्य ही) निकल गईं एवं अष्टका तिथियों और मघाओंमें भी मैंने पितरोंको कुछ नहीं दिया ॥ ३८ ॥ मन्वादि





मेद्विज ॥३७॥ तिथयःकार्तिकेमुख्याजातावन्ध्याः सदा मम ॥ पितृभ्योनैवदत्तंवाअष्टकासु-मघासु च ॥ ३८ ॥ द्विजानां न कृताप्रीतिर्मन्वादिषुयुगादिषु ॥ नदत्तस्तिलतैलेनप्रदीपः कार्तिके मया ॥ ३९ ॥ नस्नातोमाघमासेहरूपसौभाग्यकामदे ॥ द्विजायवेदविदुषेगौतम्या सिंहगेगुरौ ॥४०॥ मयासंकल्पितंद्रव्यंनदत्तं पूर्वजन्मनि ॥ अग्निप्रज्वाल्यकाष्ठौघै स्नातानां पौषमाघयोः ॥४१॥ शीतार्तानांचविप्राणांनकृताजाड्यनिग्रहः ॥ माधवादिषुमासेषुनदत्तं-

और युगादि तिथियों में भी ब्राह्मणों को तृप्त नहीं किया, एवं कार्तिक मास में मैंने तिल के तेल का दीपक भी नहीं दिया ॥ ३९ ॥ रूप सौभाग्य और कामनाओं के देनेवाले माघमास में मैंने कभी स्नान नहीं किया, सिंह के बृह-स्पति में गौतमी नदी के तीर वेदज्ञ ब्राह्मण को ॥ ४० ॥ पहिले जन्ममें संकल्प करके कुछ भी द्रव्य नहीं दिया, पौष अथवा माघ में स्नान करके जो शीत से व्याकुल हो रहे हैं, अग्नि प्रज्वलित करके ॥ ४१ ॥ मैंने उनके शीत का

निवारण नहीं किया । वैशाख आदि महीनोंमें शीतलजल भी नहीं दिया ।। ४२ ।। मैंने पीपल अथवा वर्गदके वृक्षोंको न तो बोया और न उन्हें सींचके बढ़ाया, अथच तीन रात्रि पर्यन्त उपवास धारण करके भगवान् को भी सन्तुष्ट नहीं किया ।। ४३ ।। कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, पराक, चान्द्रायण, तप्तकृच्छ्र या सान्तपन ।। ४४ ।। इत्यादि इन्द्रादि

शीतलंजलम् ॥४२॥ मयानारोपितोऽश्वत्थो न्यग्रोधोनैववर्धितः ॥ नोपोष्यात्रत्रिरात्राणि-तोषितोमधुसूदनः ॥४३॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकंतथाचांद्रायणंद्विज । अथान्यत्तप्तकृच्छ्रं-चतथासांतपनानिच ॥४४॥ व्रतान्येतानिपुण्यानिजुष्टानींद्रादिभिः सुरैः ॥ चरित्वानमया-तानि देहः संशोषितः पुरा ॥४५॥ इत्थंपूर्वभवोवंध्योममजातोद्विजोत्त ॥ पश्यद्विजमहा-क्रूरामद्भुतामत्रजन्मनि ॥४६॥ गतिंदूरप्रबोधांतुममपूर्वस्यकर्मणः ॥ सतिमांसानिमार्गे-षुवृकव्याघ्रहतानिवै ॥४७॥ फलान्यन्यानिशैलेस्मिन्नृश्येनैस्त्यक्तानिसर्वतः ॥ पुण्यानिच-

देवताओंसे सेवित पवित्र, व्रतोंका आचरण करके मैंने अपने देहको नहीं सुखाया ।। ४५ ।। इस विधिसे मेरा पहिला जन्म वृथा ही गया और हे द्विजराज ! अब इस जन्म की मेरी अद्भुत और महाक्रूर गति को भी तुम देखते ही हो ।। ४६ ।। पूर्वजन्म के कर्मानुसार मेरा ज्ञान नष्ट हो गया; मार्गों में व्याघ्र और भेड़ियों के वध किये मांस पड़े

हो ॥ ४६ ॥ पूर्वजन्म के कर्मानुसार मेरा ज्ञान नष्ट हो गया; मार्गों में व्याघ्र और भेड़ियों के वध किये मांस पड़े

हैं ॥ ४७ ॥ श्येन पक्षियों ने इस पर्वतके ऊपर चारों ओर अन्य फलों का परित्याग कर दिया है, पवित्र सुगन्धित और रसीले फल ॥ ४८ ॥ कोमल मधुर और भक्षण करने के योग्य भाँति-भाँति के मूल एवं प्रभूत मधु हैं ॥ ४८ ॥ अथच सोतों और झरनों के सुन्दर जल सर्वत्र विद्यमान हैं, यद्यपि इस पर्वत के ऊपर उक्त सभी



सुगंधीनिफलानिरसवंतिच ॥ ४८ ॥ मुलानितुसुभक्ष्याणिमृदूनिमधुराणिच नानाविधा-
नितिष्ठंतिमधूनिसुबहून्यपि ॥ ४९ ॥ स्रोतसानिर्झराणांचसंतिवारीणिसर्वशः ॥ सुलभेषुप-
दार्थेषुपर्वेष्वेतेषुपर्वते ॥५०॥ नेक्षेऽहमशनंक्वापिदैवेनापिहतंसदा ॥ वाताहारेणजीवामिय-
थाजीवंतिपन्नगाः ॥५१॥ पुनर्जीवामिभोविप्रदेवयोनिप्रभावतः ॥बलेनप्रज्ञयानित्यंमंत्रपौरुष-
विक्रमैः ॥५२॥ सहायैश्चैवमित्रैश्चनालभ्यंलभतेनरः ॥ लाभेऽलाभेसुखेदुःखेविवाहेमृत्युजी-
वने ॥५३॥ भोगेरोगेवियोगेचदैवमेवहिकारणम् ॥ कुरूपाः कुकुलामूर्खाः कुत्सिताश्चारु-



पदार्थ सुलभ हैं ॥ ५० ॥ परन्तु मैं मन्दभागी हूँ अतएव इन सबको भक्षण करने का मेरा भाग्य ही नहीं है सुतराम् मैं सर्पों की भाँति पवन भक्षण करके जीवित रहता हूँ ॥ ५१ ॥ और हे विप्र ! देवयोनिके प्रभाव से जीवित हूँ, बल, बुद्धि, मन्त्र पौरुष और पराक्रम ॥ ५२ ॥ मित्रों एवं अन्यान्य सहायों से भी मनुष्य को अलभ्य वस्तु नहीं

मिल सकती, हानि, लाभ, सुख, दुःख, विवाह, जीवन और मरण ॥ ५३ ॥ भोग रोग वियोग इन सबके लिये प्रारब्ध ही एक कारण है, कुरूप, नीच कुलमें प्रादुर्भूत हुए, मूर्ख, कुटिल अतएव अन्य श्रेष्ठ व्यक्तियों की निन्दा करनेवाले ॥ ५४ ॥ एवं शूरता और पराक्रम रहित भी व्यक्ति भाग्यवशात् राज्य का उपभोग करते हैं, काने, लूले, लँगड़े, जिनका स्वरूप अमंगलकारी है, जो नीति नहीं जानते जिनमें बहुत से दुर्गुण हैं ॥ ५५ ॥ अथच जो

निंदकाः ॥ ५४ ॥ शौर्यविक्रमहीनाश्चदैवाद्राज्यानिभुंजते ॥ काणाःखंजाअभव्याश्चनी-
तिहीनाश्चदुर्गुणाः ॥५५॥ नपुंसकाश्चदृश्यंतदैवाद्राज्येप्रतिष्ठिताः ॥ यैर्दत्ताश्चतिलागागो-
हिरण्यंवसनानिच॥५६॥ गौरीकन्याचयैर्दत्तायैर्दत्ताचवसुंधरा ॥ शय्यासनानितांबूलमंदि-
राणिधनानिच ॥५७॥ भक्ष्यभोज्यानिदत्तानिचंदनान्यगरूणिच ॥ अटव्यापर्वतेऽन्योपराच्च
मेवानगरेपिवा ॥ ५८ ॥ पुरश्चतिठंतितेषाभोगाः प्रयत्नः ॥ संत्यत्रपर्वतेऽन्येपिराक्ष-

नपुंसक हैं, भाग्यवशात् वे भी राज्य के ऊपर अधिष्ठित हुए दीखते हैं, जिन्होंने तिल, गौ, सुवर्ण और वस्त्रों का दान किया है ॥ ५६ ॥ जिन्होंने गौरी (आठ वर्षकी) कन्याका विवाह किया, जिन्होंने भूमि शय्या आसन ताम्बूल मन्दिर धन ॥ ५७ ॥ भक्ष्य (फाँकनेके पदार्थ) भोज्य (भोजन करनेके पदार्थ) चन्दन अगर इन वस्तुओं का जिन्होंने दान किया है, वे चाहे बनमें रहें या पर्वतके शिखरपर किंवा ग्राम में रहें अथवा नगर में ॥ ५८ ॥ परन्तु

भोग उसके अगाड़ी २ ही उपस्थित रहते हैं, इस पर्वत ऊपर प्रभूत बलशाली अन्य राक्षस भी हैं ॥५९॥ राक्षस पिशाच और दारुण पिशाचिनी ये सब अपने कर्मानुसार कहीं किसी न किसी प्रकार ॥६०॥ वनमें विचरते २ अन्नपान पाते हैं, यह बात सुनकर तुम्हें उनसे भय न होना चाहिये ॥६१॥ क्योंकि आप गोविन्द भगवान्के






साबलवत्तराः ॥५९॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिशाच्यश्चातिदारुणाः ॥ कदाचित्क्वकथंचचस्वापियत्र स्वकर्मणा ॥ ६० ॥ लभंतेचान्नपानानि पर्यटंतोवनेवने ॥ इति श्रुत्वात्रतेभ्यश्च माभयं भवतांभवेत ॥६१॥ शुचिगोविन्दभक्तंत्वांन तेद्रष्टुमपिक्षमाः ॥ विष्णुर्भक्तितनुत्राणंनारायणपरायणम् ॥ ६२ ॥ नस्पृशंतिनपश्यंतिराक्षसाः प्रेतपूतनाः ॥ भूतवेतालगंधर्वाःशाकिन्यश्चार्यकाग्रहाः ॥ ६३ ॥ रेवत्योवृद्धरेवत्योमुखमंड्यस्तथाग्रहाः ॥ यक्षाबालग्रहाःक्रूरादुष्टावृद्धाग्रहाश्चये ॥ ६४ ॥ तथा मातृग्रहाभीमाग्रहांश्चान्येविनायकाः ॥ कृत्याः सर्पाश्च कूष्मांडाये



भक्त और पवित्र हैं। और वे लोग तो आप को देखतक नहीं सकते, कारण कि, श्रीविष्णुभगवान् की भक्ति जिनके शरीरकी रक्षा करती है और जो नारायणमें अपना मन लगाते हैं ॥६२॥ राक्षस और प्रेत आदि न तो उनका स्पर्श कर सकते और न उनको देखही सकते हैं, भूत बैताल गन्धर्व शाकिनी ग्रह ॥ ६३ ॥ रेवती वृद्धरेवती

मुखमंडी ग्रह यक्ष वामग्रह क्रूर दुष्ट और वृद्धग्रह ॥ ६४ ॥ तथा मातृग्रह भीमग्रह और विनायकग्रह, कृत्य सर्प कूष्माण्ड एवं अन्य दुष्ट जन्तु ॥ ६५ ॥ ये सब हे विप्र ! ब्रह्मवादी वैष्णवको अवलोकन नहीं कर सकते, शुद्धाचारी और धर्मिष्ठकी सब प्राणी रक्षा करते हैं और उसे पीड़ा कोई नहीं देता॥६६॥ जिसकी जिह्वापर गोबिन्द का नाम और

चान्येदुष्टजंतवः ॥ ६५ ॥ नपश्यंतिवरंविप्रवैष्णवंब्रह्मवादिनम् ॥ शुचिंरक्षंतिभूतानिधर्मिष्ठं पीडयंतिन ॥ ६६ ॥ रक्षंतिचशुचिंनित्यंग्रहनक्षत्रदेवता ॥ गोविन्दनामजिह्वाग्रेहृदिवेदस्तु संस्थितः ॥६७॥ शुचिश्चदानशीलश्चत्वंसर्वत्राकुतोभयः ॥ एवंब्राह्मणतिष्ठामिभुञ्जानःकर्मणः फलम् । ६८॥ नशोचामीतिमत्वाहंविमृश्यचपुनः पुनः ॥ नदुनोमितथावद्यावज्जंबालिनी तटे ॥ ६९ ॥ सारसोदीरितंवाक्यंश्रुतंपर्यटतामया ॥ ७० ॥ इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे पिशाचबोधोनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

जिसके हृदयमें वेदकी स्थिति है ऐसे पवित्र सदा सदाचारी की ग्रह नक्षत्र और देवता सभी रक्षा करते हैं ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मण ! आप तो पवित्र और दानी हैं, अतएव आपको भय कहीं भी नहीं है, इसप्रकार मैं अपने कर्मों के फलका उपभोग करता हूँ ॥६८॥ यही विचार करके मैं बार २ सोच भी नहीं करता और न दुःखित ही होता हूँ, अथच जंबालिनीके तटपर विचरता रहता हूँ ॥ ६९ ॥ यहां विचरते २ सारसों के वाक्य मेरे श्रवण गोचर होते हैं । ७० ॥

जंबालिनीके तटपर विचरता रहता हूँ ॥ ६९ ॥ यहाँ विचरते २ सारसों के वाक्य मेरे श्रवण गोचर होते हैं ॥ ७० ॥
इति श्रीमाघमाहात्म्ये भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ब्राह्मण बोला—तुमने सारसोंके कैसे वाक्य सुने उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ, सुनाराम् हे प्रेत ! मुझे शीघ्र सुनाओ ॥ १ ॥ प्रेत बोला—हे कामार्थी सुनो ! मैं सारसोंके वाक्य कहता हूँ, इसी कक्षमें से गुहिका नामकी

॥ ब्राह्मणउवाच ॥ सारसोदीरितंवाक्यंकीदृशंहिश्रुतंत्वया ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामिब्रूहि-त्वंप्रेतसत्वरम् ॥ १ ॥ प्रेतउवाच ॥ ब्रवीमिसत्वरंवाक्यंशृणुकार्पाटिकोत्तम ॥ गुहिकानाम-कक्षेस्मिन्नदीगिरिसमुद्भवा ॥ २ ॥ सदाजलाशयोत्तालामत्तदंतिकुलाकुला ॥ महाककुभशो-भाढ्यास्निग्धजंबूमनोहरा ॥ ३ ॥ तस्यास्तीरमहंप्राप्तोगाहमानोवनंघनम् ॥ मयितिष्ठतितत्रै-वफलभोजनकाम्यया ॥ ४ ॥ वनांतरात्समुड्डीयसारसोलक्ष्मणायुतः ॥ आगत्यपुलिनंनद्याः सेवितंबहुपक्षिभिः ॥ ५ ॥ पीत्वातत्रैवपानीयंरमित्वाभार्ययासह ॥ सुप्तःपक्षपुटेवामेप्रवेश्यच-

एक पहाड़ी नदी निकलती है ॥२॥ उसके जलाशय बड़े २ और गम्भीर हैं मस्त हाथी वहाँ विचरते रहते हैं, वहाँ सुन्दर सुन्दर गुहायें हैं तथा कोमल और मनोहर जामुनें लगी हुई हैं ॥३॥ निदान घने वनमें घूमता २ मैं उस नदीके तट-पर पहुँचा, मैं वहाँ बैठा ही था कि इतने ही में फलों के भक्षण करनेकी कामनासे ॥४॥ अनेक पक्षियोंसे सेवित उस

माघ मा.

नदी के तटपर एक हंसका जोड़ा उड़कर आया ॥५॥ पानी पी भार्याके साथ रमणकर अपने शिर और मुखको ये पंखमें रखकर वह हंस वहाँ ही सो गया ॥६॥ इतने ही में—लाल २ नेत्रोंवाला जिसका मुख भी लाल था जिसके नख बड़े दृढ़ थे, हाथमें दण्ड लिये ॥७॥ जिसके शरीर पर बड़े २ बाल थे, और लंबी पूँछ थी, ऐसा बड़ा चंचल





शिरोमुखम् ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेदुष्टःपादपादवतीर्यच ॥ रक्ताननः सुरक्ताक्षोदंडीदृढनखा- वलिः ॥ ७ ॥ लोमशोदीर्घलांगूलश्चलचेष्टोहिवानरः ॥ यत्रासौसारसःसुप्तस्तत्रवेगेनचागतः ॥ ८ ॥ समागत्यचजग्राहसारसंचाणेदृढम् ॥ कराभ्यांकूथाबुद्धयापश्यतांबहुपक्षिणाम् । ९॥ उड्डीयोड्डीयतेसर्वेगताश्चान्यत्रखेचराः ॥ सारसीभीतभीतार्त्तविरावान्कुर्वतीस्थिता ॥१०॥ सार- सोभग्ननिद्रस्तुत्रासाच्चलितलोचनः ॥ अवलोकितवान्शीघ्रंतदोत्तामर्षशिरोधराम् ॥ ११ ॥

एक बानर वृक्षसे उतरकर जहाँ वह सारस सो रहा था, झट तेजीसे वहाँ आया ॥८॥ यद्यपि बहुतसे पक्षी देख रहे थे तथापि उसने आकर दोनों हाथोंसे सारसके पैरको कसके पकड़ लिया ॥९॥ तब अन्यान्य पक्षी तो उड़ २ कर चले गये, किन्तु सारसी भयभीत हो रोती चिल्लाती वहाँ बैठी रही ॥१०॥ जब सारसकी निद्रा भंग हुई तब डरके मारे उसके नेत्र चलायमान हो गये और और उसने झटपट शिर निकालकर देखा ॥११॥ जब उस पक्षीने देखा

कि, यह दारुण और दुष्ट वानर मारनेके लिये उद्यत हो रहा है, तब वह मधुरवाणीसे उसके प्रति कहने लगी ॥ १२॥ हे वानर! तुम बिना अपराध किये मुझे क्यों सताते हो, लोकमें राजालोग भी अपराधियोंको ही दण्ड देते हैं ॥१३॥ सज्जन महात्माजन–जो कि हम किसीकी हिंसा नहीं करते, अतएव जो साधु (सीधे) और अन्य कुटिल

विलोक्यवानरंदुष्टंहंतुकामंसुदारुणम् ॥ तदासंभाषयामासगिरामधुरयाखगः ॥ १२ ॥ अपराधंविनामांत्वंकिंशाखामृगबाधसे ॥ सापराधाजनालोकेबध्यंतेभूमिपैरपि ॥ १३ ॥ नपीडयितुमर्हंतिताद्दशाउत्तमाजनाः ॥ अस्मानहिंसकान्साधून्परवृत्तिपराङ्मुखान् ॥ १४॥ जलशैवालभक्षांश्चखेचरान्वनवासिनः ॥ स्वदाररतिशिलांश्चपरदाराभिवर्जितान् ॥ १५ ॥ नपीडयितुमर्हंतित्वद्विधावानरोत्तम ॥ परापवादपैशून्यार्वाद्विजान्परमसेवकान् ॥ १६ ॥ शाखामृ-

जीवोंकी वृत्तिसे रहित हैं ॥१४॥ जलका सिवार भक्षण करते वनमें रहते और आकाशमें रहते हैं, हम परस्त्रीगामी नहीं किन्तु अपनी स्त्रीसे ही अनुराग करते हैं, ऐसे हमको पीड़ा देनी आपको उचित नहीं है ॥१५॥ हे वानरोत्तम! जो कभी दूसरोंको अपवाद नहीं लगाते और जो पक्षी परमसेवक हैं ऐसे हमको आप जैसे महात्मा पीड़ा देते अच्छे नहीं लगते ॥१६॥ हे शाखामृग! मैं सर्वथा निरपराध हूँ, अतएव तू मुझे छोड़ दे, मैं तुम्हारे

जन्मको जानता हूँ पर तुम हमारे जन्मको नहीं जानते ॥१७॥ सारसके ये वाक्य सुन चपल बानर उसे छोड़कर बहुत दूर जा बैठा ॥१८॥ (और बोला) बता ! तू मेरे पहिले जन्मको किस प्रकार जानता है ? क्योंकि कहाँ तो तू ज्ञानहीन पक्षी और कहाँ मैं वनमें विचरनेवाला बानर ॥१९॥ सारस बोला—मैं तुम्हारे जन्मको जानता हूँ,



गर्विमुञ्चाशुसर्वथामामनागसम् ॥ जानामितवजन्माहंनत्वंवेत्सितुमामकम् ॥१७॥ इत्या-कर्ण्यवचस्तस्यस्वमुमोचसारसंतदा ॥ चपलोवानरःशीघ्रं महादूरेऽप्यवस्थितः ॥ १८ ॥ ब्रूहित्वं-कथंवेत्सिममजन्मपुरातनम् ॥ त्वंपक्षीज्ञानहीनश्चतिर्यक्त्वाहंवनेचरः ॥१९॥ सारसउवाच । जानेहंतावकंजन्मजातिस्मरमितिस्फुटम् ॥ त्वंविन्ध्याधिपोराजाप्राग्भवेपर्वतेश्वरः ॥ २० ॥ अहंपूज्यतमोविप्रस्तववंशेपुरोहितः ॥ तेनप्रत्यभिजानामित्वांसम्यग्वानरोत्तम ॥२१॥ इमां-पालयताभूमिंप्रजाःसर्वाःप्रपीडिताः ॥ त्वयाविवेकहीनेनभृशंसंचयताधनम् ॥ २२ ॥ प्रजापी-

कारण कि मुझे जातिका स्मरण है, पहिले जन्ममें तुम विन्ध्याचल के पर्वतेश्वर राजा थे ॥२०॥ और मैं तुम्हारे वंशका अत्यन्त पूजनीय ब्राह्मण पुरोहित था, इसी हेतु हे वानरोत्तम ! मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ ॥२१॥ तुझ अज्ञानीने इस भूमिका पालन करते समय प्रभूत धन संचय करनेकी कामना से समस्त प्रजाको कष्ट दिया था ॥२२॥

हे वानर! प्रजाकी पीड़ारूप सन्तापकी अग्निकी ज्वालाओंसे प्रथम तुम्हारा देह दग्ध हुआ, और फिर तुम कुम्भी-पाकमें गिराये गये ॥२३॥ बारंबार भस्म होने और जन्म लेनेसे नारकीय शरीरसे तुम्हारे तीस वर्ष व्यतीत हो गये ॥२४॥ जिस समय तुम्हें कुम्भीपाकमें तीव्र यातनाएँ भोगनी पड़ती थीं उस समय तुम बारंबार दारुण

जनतापोत्थवह्निज्वालाभिर्वानर ॥ प्राक्त्वंदग्धःपुनःक्षिप्तःकुम्भीपाकेऽतिदारुणे ॥ २३ ॥
पुनःपुनश्चदग्धेनजातेनचपुनःपुनः ॥ नारकेणशरीरेणशरीरेणसमास्त्रिंशद्गतंत्वया ॥ २४ ॥
कुर्वतादारुणाञ्छब्दान्रुदताचपुनः पुनः ॥ कुम्भीपाकानलेतीव्राह्यनुभूताश्चयातनाः ॥२५॥
निस्तीर्णनरकोभूयःपापशेषेणसांप्रतम् ॥ प्राप्तोसिवानरंजन्मयेनमांहन्तुमिच्छसि ॥२६॥
विप्रस्योपवनात्पूर्वंपक्वरंभाफलानिवै ॥ अननुज्ञाप्यभुक्तानित्वयापहृत्यपौरुषात् ॥२७॥ विपाकः-
कर्मणस्तस्यफलतेपश्यदारुणः ॥ वानरस्त्वंवनेवासोह्यधुनातेनवर्तसे ॥ २८ ॥ अशुभस्यशुभ-

शब्द करके रोदन करते थे ॥२५॥ जब तुम्हारे पाप नष्ट हो गये और नरकसे उद्धार हुआ तो अब तुम्हें वानर योनिमें जन्म मिला है, सो यहाँ तुम मुझे मारनेको उद्यत हो रहे हो ॥२६॥ पहिले तुमने ब्राह्मणके उपवनके पके २ केलेके फल उसकी विना आज्ञा लिये भक्षण कर लिये और राक्षसोंको भगा दिया ॥२७॥ देखो उसी पापके फलसे संप्रति तुम्हें वानरकी योनि और वनका निवास मिला है ॥२८॥ प्राणी पूर्वजन्ममें शुभ अशुभ जो कुछ

कर्म करता है उसका भोग मनुष्योंको अवश्य प्राप्त होता है और देवता लोगभी उसका उल्लंघन नहीं कर सकते । २९ ।।
इस प्रकार मैं तुम्हारे जन्मको हेतु सहित ठीक २ जानता हूँ, यद्यपि मुझे सारसका देह मिला है तथापि मुझे ज्ञान है
अतएव मैं मोहित नहीं हूँ ।। ३० ।। हे विप्र ! इस कथाको सुन वह वानर सारससे कहने लगा कि—अवश्य तुम

स्यापिपुराविहितिकर्मणः ।। भोगःकोऽइतिभूतेषुनोल्लंध्यस्त्रिदशैरपि ।। २९ ।। इत्थंतवज्जन्म-
जानामियथावत्तुसहेतुकम् ।। प्राप्तःसारसदेहोऽपिज्ञानेनापरिमोहितः ।। ३० ।। इतिश्रुत्वाकथां-
विप्रवानरोऽप्याहसारसम् ।। सम्यग्वेत्तिभवान्नूनंकथंत्वंपक्षितांगतः ।।३१।। इति श्रीपद्मपुराणे
उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे वानरजन्मकथनंनामत्रयोत्रिंशोऽध्यायः ।।२३।।
। सारसउवाच ।। कथयिष्यामितत्कर्मयेनाहंपक्षितांगतः ।। दुःखयोनिंगतोयेनतत्स-
र्वंश्रोतुमर्हसि ।। धान्यंखारीशतंसाग्रमुत्सृष्टंहित्वयापुरा ।। बहुभ्योब्राह्मणेभ्यश्चनर्मदायांरवि-

सब कुछ जानते हो, पर यह तो बताओ कि तुम पक्षी कैसे हो गये ।।३१।। इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां
त्रयोत्रिंशोऽध्यायः ।।३२।।
सारस बोला—जिससे मैं पक्षी हुआ उस सब कर्मका मैं वर्णन करता हूँ, मुझे जिससे दुःखयोनिकी प्राप्ति

हुई वह सब सुनो ॥१॥ पहिले तुमने सूर्यग्रहणके समय सौ खारी धान्य नर्मदाके तटपर दान करके ब्राह्मणोंको दिये थे ॥२॥ मैंने पुरोहितीके मद और लोभसे ब्राह्मणोंको ठगकर किंचिन्मात्र तो उन्हें दे दिया, शेष सब मैंने स्वयं ले लिया ॥३॥ ब्राह्मणोंके साधारण द्रव्य लेनेसे उत्पन्न हुए पापके कारण जिसमें रक्तकी कीच भर रही थी, ऐसे कालसूत्र नरकमें मुझे गिराया गया ॥४॥ उसमें कीचड़ बिलाबिला रहे दुर्गन्धि और राद पूर्ण हो रही थी, वहाँ मुझे नीचेको



ग्रहे ॥ २ ॥ पौरोहित्यमदाल्लोभाद्वंचयित्वाद्विजांस्तथा ॥ किंचिद्दत्त्वातुतेभ्यश्चगृहीतमखिलं-मया ॥३॥ विप्रसाधारणद्रव्यग्रहणोत्पन्नपातकात् ॥ पतितःकालसूत्रेऽहंनरकेरक्तकर्दमे ॥४॥ चलत्क्रिमिसुसंपूर्णेदुर्गंधेपूयफेनिले ॥ आनाभेस्तत्रमग्नोस्मिलिहन्पूयमधोमुखः ॥५॥ तथोपरि-महागृध्रैर्भक्ष्यमाणस्तुवायसैः ॥ क्रिमिभिस्तुद्यमानस्तुममदेहोनिरंतरम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्शो-णितपंकेहंनिरुच्छ्वासोभवंतदा ॥ मुहूर्तोपिमहाकल्पशतंजातोममात्रवै ॥७॥ यातनास्त्वत्रानु-

मुख करके नाभिपर्यन्त डुबाकर डाल दिया और मैं वहाँ राद चाटता रहता था ॥५॥ तथा उसके ऊपर बड़े २ गृद्ध्र (गिद्ध) और काक मुझे नोच २ खाते थे, एवं नित्य ही कीड़े मेरे शरीरको व्यथा देते रहते थे ॥६॥ रुधिर की उस पंकमें मेरा श्वास भी अवरुद्ध हो गया, अतएव मुझे एक मुहूर्त्त भी कल्पके समान व्यतीत होने लगा ॥७॥

हे वानरराज ! मुझे तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त नरक यातना भोगनी पड़ी, मैं उनके दुःखका वर्णन करके पार नहीं पासकता ॥८॥ प्रारब्धवशात् जब मेरा नरकरूप समुद्रसे उद्धार हुआ तब दैवयोगसे मुझे पक्षीकी योनि प्राप्त हुई ॥९॥ पहिले मैंने अपनी बहिनके घरसे काँसेका पात्र चुराकर पाँसा खेलनेवाले व्यसनीको दिया था, इसी हेतु मुझे सारस बनना पड़ा ॥१०॥ और यह मेरी सहधर्मिणी ब्राह्मणी स्त्री जो सारसी हुई है इसका यह कारण

भूताश्चसमास्त्रिरयुतंमया । वक्तुंचतन्नशक्नोमिदुःखंवानरनायक ॥ ८ ॥ दैवात्कथमपिप्राप्तः उत्तारोनरकांबुधेः ॥ ममादौदैवयोगेनशकुनित्वमुपस्थितम् ॥ ९ ॥ अपहृत्यपुराकांस्यभाजनंभगिनीगृहात् ॥ आक्षिकायमयादत्तंतेनमेसारसीगतिः ॥ १० ॥ इयंचब्राह्मणीपूर्वंकांस्यचोरीसुदारुणा । तेनेयंसारसीजातामभार्यासधर्मिणी ॥ ११ ॥ इत्थंवानरतेसर्वंकथितंकर्मणःफलम् ॥ वृत्तंचवर्तमानंचभविष्यंशृणुमांगतम् ॥१२॥ अहंहंसोभविष्यामित्वंचहंसोभविष्यसि ॥ हंसीयमपिमद्भार्यासारसीचभविष्यति ॥ १३ ॥ देशेचकामरूपेवैस्थास्यामोवैयथासुखम् ॥

है कि --इसने भी काँसा चुराया था ॥११॥ हे बानर ! इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति वर्तमान और भूत वृत्तान्त वर्णन किया, अब भविष्यकी कथाको सुनो ॥१२॥ हम और तुम दोनों हंस होंगे और हमारी पत्नी यह सारसी हंसिनी होगी ॥१३॥ हम तीनों कामरूप देशमें सुखपूर्वक निवास करेंगे, इसके अनन्तर कल्याणी योगिनीको प्राप्त

होंगे ॥ १४ ॥ फिर हमें उस मनुष्य योनिकी प्राप्ति होगी जिसमें कल्याण और उसके वितरीत दोनों प्रकारके कर्मों का साधन किया जा सकता है ॥ १५ ॥ महादेवजी इस प्रकार केवल हम्हींको नहीं बल्कि सब जीवोंको अपनी मायासे मोहित कर सुख-दुःखोंका उपभोग कराते हैं ॥१६॥ इस प्रकार विविधि निर्मित यह मार्ग संसारमें प्रवृत्त हैं, इसमें धर्म

   

योगिनींभाविकल्याणींयास्यामस्तदनंतरम् ॥ १४ ॥ ततश्चमानुषंजन्मप्राप्स्यामोदुर्लभंपुनः ॥
श्रेयस्तद्विपरीतंचप्राणिभिर्यत्रसाध्यते ॥ १५ ॥ एवंसर्वाञ्छिवोजंतून्मोहयित्वास्वमायया ॥
दुःखैर्भुनक्तिदुःखैश्चनास्मानेवतुकेवलम् ॥ १६ ॥ अयंलोकेप्रवृत्तश्चमार्गोविविधनिर्मितः ॥
धर्माधर्ममयोऽत्यर्थेसुखदुखफलात्मकः ॥ १७ ॥ सेवितःप्राणिभिःसर्वैःसर्वदावापुनःपुनः ॥
देवासुरनरव्याघ्रक्रिमिकीटजलेचरैः ॥ १८ ॥ नातिक्रांतोहिकेनापिपंथाऽयंदुःखकंटकः ॥
विरक्तान्योगिनोध्यायंविनावेदांतपरागात् ॥१९॥ अणोर्वापिगुरोर्वापिपुण्यापुण्यस्यकर्मणः ॥

अधर्म दोनों हैं अतएव सुख-दुःख दोनोंहीकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ क्या देवता, क्या दैत्य, क्या मनुष्य और क्या व्याघ्र, एवं कीड़े मकोड़े और जलचर ये सभी प्राणी नित्य और बारंबार इसका सेवन करते हैं ॥ १८ ॥ जिसमें दुःखके काँटे बिछे हैं ऐसे मार्गका उलंघन विरक्त योगी और वेदान्तियोंको छोड़ अन्य किसीने नहीं किया ॥१९॥

चाहे पुण्य या पाप छोटे से छोटा हो अथवा बड़े से बड़ा हो महादेवजी देशकाल पहिचानके उसका फल अवश्य देते हैं ॥ २० ॥ विविधज्ञानके ज्ञाता महाबुद्धिमान् लोग माहेश्वरी माया इस प्रकार जानकर न तो सोच करते न सन्ताप भोगते और न दुःखही उठाते हैं ॥ २१ ॥ हे शाखामृग ! उपायों अथवा बुद्धिके द्वारा देवता तक भी पूर्व कर्मोंके

ददातीहफलंज्ञात्वादेशंकालंमहेश्वरः ॥२०॥ इत्थंविधिविधानज्ञांमायांज्ञात्वेश्वरस्य च । नशोचं- तिनतप्यंतिनव्यथंतिमहाधियः ॥ २१ ॥ नान्यथाशक्यतेकर्तुंविपाकःपूर्वकर्मणाम् । उपायैः प्रज्ञयावापिशाखामृगसुरैरपि ॥२२॥ पुरात्वंभूपतिर्जातःपश्चाज्जातोसिनारकी ॥ अधुनावानरो- भूयोजन्मप्राप्स्यसिताद्दशम् ॥ २३ ॥ इतिमत्वाविशोकस्त्वंशाखामृगयथासुखम् ॥ प्रतीक्षां- कुरुकालस्यरममाणोऽत्रकानने ॥ २४ ॥ अहमप्येवमीशानमायाबद्धोवनेवने ॥ क्षपयिष्ये ना- मिदंजन्मधैर्यमास्थायसारसम् ॥ १५ ॥ वानरउवाच ॥ मयात्वंपूजितःपूर्वंनौभित्वायधुनाप्य-

फलको अन्यथा करनेकी शक्ति नहीं रखते ॥ २२ ॥ पहिले तुम राजा थे, फिर नारकी हुए, अब वानर हो और आगेको हंसका जन्म मिलेगा ॥ २३ ॥ सुतराम् हे शाखामृग ! मनमें यह बात समझकर समयकी प्रतीक्षा करते हुए तुम सुखपूर्वक इस वनमें विचरते रहो ॥ २४ ॥ और मैं भी महादेवकी मायाके वशीभूत हो धैर्य धारणपूर्वक वनोंमें

विचरकर सारसके जन्मको बिताऊँगा ॥ २५ ॥ वानर बोला—मैंने प्रथम तुम्हारी पूजा की, और अब भी मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ मैं समझ गया कि तुम्हें जातिका स्मरण है, अतएव मेरे पूर्वजन्मकी सब कथा जानते हो ॥ २६ ॥ हे सारस ! तुम अपनी सारसी सहित बैठे रहो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे वाक्य सुनकर मेरा अज्ञान नष्ट हो गया, अब मैं सदा विचरता रहूँगा ॥ २७ ॥ प्रेत बोला—हे द्विज ! पक्षी और वानरके इस विचित्र अतएव रमणीक

हम् ॥ जातिस्मरोऽसिजानामिसर्वंमत्पूर्वदैहिकम् ॥२६॥ तिष्ठसारससारस्याशिवमस्तुसदा- तव ॥ त्वद्वाक्यादुगतमोहोऽहंविचरिष्यामिसर्वदा ॥२७॥ प्रेतउवाच ॥ इमंरम्यंविचित्रंचपाव- नंपरमंद्विज ॥ पक्षिवानरसंवादंश्रुतंयावन्नदीतटे ॥२८॥ तावन्ममापिबोधाभूत्रशोकः क्षयंगतः ॥ इदानींजाह्नवीतोयमाहात्म्यंपरमाद्भुतम् ॥२९॥ दृष्ट्वात्रब्राह्मणश्रेष्ठत्वांयाचेजा- ह्नवीजलम् । प्रेतत्वाच्चतुकामोहंतीव्राद्दैन्यात्प्रपीडितः ॥३०॥ अस्मिन्नेवाचलेदृष्टंमयाश्चर्यंच

अतिशय पवित्र संवादको मैंने नदीके तटपर सुना ॥ २८ ॥ सो मुझे भी ज्ञानका लाभ हो गया अतएव मेरा भी शोक नष्ट हो गया, संप्रति गंगाजलके परम अद्भुत जलके माहात्म्यको ॥ २९ ॥ देखकर, हे द्विजराज तुमसे मैं गंगाजल माँगता हूँ, तीव्र दुःख सता रहा है अतएव प्रेत योनिसे तरनेकी मेरी कामना है ॥ ३० ॥ हे द्विज ! इसी पर्वतके ऊपर मैंने गंगाजलके परम आश्चर्यका अवलोकन किया, इसी हेतु मैं उसे पान करना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥

पारियात्रमें उत्पन्न हुआ कोई ब्राह्मण, ग्रामीणोंका यजन कराता था, उसने यजन करनेके अयोग्य किसी व्यक्तिको विन्ध्याचलके ऊपर यज्ञ करा दिया था, अतएव वह ब्रह्मराक्षस हुआ ॥ ३२ ॥ हमारी संगतिके अनुरोध से वह आठ वर्षपर्यन्त स्थित रहा, और हे द्विजराज ! उसके पुत्रने उसकी अस्थियोंका संचय किया ॥ ३३ ॥ और उन्हें लेजाकर







वैद्विज ॥ गंगातोयस्यतावद्विपातुमिच्छामितज्जलम् ॥३१॥ पारियात्रोद्भवःकोपिब्राह्मणो-ग्रामयाजकः ॥ अयाज्ययाजनाद्विंध्येसंभूतोब्रह्मराक्षसः ॥३२॥ अस्मत्संगानुरोधेनस्थितो-सौह्यायनाष्टकम् ॥ तस्यास्थीनिसुपुत्रेणसंचितानिद्विजोत्तम ॥३३॥ क्षिप्तान्यानीयगंगा-यांतीर्थेकनखलेऽमले ॥ तत्क्षणादेवमुक्तोऽसौराक्षसत्वात्सुदारुणात् ॥३४॥ इतिगंगाजल-स्नानमहिमामहदद्भुतम् ॥ साक्षाद्दृष्टोमयातेनगांगेयंप्रार्थितंजलम् ॥३५॥ पुरस्ताद्यत्कृत-स्तीर्थेमयाभूरिपरिग्रहः ॥ नकृतस्तुप्रतीकारस्तस्यजाप्यादिलक्षणः ॥३६॥ तेनमेप्रेतरूपस्य-

उसने निर्मल कनखल तीर्थमें गंगाजलमें मिला दिया, उसी क्षण वह दारुण राक्षसयोनिसे मुक्त हो गया ॥ ३४ ॥ गंगा-जलमें स्नान करनेके परम अद्भुत इस मायाको मैंने साक्षात् अवलोकन किया अतएव मैंने गंगाजल तुमसे माँगा है ॥ ३५ ॥ मैंने प्रथम तीर्थोंके ऊपर जो बड़े-बड़े दान लिये, और जप आदि करके उनका प्रतीकार कुछ नहीं

किया ॥ ३६ ॥ अतएव मुझे प्रेत योनि प्राप्त हुई जिसमें भोजन एवं जलतक की प्राप्ति दुर्लभ है, इस विन्ध्याचलके ऊपर सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ३७ ॥ भारी लज्जा परित्याग पूर्वक मैंने यह सब वृत्तान्त आपके प्रति वर्णन किया, सुतराम् हे धर्मात्मा ! अब शीघ्र ही गंगा जल देकर ॥ ३८ ॥ मेरे कंठगत प्राणोंको तृप्त करो, प्राणियोंको

दुर्लभोदकभोजनम् ॥ सहस्रंयत्र वर्षाणामतीतंविंध्यपर्वते ॥३७॥ इतितेकथितंसर्वंहित्वाल-ज्जांगरीयसीम् ॥ इदानींधार्मिकश्रेष्ठजलदानेनसत्वरम् ॥ संतर्पयममप्राणान्कण्ठमात्रा-वलंबितान् ॥ दुर्लभंप्रेतभावेपिजीवितंप्राणिनामिह ॥३९॥ शरीरंरक्षणीयंहिसर्वथासर्वदा-नरैः ॥ नहीच्छंतिपरित्यक्तुमपिकुष्ठादिरोगिणः ॥४०॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाविस्मयंपरमंगतः ॥ पथिकश्चिंतयामासकृपांप्रेतेसमुद्वहन् ॥४१॥ पापपुण्यफलंलोकेप्रत्यक्षंदृश्यतेखलु ॥ देवदान-वमानुष्यंतिर्यक्त्वंक्रिमिकीटकम् ॥४२॥ नानायोनिषुजन्मानिनानाव्याधिप्रपीडनम् ॥ मर-

प्रेत योनिमें जीवित रहना बड़ा दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ मनुष्य अपने शरीरकी तो सदा ही सर्वथा रक्षा किया करते हैं, जो कुष्ठ आदि रोगोंसे पीड़ित हैं वे भी शरीर छोड़ना नहीं चाहते ॥ ४० ॥ प्रेतके ऐसे वचन सुन उस पथिकको अत्यन्त विस्मय हुआ, और वह उसके ऊपर कृपा करके चिन्ता करने लगा ॥ ४१ ॥ लोकमें पाप-पुण्यका फल

प्रत्यक्ष ही देखा जाता है। देवता, राक्षस, मनुष्य, तिर्यक्‌योनि, कीड़े मकोड़े ॥४२॥ इत्यादि अनेक योनिमें जन्म लेना अनेक व्याधियोंसे पीड़ित होना, बालक अथवा वृद्धोंका मरण, अन्धा अथवा कुबड़ा होना ॥ ४३ ॥ ऐश्वर्य्य अथवा दरिद्रता, पांडित्य अथवा मूर्खता, अन्यथा ये सब रचनाएँ कैसे हो सकती हैं ॥ ४४ ॥ उन प्राणियोंको धन्य है जो कर्मभूमिमें न्याय मार्गका अनुसरण कर धन संचय ( उपार्जन ) करके सत्पात्रोंके निमित्त दान

णं बालवृद्धानामंधत्वं कुब्जता तथा ॥४३॥ ऐश्वर्यं च दरिद्रत्वं पांडित्यं मूर्खता तथा ॥ एताश्च रचना लोके भवंति कथमन्यथा ॥४४॥ ते धन्याः कर्मभूमौ ये न्यायमार्गार्जितं धनम् ॥ सत्पात्रेभ्यः प्रयच्छंति कुर्वंति चात्मनो हितम् ॥४५॥ भूमिरत्नहिरण्यानि गावो धान्यं गृहं गजाः ॥ रथाश्व- वसनग्रामाः सिद्धमन्नं फलं जलम् ॥४६॥ कन्या दिव्यौषधं मंत्रांश्छत्रोपानद्वरासनम् ॥ शय्या- ताम्बूलमाल्यानि तालवृंतवराशनम् ॥४७॥ सर्वमेतत्प्रदातव्यं लोकत्रयजिगीषुभिः ॥ दत्तं-

करते और अपना हित करते हैं ॥४५॥ भूमि, रत्न, सुवर्ण, गौ, धान्य, गृह ( घर ), हाथी, रथ, घोड़े, वस्त्र, ग्राम, सिद्धान्त फल और जल ॥ ४६ ॥ कन्या, दिव्य औषधि, मन्त्र, छत्र, उपानह, ( जूते ) श्रेष्ठ आसन, पलंग, तांबूल, माला, तालवृन्त ( ताड़के पंखे ), श्रेष्ठ भोजन ॥ ४७ ॥ ये सब वस्तुएँ उनको दान करनी चाहिये जो त्रिलोकीका विजय करना चाहते हों। दान की हुई ही वस्तु स्वर्गमें प्राप्त होती है और दान की हुई ही भोगनेको मिलती

है ॥ ४८ ॥ छत्र, चामर श्रेष्ठ घोड़े, श्रेष्ठ हाथी, अन्य यान (सवारियें) महल, उत्तम सेजें, गाय, भैसें एवं उत्तमोत्तम स्त्रियें ॥ ४९ ॥ अन्न, आभूषण, मोती, पुत्र, दासियें, बड़ाकुल, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, कलाओं तथा अन्य विद्याओंमें निपुणता ॥ ५० ॥ ये सब दान करनेही के फलसे भूमिके ऊपर मनुष्योंको प्राप्त होते हैं, अतएव

हिप्राप्यतेस्वर्गेदत्तमेवहिभुज्यते ॥४८॥ छत्त्रचामरयानानिवराश्ववरवारणाः ॥ हर्म्याणिव- रशय्याश्चगोमहिष्यो वरस्त्रियः ॥४९॥ अन्नभूषणमुक्ताश्चपुत्रादास्योमहाकुलम् । आयुरा- रोग्यमैश्वर्यंकलाविद्यासुकौशलम् ॥५०॥ दानस्यैवफलंसर्वंप्राप्यतेभुविमानवैः ॥ तस्माद्देयं- प्रयत्नेननादत्तमुपतिष्ठति ॥५१॥ सकार्पटिकधार्मिष्ठइमांगाथामगायत ॥ इतिश्रुत्वापुनः प्रेतःप्रोवाचह्यार्तमानसः ॥५२॥ मन्येधर्मज्ञकल्पोसिपाथत्वंनात्रसंशयः ॥ देहिमेजीवनंवारि- चातकायघनोयथा ॥५३॥ एतस्मिन्प्राणदानेहिमाविलंबंकुथाबहु ॥ ततःप्रत्याहपांथस्तु-

यत्नपूर्वक दान करना कर्त्तव्य है कारण कि बिना दिये कुछ भी प्राप्त नहीं होता ॥ ५१ ॥ उस धर्मात्मा कामार्थीने यह कथा गाई, और इसको सुनकर वह प्रेत मनमें दुःखित हो फिर बोला ॥ ५२ ॥ हे पथिक ! मैं समझता हूँ तुम धर्मज्ञोंके सदृश ही हो इसमें कुछ संदेह नहीं है, जैसे मेघ पपीहेको प्राणदान करता है इसी प्रकार आप भी मुझे गंगाजल देकर जीवनदान दीजिये ॥ ५३ ॥ प्राणदान करनेमें अब आप वृथा विलंब न करें, तब वह पथिक

न्यायपूर्ण वाक्य बोला ॥ ५४ ॥ सुनो प्रेत ! भृगुक्षेत्रमें मेरे माता-पिता स्थित हैं, उन्हींके लिये मैं यह तीर्थराजका जल लाया हूँ ॥ ५५ ॥ सो उस गंगा यमुनाके जलको मार्गमें तुमने माँगा, मैं नहीं जानता इस धर्मके सन्देहमें मेरे लिये क्या होगा ? ॥ ५६ ॥ मैं बलाबलका विचार कर प्रबल विधिका आचरण करूँगा, केवल वेदों





वचनंन्यायगर्भितम् ॥५४॥ भृगुक्षेत्रेशृणुप्रेतपितरौममतिष्ठतः । तदर्थंतीर्थराजस्यमयावारिसमाहृतम् ॥५५॥ तत्सितासितपानीयंमध्येचप्रार्थितंत्वया ॥ नजानेधर्मसंदेहःकिमत्रमयियुज्यते ॥५६॥ बलाबलंविचारार्थंकरिष्येप्रबलंविधिम् ॥ वेदेभ्योधर्मशास्त्रेभ्योनाहंमानेनकेवलम् ॥५७॥ हयमेधादियज्ञेभ्यःसर्वेभ्योप्यधिकंमतम् ॥ ऋषिभिर्देवताभिश्च प्राणिनांप्राणरक्षणम् ।५८॥ इतिदत्वावरंवारिकृत्वाप्रेतस्यरक्षणम् ॥ पित्रर्थंपुनरादायजलंनेष्यामिपावनम् ॥५९॥ एषमेप्रबलोभाति शुद्धधर्मप्रदोविधिः ॥ परोपकरणादन्यत्सर्वमल्पस्मृतं

और धर्मशास्त्रों ही के मानसे नहीं, किन्तु ॥ ५७ ॥ ऋषियों और सब देवताओंने प्राणियोंके प्राण रक्षाको अश्वमेघ आदि यज्ञोंकी अपेक्षा भी अधिक माना है ॥ ५८ ॥ यों कह, उसे श्रेष्ठ जल दे और प्रेतकी प्राण रक्षा कर फिर कहने लगा कि–माता-पिताके लिये और पवित्र जल ले जाऊँगा ॥ ५९ ॥ शुद्ध धर्म प्रदान करनेवाली यही

विधि मुझे प्रबल प्रतीत होती है, क्योंकि बुद्धिमानोंने परोपकारकी अपेक्षा अन्य सभीको अल्प माना है ॥ ६० ॥ परोपकार करने वाले प्राणियोंने तो अपने प्राण तक दूसरोंके निमित्त दे डाले हैं, और जब केवल जल ही देनेसे परोपकार होता है तो भला मुझे क्या न मिल गया ॥ ६१ ॥ दधीचि ऋषि का गान किया, सब धर्मोंका स्वरूप और

बुधैः ॥६०॥ परोपकारिभिर्दत्ताअपिप्राणान्मुदा ॥ अद्भिःपरोपकारःस्यात्किंनलब्धंमया पुनः ॥६१॥ दधीचिनापुरागीतः श्लोकोयंश्रूयतेभुवि ॥ सर्वधर्ममयःसारःसर्वधर्मज्ञसंमतः ॥६२॥ परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपिधनैरपि ॥ परोपकारजंपुण्यंतुल्यंक्रतुशतैरपि ॥६३॥ इत्युक्त्वाप्रददौतोयंगंगायामुनसंभवम् ॥ प्रेतायप्राणरक्षार्थंसधर्मिष्ठोवरोद्विजः ॥६४॥ प्रेतःपीतोजलंपीत्वाह्यभिषिच्यशिरस्तथा ॥ प्रजहौप्रेतदेहंतंदिव्यदेहोभवत्क्षणात ॥६५॥ तदाश्चर्यंमहद्दृष्ट्वानिजगादसकेरलः ॥ अहोविमुक्तःप्रेतत्वाद्धेणोपानीयबिं-

संपूर्ण धर्मज्ञों द्वारा मान्य यह श्लोक भूमि के ऊपर श्रवण गोचर होता है ॥ ६२ ॥ केवल धन ही क्या बल्कि प्राणों तक से भी परोपकार करना कर्त्तव्य है, कारण कि परोपकार जनित पुण्य सैकड़ों यज्ञों के तुल्य होता है ॥ ६३ ॥ यों कह कर उस धर्मिष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मण ने प्रेतकी प्राण रक्षा के लिये गंगा यमुना का जल उसे दे दिया ॥ ६४ ॥ जब प्रेत ने उस जल को पीकर सिरपर अभिषेक किया, तब उसका प्रेतदेह छूट गया और तत्काल उसका

शरीर दिव्य हो गया ॥ ६५ ॥ यह प्रभूत आश्चर्य देख वह केरल बोला—प्रसन्नता की बात है कि, त्रिवेणी के जल के बिन्दुमात्र से प्रेतयोनि जाती रही ॥ ६६ ॥ मैं समझता हूँ गंगाजल के गुणों का वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते, क्योंकि यदि यह बात न होती तो महादेवजी अपने शिरपर गंगाजी को क्यों धारण करते ? ॥६७॥ जिसकी

दुभिः ॥६६॥ ब्रह्मापिनैवशक्नोतिमन्येवक्तुमपांगुणम् ॥ गङ्गायास्तन्महादेवोधत्तेकेकथमन्यथा ॥६७। अचिन्त्य भक्तिर्गंगाम्भस्तिलमात्रंतुयः पिबेत् ॥ देवोभवेत्ससिद्धोवागर्भंकोपिनसंविशेत् ॥६८॥ नगंगासदृशीसिद्धिर्नगंगासदृशोमतिः ॥ नगंगासदृशीमुक्तिर्गंगासर्वाधिका यतः ॥६९॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमहाभक्त्याचधार्मिकः ॥ करस्थंतस्यकैवल्यंयोगंगांसेवतेसदा ॥७०॥ आयुष्मान्भवपांथत्वंमाधर्मविरतोभव ॥ अहंहितारितः साधोगंगांमबुक्रण-

भक्तिका चिन्तन ही नहीं किया जा सकता ऐसे गंगाजलको तिलमात्र भी जो पान करता है वह देवता अथवा सिद्ध होगा, उसका निवास गर्भ में नहीं होगा ॥ ६८ ॥ गंगाजी के समान न तो कोई सिद्धि है, न मति है और न गंगाके समान मुक्ति ही है, क्योंकि गंगाजी सभी से अधिक हैं ॥ ६९ ॥ अतएव जो व्यक्ति यत्नपूर्वक गंगाजी की सेवा भक्ति पूर्वक करता है, मोक्ष सदा उसके हाथ में रहता है ॥ ७० ॥ हे पथिक ! तुम्हारी आयुकी वृद्धि हो, और

धर्म से तुम्हारा वैराग्य न हो, क्योंकि गंगाजल की कणिका देके तुमने मेरा उद्धार किया ॥ ७१ ॥ यों कह कर और आशीर्वादों से उस पथिक का अभिनन्दन करके केरलदेशीय वह पिशाच स्वर्ग को चला गया ॥ ७२ ॥ वह पान्थ उस प्रेत को मुक्त कर जल लेके फिर उसी मार्ग से चला ॥ ७३ ॥ प्रयागराज के माहात्म्यको इस प्रकार सुन

दानतः ॥७१॥ इत्युक्त्वाप्रस्थितोनाकंपिशाचस्तुसकेरलः ॥ आशीर्भिरभिनंद्याथपांथंबं-धुवरंनरम् ॥७२॥ प्रेतंविमोक्ष्यपांथोपिपुनरादायतज्जलम् ॥ गतस्तेनैवमार्गेणतदातीर्थोद-कंवहन् ॥७३॥ इत्थंप्रयागमाहात्म्यंश्रुत्वानत्वाचतंमुनिम् ॥ प्रयागंसहसामाघेपिशाचःसत्वरं-गतः ॥७४॥ स्नात्वासितासितेसोपिमाघमासेद्विजोत्तम ॥ पिशाचःक्षीणपापस्तुपैशाचींवि-जहौतनुम् ॥७५॥ दिव्यदेहस्ततोभूत्वाद्राविड़ोभूपतिस्तदा ॥ स्तुवन्नारायणंदेवंभक्त्या-दोषविवर्जितः ॥७६॥ गंधर्वैःस्तूयमानस्तुनाकनारीसुपूजितः ॥ उत्तमेनविमानेनपुरंदर

मुनिको प्रणाम करके वह पिशाच शीघ्रही माघमास में प्रयागको चला गया ॥ ७४ ॥ हे द्विजराज ! माघमास में गङ्गा-यमुना के जल में स्नान करने से पापक्षीण हो जाने के कारण इस पिचाश ने भी पिचाश के शरीर का त्याग किया ॥ ७५ ॥ इसका देह दिव्य हो गया, तब यह द्रविड़देशाधिपति निर्दोष हो भक्तिभाव पूर्वक नारायण का स्तुति करने लगा ॥ ७६ ॥ तब गन्धर्वगण इसकी स्तुति करने लगे, स्वर्गीय स्त्रियें पूजा करने लगीं, निदान उत्तम विमान

में बैठकर यह इन्द्रलोकको चला गया ॥ ७७ ॥ हे विप्र ! कौतुक सहित यह प्राचीन वृत्तान्त हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, हे द्विजराज ! यह इतिहास शीघ्रही पापों का नाश करनेवाला है ॥ ७८ ॥ हे विप्र ! जो इसको सुनते हैं उनकी दुर्गति का नाश होकर ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ७९ ॥ इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पुरंययौ ॥७७॥ इतितेकथितंविप्रपूर्ववृत्तंसकौतुकम् ॥ इतिहासंद्विजश्रेष्ठसद्यःपातकनाशनम् ॥७८॥ ज्ञानदंमोक्षदंविप्रश्रुतंदुर्गतिनाशनम् ॥७९॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

लोमश उवाच ॥ इतितेकथितंसर्वंपुरावृत्तंसकौतुकम् ॥ इतिहासंद्विजश्रेष्ठश्रुतं दुर्गतिनाशनम् ॥१॥ अधुनातुमयासार्धमिमाःकन्याःसुतश्चते ॥ त्वंचायातुप्रयागंवैसर्वेसद्गतिमीप्सवः ॥२॥ माघस्नानंप्रकुर्मोऽत्रदेवानामपिदुर्लभम् ॥ तत्रमोक्ष्यंतिपैशाच्यंसद्यःपापसमु-

लोमशजी बोले—हे विप्र, कौतुकपूर्वक हमने यह वृत्तान्त तुम्हें सुनाया, हे द्विजवर ! इस इतिहासके सुननेसे दुर्गतिका नाश होता है ॥ १॥ अब हमारे साथ ये कन्याएँ, तुम्हारे पुत्र और तुम सब सद्गति की इच्छाकरके प्रयागको चलो ॥ २ ॥ वहाँ देवदुर्लभ माघस्नान करेंगे, और पापजनित पिशाचयोनि वहाँ शीघ्रही छूट जायगी ॥३॥

इस प्रकार लोमशजीके मुखकमलसे निकली हुई मधुर और आनन्द देनेवाला कथाको पान (सुन) कर नरकरूप सागर से उत्तीर्ण हो सब बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ और हर्षित हो उनके साथ आकाशमार्गसे चल दिये, हे दिलीप! अब गङ्गा-यमुनाके तीर्थको सुनो ॥ ५ ॥ दुःसह कामनाकी प्राप्तिके लिये मनमें प्रसन्न हुए वे शीघ्रही आकाशमार्गद्वारा वहाँ

ध्रुवम् ॥३॥ एवंलोमशवक्त्राब्जकथामधुरसंमुदा ॥ पीत्वाप्रमुदिताः सर्वेनिस्तीर्णानरकार्णवात् ॥४॥ प्रस्थितास्तेन सार्धंते सत्वरंव्योम्निहर्षिताः ॥ दिलीपशृणुतत्सर्वंतत्तीर्थंतुसितासितम् ॥५॥ सत्वरंव्योममार्गेणकाममासाद्यदुःसहाः ॥ समागम्यतदातत्रसंहृष्टहृदयाश्चते ॥६॥ अथोचेलोमशस्तत्रसदयंगगनांगणे ॥ पश्यंतु श्रद्धयासर्वेतीर्थराजमिमंभुवि ॥७॥ विनाज्ञानंप्रयागेस्मिन्मुच्यतेसर्वजंतवः ॥ इष्ट्वात्रैवमहायज्ञंस्रष्टुकामः प्रजापतिः ॥८॥ अवापसृष्टिसामर्थ्यंततःसृष्टिंचकारसः ॥ अत्र नारायणःसस्नौपत्नीकामः सितासिते ॥९॥ अतः

पहुँचे ॥ ६ ॥ तब लोमशजी आकाश ही में दयापूर्वक कहने लगे, तुम सबलोग भूमिके ऊपर भक्तिपूर्वक तीर्थराज प्रयागके दर्शन करो ॥७॥ इस प्रयागतीर्थमें ज्ञानरहित भी प्राणी मुक्त हो जाते हैं, सृष्टि रचनेकी कामनासे प्रजापति ब्रह्माजीने इसी क्षेत्रमें यज्ञका आचरण कर ॥ ८ ॥ रचना करनेकी शक्तिका लाभ किया और सृष्टिको रचा, और पत्नीकी कामनासे नारायणने भी यहाँ ही गंगास्नान किया था ॥ ९ ॥ अतएव अमृतमन्थनके समय उन्हें लक्ष्मी

पत्नी प्राप्त हुई, और यहाँ छः मास निवास तथा त्रिवेणीके जलमें स्नान करके ॥ १० ॥ त्रिशूलधारी महादेवजीने तीन बाणोंसे त्रिपुरासुरको मारा था और ये जो अग्निकुण्ड निरन्तर प्रदीप्त रहते हैं ॥ ११ ॥ यह अग्नि तृप्तिको प्राप्त हुई है, यहाँ तैंतीस देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्द किया था ॥१२॥ कपालधारी नीलकंठ महादेवजी यहाँ ही





सलब्धवान्लक्ष्मीभार्यामृतमंथने ॥ उषित्वाचात्रषण्मासंस्नात्वावेण्यांयथेच्छया ॥१०॥
त्रिपुरंघातयामासत्रिबाणेनत्रिशूलभृत् ॥ इमानित्रीणिकुंडानिदीप्तान्यजस्रवह्निभिः ॥११॥
एषतृप्तिंगतोवह्निर्यः केनापिचपुष्यति ॥ अत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्तृप्तामुमुदिरेभृशम् ॥१२॥
आविर्भूतोमहेशोत्रनीलकंठः कपालभृत् ॥ आनिशंससुरैःसेव्यआयातोंजलयेवटुः ॥१३॥
मृकंडसूनुनाकल्पेप्रविश्ययन्मुखेस्थितम् ॥ लोकेज्वालाकुलेसोयंयोगरूपीजनार्दनः ॥१४॥ सेयं-

प्रादुर्भूत हुए, नित्य देवता उनकी सेवा करते हैं, और अंजलिके लिये बटु आते हैं ॥ १३ ॥ प्रलयके समय जब लोक ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ तब मृकंडके पुत्र मार्कण्डेयजी इन्हींके मुखमें प्रविष्ट हुए थे, ये वही योग रूपी जनार्दन भगवान् हैं ॥ १४ ॥ श्रीमहादेवजीकी यही वे भागीरथी गंगाजी सब दुःखोंको हरनेवाली, भोग और मोक्षको देनेवाली हैं, एवं सिद्धिके निमित्त सिद्ध गण इनकी सेवा करते हैं ॥ १५ ॥ जो स्वर्गके मार्गमें सर्वोत्तम ऐश्वर्य को नित्य देने

माघ मा. २५२

वाली है, एवं जो स्वर्गप्राप्तिका कारणस्वरूप है, वह यही भागीरथी नदी है तथा-॥ १६ ॥ जिसके जलमें स्नानमात्र करनेसे पापों का नाश होकर सब प्राणियों को मोक्षकी प्राप्ति होती है, वही यह स्वयं यमुनानदी है ॥ १७ ॥ हे मुने ! इन दोनों नदियोंका संगम परमसुखदायक है, इसमें जो स्नान कर लेते हैं वे ज्ञानी हो जाते हैं। अतएव

मा. टी. अ.२५

भागीरथीरंभोःसर्वदुःखापहारिणी ॥ सिद्ध्यर्थंसेव्यतेसिद्धैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ १५ ॥
अनिशंभूतिदायाचस्वर्गमार्गह्यनुत्तमा ॥ स्वर्गहेतुश्चयादेवीसेयंभागीरथीनदी ॥ १६ ॥ यदंभः
स्नानमात्रेणवैकर्तनसलोकताम् । लभंते प्राणिनः सर्वे नदी सा यमुना स्वयम् ॥ १७ ॥ अनयोः
पुण्यनद्योश्चसंगमःसुखदोमुने ॥ अत्रस्नातानपश्यंतेनरकेज्ञानभाविताः ॥ १८ ॥ विनाज्ञानं
प्रयागेस्मिन्मुच्यंतेसर्वजंतवः ॥ अन्यच्चश्रूयतोविप्रइतिहासंपुरातनम् ॥ १९ ॥ शृण्वतांसर्व-
पापघ्नंसर्वरोगविनाशनम् ॥ ऋचीकेनपुराशप्तोगंधर्वोवायसोऽभवत् ॥ २० ॥ शापंमुमोचसोत्रैव

२२

उन्हें नरक में पच्चा नहीं होना होता है ॥ १८ ॥ प्रयाग में विनाही ज्ञानके सब प्राणियों को मोक्ष हो जाता है। हे विप्र ! अब अन्य प्राचीन इतिहासको सुनिये ॥ १९ ॥ जो मनुष्य इसको सुनते हैं उनके रोग और पाप सब नष्ट हो जाते हैं, प्रथम ऋचीकने एक गन्धर्वको शाप दे दिया तब वह काक हो गया था ॥ २० ॥ उसने भी यहीं गंगा

२५१

माघ मा. २५४

यमुनाके जलमें स्नान किया तब उसको शाप से मुक्ति हुई, उर्वशी अप्सराको इन्द्रने शाप दे दिया था । तब वह स्वर्गसे निपतित होगई तब पुनः ॥ २१ ॥ स्वर्गकी कामना से उसने गंगा यमुना के संगम में स्नान किया तब उसे फिर शीघ्र ही स्वर्गकी प्राप्ति हुई और नहुषात्मज ययातिको भी यहाँ स्नानकरने से मंगलकारी पुत्रकी प्राप्ति हुई थी ॥२२॥ धनकी कामना करके प्राचीनकालमें इन्द्रने भी हे द्विजराज ! यहाँ स्नान किया था ॥ २३ ॥ तब उसने माया करके

स्नातःशुद्धःसितासिते ॥ वासवस्यतुशापेनस्वर्गाद्भ्रष्टाप्सरोर्वशी ॥२१॥ स्वर्गकामानसास-
स्नौलेभेस्वर्गंततोचिरात् ॥ पुत्रंचशंकरंलेभेययातिर्नाहुषोमुने ॥२२॥ पुत्रकामःप्रयागेहि-
स्नात्वापुण्येसितासिते । धनकामःपुराशक्रःसुस्नातोऽत्रद्विजोत्तम ॥२३॥ धनदस्यनिधीन्-
सर्वान्जहारसचमायया । कश्यपोऽत्रतपस्तेपेशिवाराधनतत्परः ॥२४॥ अस्मिंस्तीर्थेभरद्वा-
जोयोगसिद्धिमवाप्तवान् ॥ अस्मिंस्तीर्थेपुराविप्रयोगेशाः शांतमानसाः ॥२५॥ योगस्यफल-

कुबेरकी सब निधियोंका अपहरण किया, महादेवजी की आराधना में तत्पर रहकर कश्यपजीने भी यहाँ ही तपका आचरण किया था ॥ २४ ॥ इसी तीर्थ में भरद्वाजजीको भी योगसिद्धिका लाभ हुआ था, और हे विप्र ! पूर्व समयमें जिनके मन शान्त हो गये हैं जो योगीश्वर हैं ऐसे ॥ २५ ॥ सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमारको भी योगके फलकी प्राप्ति हुई थी, माघमासमें जो व्यक्ति गंगा यमुना के संगम में स्नान करते हैं ॥ २६ ॥ उनको तारारूप समझना

भा. टी. अ.२५ २५७

चाहिये और उन्होंने सब जगत् को व्याप्त कर रखा है, कामार्थियोंको मनोरथ सिद्धि, मोक्षाभिलाषियों को मोक्ष ॥२७॥ और साधकों को सिद्धि, हे द्विजराज! प्रयाग में प्राप्त होती है, इस समय मुक्तिकी कामना से ये कन्यायें और तुम्हारा पुत्र ॥ २८ ॥ एवं तुम हमारे कहने से यहाँ गंगा यमुना में स्नान करो और पहिले पापों का नाश करने-



भूमितुलेऽभिरे सनकादयः ॥ अस्मिन्माघेतुयेस्नातागंगायामुनसंगमे ॥२६॥ ताराूपाश्चते सर्वेतव्याप्तंसकलंजगत् ॥ विदंतिकामिनःकामान्मुक्तिंयांतिमुमुक्षवः ॥२७॥ विंदंतिसाधकाः सिद्धिंप्रयागेहिद्विजोत्तम ॥ सांप्रतंमुक्तिकामास्तुकन्याश्चापिसुतश्चते ॥२८॥ मद्वाक्या-दत्रमज्जंतुसर्वे त्वं च सितासिते ॥ प्राक्कालीनाघविध्वंसिवेणीजलबलेनतु ॥२६॥ लभंताम-खिलांलक्ष्मींप्राप्तशापमहाफलम् ॥ एवमार्षवचःसत्यमतींद्रियमलंघनम् ॥३०॥ श्रुत्वाचोत्कं-ठचित्तास्तेसर्वेस्नानायचोद्यताः । प्रयागंप्राप्यदुष्प्राप्यंपैशाच्यंविजहुः क्षणात् ॥३१॥

वाले त्रिवेणी के जलके प्रभाव से ॥ २६ ॥ इस शाप के फलरूप विपुल लक्ष्मी का इन्हें लाभ होगा, जो इन्द्रियों से परे और उल्लंघन करने के अयोग्य हैं ऐसा वह महर्षि का वचन सत्य है ॥ ३० ॥ यह वचन सुनतेही वे सब मन में उत्कंठित हो स्नान करने के लिए उद्यत हुए, और दुर्लभ प्रयाग की प्राप्ति से क्षणभर में उनकी पिशाचता छट



दुर्लभ पैशाच्य मोचनी

गई ॥ ३१ ॥ शापके दुःखसे मुक्त हो इन्होंने अपने-अपने शरीरको साधारण कर लिया, वेदनिधि अपने पुत्र और उन कन्याओंका दिव्यरूप देख ॥ ३२ ॥ अन्तःकरण में प्रसन्न हो प्रीतिपूर्वक लोमशजी को सन्तुष्ट करने लगा कि, आपही कि कृपासे पापके महासागर से उद्धार हुआ है ॥ ३३ ॥ हे महर्षि सत्तम ! अब इन बालकों का जो कर्तव्य हो सो



विमुक्ताःशापदुःखेनतनुंस्वांस्वांचलेभिरे । दृष्ट्वावेदनिधःपुत्रं ताःकन्यादिव्यरूपिणीः ॥३२॥ तुष्टावलोमशंप्रीत्याप्रसन्नेनांतरात्मना ॥ त्वदनुग्रहमात्रेणोत्तीर्णपापमहार्णवः ॥३३॥ इदानी-मुचितंब्रूहिबालानामृषिसत्तम ॥ लोमशउवाच ॥ कुमारोधीतवेदोऽयंसमाप्तनियमोयुवा ॥३४॥ आसांतुसानुरागाणांगृह्णातुकरपंकजम् ॥ ततोलोमशवाक्येनस्वपितुर्वचनात्तदा ॥३५॥ विवा-हविधिनाचाशुब्रह्मचारीसधार्मिकः ॥ शुभद्रव्यैश्चमंत्रैश्चऋषिभिःकृतमंगलः ॥३६॥ पश्चाना-

बताइये, लोमशजी बोले— इस कुमारने वेदोंको पढ़ लिया एवं अन्य सब नियमों को पूर्णकर अब यह युवा हो गया है ॥ ३४ ॥ अतएव अनुराग करनेवाली इन कन्याओं के करकमलको यह ग्रहण करे, तब लोमशजीके कहने से अपने पिताकी आज्ञानुसार ॥ ३५ ॥ इस धर्मात्मा ब्रह्मचारीने विवाह की विधिके अनुसार, महर्षियोंके द्वारा शुभद्रव्योंसे मंगलाचार करने के अनन्तर ॥ ३६ ॥ धर्मपूर्वक उन पाँचों कन्याओं का पाणिग्रहण किया, मनोरथ

पूर्ण हो जाने के अनन्तर वे सब कन्यायें भी आनन्द मनाने लगीं ॥ ३७ ॥ और वह कुमार भी अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, फिर लोमश ऋषिने उनको आज्ञा दी तब उन्होंने महर्षिको प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ निदान वे देवताओं के द्वारा सेवित सुमेरुपर्वत पर अपने आश्रम को चले गये, फिर वेदनिधि भी अपने पुत्र और पाँचों पुत्रवधुओंको ॥ ३९ ॥





र्षिकन्यानांपाणिजग्राहधर्मतः ॥ आनंदिन्यस्तदासर्वाःकन्याःपूर्णमनोरथाः ॥३७॥ बभूवुः सकुमारश्चसंतुष्टश्चबभूवहः । दत्त्वाज्ञांमुनिःसोथलोमशस्तैर्नमस्कृतः ॥३८॥ जगामस्वाश्रमंमेरुंपर्वतंसुरसेवितम् ॥ ततोवेदनिधीराजन्स्नुषा पंच सुतंतथा । ३९॥ पुरस्कृत्यमुदायुक्तोधनदस्यपुरंययौ ॥४०॥ इतिनृपवरमाघेस्नानसंजातपुण्यान्मुनिवरवचसाप्राक्तीर्थराजप्रयागे । सकलकलुषमुक्ताःपंचगंधर्वकन्या अलभमिमगतलाभात्प्राप्यतर्षंचजग्मुः ॥४१॥ परमिममभितिहासंपावनं तीर्थभूतं वृजिनविलयहेतुंयःशृणोतीहनित्यम् ॥ सभवातखलुपूर्णः ।

अगाड़ीकर आनन्दपूर्वक कुबेर लोकको चले गये ॥ ४० ॥ हे राजेश्वर ! माघमासमें प्रयागमें ऋषि के कथनानुसार स्नान करनेके पुण्य से पाँचों कन्याओंके सब पाप जाते रहे, और वे मनोरथ सिद्धिको पाय अपने स्थान को चली गईं ॥ ४१ ॥ तीर्थ महिमाका यह इतिहास अत्यन्त पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला है, जो मनुष्य इसे नित्य

सुनते हैं उनकी सब कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं और वे दुर्लभ धर्मयुक्त हो स्वर्गको जाते हैं ॥ ४२ ॥ इस इतिहासको सुन चुकने पर गौ, वस्त्र और सुवर्ण से पाठक की पूजा करना कर्त्तव्य है, क्योंकि वह ब्रह्मतुल्य माना गया है ॥ ४३॥ पढ़नेवाले की पूजा करने से साक्षात् विष्णु भगवान् ही की पूजा होती है, सुतराम् यदि अपने जन्मको सफल करना

सर्वकामैरभीष्टैर्व्रजतिचसुरलोकेदुर्लभोधर्मयुक्तः ॥ ४२ ॥ इतिहासमिमंश्रुत्वापूजनीयस्तु पाठकः ॥ गोभिर्हिरण्यवस्त्रैश्च ब्रह्मतुल्योयतोहिसः ॥४३॥ वाचकेपूजितेयस्माद्विष्णुर्भवति- पूजितः ॥ तस्मात्संपूजयेन्नित्यंयदीच्छेत्सफलं भवम् ॥४४॥ इति श्रीपद्म उत्त० माघमाहात्म्ये वसि० गंध० क० परिणयोनामपंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

चाहे तो कथा बाँचने वाले की पूजा अवश्य करे ॥ ४४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गत माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ इति माघमासमाहात्म्यम् समाप्तम् ॥

## हमारे यहाँ की मन पसन्द पुस्तकें एकबार अवश्य मँगाकर लाभ उठावें

| पुस्तक | मूल्य | पुस्तक | मूल्य |
| --- | --- | --- | --- |
| निर्णयसिन्धु भाषा-टीका | १५०) | पद्मिनी व्रतकथा भाषा-टीका | १) |
| [illegible] भाषा-टीका | ८४) | अनीनूपा व्रतकथा भाषा-टीका | २) |
| सर्वदेवप्रतिष्ठा [illegible] | ३२) | रविवार व्रतकथा भाषा | १) |
| मनुस्मृति भाषा-टीका | २४) | अन्नपूर्णा व्रतकथा भाषा-टीका | २) |
| पाराशरस्मृति भाषा-टीका | १४) | शिवरात्रि व्रतकथा भाषा-टीका | २) |
| भर्तृहरिशतक भाषा-टीका | ८) | प्रदोष व्रतकथा भाषा-टीका | २) |
| चाणक्यनीतिदर्पण भाषा-टीका | ५) | मंगलागौरी व्रतकथा भाषा-टीका | ३) |
| सत्यनारायण व्रत कथा ५ अध्याय भाषा-टीका | ४) | महालक्ष्मीव्रतपूजन भाषा-टीका | २) |
| संकष्टी श्रीगणेश चौथ व्रत कथा भाषा | ६) | सोमवती व्रतकथा भाषा-टीका | २)५० |
| त्रिलोकीनाथ व्रतकथा भाषा | २)५० | श्रीराम नवमी व्रतकथा भाषा-टीका | ३) |
| ऋषि पञ्चमी व्रतकथा भाषा-टीका | २) | सत्यनारायण व्रतकथा भाषा बड़ा | २) |
| पूर्णिमा व्रतकथा ( बत्तीस पूर्णिमा ) | २) | हमारे व्रत और त्योहार हिन्दी भाषा में | १०) |
| अनन्त व्रतकथा भाषा-टीका | ६) | शुक्रवार व्रतकथा बड़ा | २) |

हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

**ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर, राजादरवाजा, वाराणसी**